वाल्मीकि रामायण में राजनीतिक तत्त्व

डॉ॰ रामेश्वर प्रसाद गुप्त

वाल्मीकि रामायण

में

राजनीतिक तत्त्व

वाल्मीकि रामायण

में

राजनीतिक तत्त्व

डॉ० रामेश्वर प्रसाद गुप्त

एम०ए० (संस्कृत, हिन्दी) स्वर्णपदक प्राप्त

पी-एच० डी०

आचार्य एवं अध्यक्ष,

शा० स्नातकोत्तर महाविद्यालय

दतिया (म०प्र०)

ईस्टर्न बुक लिंकर्स

दिल्ली : : (भारत)

प्रकाशक :

ईस्टर्न बुक लिंकर्स

५८२५, न्यू चन्द्रावल, जवाहर नगर,
दिल्ली-११०००७

5852
R. SK. S. LIBRARY
Acc No.........
Call No..........

© लेखक

प्रथम संस्करण : १९९५

ISBN : 81-86339-19-1

मूल्य : ३००.००

मुद्रक :

शाम प्रिंटिंग एजेन्सी (अमर प्रिंटिंग प्रेस)
१/३६ ए, डबल स्टोरी, विजय नगर, दिल्ली-९

भारत माता

एवं

समस्त भारतवासियों के प्रति

समर्पित

—डा० रामेश्वर प्रसाद गुप्त

प्रास्ताविक

भारत में राजनीतिक संगठन का प्रारम्भ छोटे-छोटे राज्यों की जिन्हें तब राष्ट्र कहा जाता था, निम्नतम इकाई ग्राम की व्यवस्था के लिये नियुक्त 'ग्रामणी' के साथ हुआ था। ग्रामणी बलि-समाहर्ता (कर बसूलने वाला) और राज्य के लिये सैनिक दल का भी संघटक होता था। गाँव में एक सभा होती थी जो पंचायत घर का काम देखने के साथ मनोरंजन-गृह के भी काम आती थी। एक दूसरी संस्था थी जिसे 'समिति' कहते थे। सम्भवतः यह जनपद की प्रमुख राजनीतिक इकाई थी। हो सकता है, समिति की संघटना सभा के प्रतिनिधियों को मिलाकर की जाती हो। जो हो, वैदिक काल में ये दोनों संस्थाएँ राष्ट्र की धुरी थीं। अथर्ववेद ने उन्हें प्रजापति की 'दो दुहिताएँ' कहा है। ये 'संविदान' अर्थात् परस्पर मिल-जुलकर काम करतीं थी। वर्तमान 'संसद' की 'लोकसभा' और 'राज्य सभा' का यह मूल रूप था। धीरे-धीरे जैसे क्षुद्र जनपदमहाजनपदों में बदलते गये, छोटे-छोटे वैदिक 'पुरों' ने नगरों का रूप ग्रहण किया, दुर्गों का निर्माण हुआ। राजनीति ने भी स्वयं को व्यवस्थित किया। वैदिक साहित्य, विशेषतः ब्राह्मण ग्रन्थों में बड़े-बड़े राज्यों की न केवल चर्चा है अपितु उनके निर्माण, राजा की सिंहासन-च्युति, राज्याभिषेक, च्युत राजा की पुनः प्रतिष्ठा, राजा के वंशपरम्परागत रहने पर भी प्रजा द्वारा उसे मान्यता प्रदान करने, सेना संगठन, मन्त्रिपरिषद्, गुप्तचर-व्यवस्था, राजकोष आदि के सम्बन्ध में बड़ी दिलचस्प सामग्री मिलती है। मनु, कामन्दक,

शान्तिपर्व और अर्थशास्त्र में जो राजनीतिशास्त्र का सूक्ष्म और विस्तृत स्वरूप मिलता है वह वाल्मीकि के बहुत बाद का है। फिर भी रामायण काल में विदेह, कोसल, शूरसेन और स्वयं लङ्का के शासनों को देखा जाय तो एक बात सबमें समान रूप से मिलती है और वह है राजा का एकमात्र धर्म-प्रजारञ्जन। राम, जनक और रावण सभी इस धर्म का पालन करते हैं। राज्य को जनता का इतना अधिक सहयोग रहता था कि राजा का पद त्याग या निर्वासन, राज्य की सुख समृद्धि में विशेष बाधक नहीं होता था। इसीलिये दशरथ के आकस्मिक मरण और राम के दीर्घ वनवास का प्रभाव अयोध्या जनपद की सुख-समृद्धि पर नहीं पड़ा। उल्टे राम के लौटने तक सैन्य-शक्ति, कोष और व्यवस्था की दृष्टि से उसकी कई गुनी वृद्धि हो गयी। यह सच है कि रामायण काल तक न तो शासन-व्यवस्था विशेष जटिल थी और न लोकनीति और राजनीति में कोई अन्तर ही था। दोनों का आधार धर्म था। राजनीतिक जटिलता का युग नन्दों और मौर्यों से प्रारम्भ होता है।

डॉ॰ रामेश्वर प्रसाद गुप्त ने इस तत्त्व को समझा और उसके प्रकाश में रामायण में उपलब्ध शासन-व्यवस्था का, जिसने आगे चलकर 'राम-राज्य' के रूप में राज्यादर्श का रूप ग्रहण कर लिया, विस्तृत विवेचन प्रस्तुत ग्रन्थ में से किया है। ऐसा करते हुये उन्होंने न केवल पूर्ववर्ती अपितु पश्चाद्वर्ती राजतन्त्रों की भी विवेचना की है। जिनके जटिल संगठन का चित्र कौटिलीय अर्थशास्त्र और उसके नियामक तत्त्वों का निरूपण मनु, कामन्दक, शुक्र के ग्रन्थों और महाभारत के शान्तिपर्व में मिलता है। यह ग्रन्थ वस्तुतः वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था का भूमिका भाग है। बड़ी सरलता और स्पष्टता के साथ, आवश्यक प्रमाणों और शास्त्रीय उद्धरणों के साथ किया गया डॉ॰ गुप्त का यह प्रयत्न महाभारत पूर्व

राज्य-व्यवस्था पर ही नहीं, गुप्त काल तक की शासन-पद्धति पर भी व्यापक प्रकाश डालता है। प्राचीन भारतीय राजनीतिक दृष्टि को समझने में डॉ॰ गुप्त की यह कृति सहायक सिद्ध होगी।

डॉ॰ प्रभुदयालु अग्निहोत्री
भू॰ पू॰ कुलपति
जबलपुर विश्वविद्यालय,
जबलपुर (म॰ प्र॰)

ई २।७३ महावीर नगर
भोपाल-४६२०१६
५-११-८३

श्री हनुमते नमः

निवेदन

सम्प्रति 'राजनीति' छल प्रवञ्चनादि से आच्छन्न, अतएव अनेक आवरणों से अदृष्ट, मेघाच्छन्न पूर्णचन्द्र के समान अपनत्व व्यक्तित्व एवं आनन्दप्रदायी स्वरूप से विरहित है। प्रस्तुत ग्रन्थ में साङ्ग राजनीति का सम्यक् निरूपण है, जिसका चिन्तन एवं तदनुसार आचरण राम जैसे आदर्श एवं श्रेष्ठ नेतृत्व के निर्माण में समर्थ है। श्रेष्ठ नेतृत्व ही राष्ट्र के योग एवं क्षेम का कारक होता है।

राज्य में एक तन्त्र, प्रजातन्त्र या किसी भी प्रणाली का शासन हो, शासक वर्ग का प्रमुख उद्देश्य प्रजा एवं राज्य का हित करना है। राज्य के प्रत्येक व्यक्ति की स्वतन्त्रता, समानाधिकार, विकास एवं उन्नति का ध्यान रखना शासन का परम कर्तव्य है। यथापराध दण्ड की व्यवस्था एवं शीघ्र न्याय राज्य में अराजकता को रोककर शान्ति एवं स्वतन्त्रता में परम सहयोगी होते हैं। समय पर कार्य की सम्पन्नता न होने से राज्य में अराजक तत्त्वों की वृद्धि होती है, तब 'स्वतन्त्रता' स्वच्छन्दता तथा उच्छृङ्खलता में परिवर्तित होने लगती है। 'स्वतन्त्रता' नियमों के प्रति आबद्धता एवं प्रतिबद्धता है। यह सन्मार्ग पर चलने का संयम है। स्वच्छन्दता एवं उच्छृङ्खलता उसके विपरीत एवं विरोधी हैं, जो समाज और राष्ट्र में अराजक स्थिति उत्पन्न करने के कारण उनके अधोपतन का कारण हैं। स्वच्छन्दता में अनुशासन, चरित्र एवं कर्तव्यपालन के प्रति निष्ठा का ह्रास होता है, जो किसी भी देश की अधोगति का निमित्त है। राजनीति स्वच्छन्दता एवं स्वतन्त्रता का परिज्ञान

कराती हुई स्वच्छन्दता के परिहार हेतु एवं स्वतन्त्रता के स्थायित्व में शासन एवं प्रजा वर्ग को सचेत एवं सचेष्ट करती है।

वस्तुत: किसी भी राष्ट्र या देश की अवनति एवं पतन के दो ही कारण है। प्रथम कारण राजनीति के प्रति अज्ञानता है तथा दूसरा कारण है राजनीति का अनुचित प्रयोग। राजनीति का रूप अत्यन्त स्पष्ट होने पर भी चन्द व्यक्तियों ने अपने हित के लिये उस पर स्वार्थ का आवरण कर उसके रूप को विकृत कर दिया है। राजनीति में केवल दो तत्त्व या शक्तियाँ कार्य करती हैं— चरित्र तथा दण्ड। ये दोनों ही अन्योन्याश्रित हैं। चरित्र की रक्षा दण्ड से होती है और दण्ड के समुचित प्रयोग का आधार चरित्र है। इतिहास के पन्नों को पलटने से स्पष्ट होता है कि जिस राज्य में चरित्र-बल रहा और दण्ड का यथोचित प्रयोग किया गया, उसका स्थायित्व पीढ़ियों और शदियों तक रहा। जिस समय भी चरित्र या दण्ड सम्बन्धी प्रमाद हुआ कि राज्य का पतन प्रारम्भ हो गया।

समस्त विद्याओं एवं प्राणिमात्र का योग और क्षेम करने वाली दण्डनीति या राजनीति है।[1] अस्तु, संसार की समस्त विद्याओं में सर्वश्रेष्ठ मान्य 'राजनीति' परम विवेकी, श्रेष्ठ मतिमान्, परम पुरुषार्थी, नि:स्वार्थ एवं देशभक्त व्यक्तियों का लोककल्याणकारी परम शस्त्र है, जो उन्हीं के अन्त: एवं बाह्य करणों में सुशोभित होता है। वही राजनीति जब अविवेकी लोगों के हाथ में पड़ जाती है, तो उसका दुरुपयोग कर उक्त तथाकथित लोग रावण जैसे प्रमत्त एवं दुराचारी, कदाचारी, व्यभिचारी एवं भ्रष्टाचारी बनकर समाज का एवं राष्ट्र का बड़ा अनर्थ एवं विध्वंश करते हैं एवं

---

१. आन्वीक्षकीत्रयीवार्तानां योगक्षेमसाधकोदण्ड:। तस्य नीति-र्दण्डनीति: ······तस्माद्दण्डमूलास्तिस्रो विद्या:। विनयमूलो दण्ड: प्राणभृतां योगक्षेमावह:।—कौटिलीय अर्थशास्त्र, चतुर्थोऽध्याय:।

अपयश के भागी होते हुये भी लज्जाविहीन विचरते हुए संकोच नहीं करते तथा राजनीति को वाराङ्गना से भी बदतर रूप प्रदान करते हैं।

वस्तुतः श्रेष्ठ राझनीतिज्ञ कभी भी अपने हित साधन में संलग्न नहीं होते। 'प्रजा का सुख ही उनका अपना सुख होता है एवं प्रजा का हित ही उनका अपना हित होता है।'[1]

नेता या प्रशासक एवं शासक वर्ग के निम्नाङ्कित गुण विशेषोल्लेखनीय है—

नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः
रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशः स्थिरोयुवा।
बुद्ध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वितः
शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः॥[2]

स्पष्ट है कि शासक वर्ग एवं नेताओं को विनीत, मधुर, त्यागी, चतुर, प्रियवद, लोकप्रिय, पवित्र, वाकपटु, प्रसिद्धवंशवाला, स्थिर, युवक, बुद्धि-उत्साह-स्मृति-प्रज्ञा-कला तथा मान से युक्त, शूर, दृढ़, तेजस्वी, शास्त्रों का ज्ञाता और धार्मिक होना अनिवार्य है।

किष्कर्षतः राजनीति का अधिकारी एवं संचालनकर्ता उक्त गुणोपेत व्यक्ति ही मान्य है एवं उक्त व्यक्ति के हाथों में ही राजनीति शोभा समन्वित होती है। उक्त व्यक्ति ही राम के समान आदर्श राज्य की स्थापना में सक्षम एवं आदर्श होते हैं।

"वाल्मीकि-रामायण" को आधार मानकर तत्कालीन राजनीतिक तत्वों की विवेचना के माध्यम से प्रस्तुत ग्रन्थ में राजनीति

---

१. प्रजासुखेसुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम्।
नात्मप्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम्॥
—कौटिलीय अर्थशास्त्र १।१९

२. दशरूपकम् २।१, २

के स्वरूप-प्रत्यक्षीकरण के साथ राजनीतिज्ञों एवं प्रशासकों को राजनीति के स्वरूप एवं गुणों को आत्मसात करने हेतु उत्प्रेरणाएँ सन्निहित हैं। राम-राज्य की स्थापना हेतु तथा राम जैसे आदर्श उन्नायकों की निर्मिति हिताय प्रस्तुत ग्रन्थ की विचारणाएँ सार्थक सिद्ध होंगी, इसी विश्वास के साथ यह कृति प्रस्तुत है।

पूर्वजों का सच्चा श्राद्ध उनके स्मरण में स्वीकार कर परम श्रद्धेय ताऊ स्व० श्रीयुत भवानी प्रसाद, श्रीयुत केशवप्रसाद, पिता श्रीयुत रामभरोसे, पितृव्य श्रीयुत भैयालाल, श्रीयुत मोतीलाल, श्रद्धेय ताई, माँ तथा आई एवं ज्येष्ठ भ्राता श्रीयुत नाथूराम जी नौगरइया [गुप्त] का सादर सविनय नमन सहित स्मरण।

कार्य की सिद्धि में आशीष, उत्प्रेरणा एवं निर्देशन के लिये परम पूज्य गुरुजनों—डा० प्रभुदयालु अग्निहोत्री [भूतपूर्व कुलपति, जबलपुर विश्वविद्यालय, जबलपुर, म० प्र०], प्रो० श्रीयुत एस० एन० पन्त [अवकाश प्राप्त, अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, टी० आर० एस० कालेज, रीवा, म० प्र०] प्रो० श्रीयुत चन्द्रभूषण सिंह चौहान, [अंग्रेजी विभाग] प्रो० श्रीमती शकुन्तला मलिक (अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, शा० एम० एल० बी० कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, ग्वालियर, म० प्र०) तथा अन्य समस्त परम पूज्य गुरुजनों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता।

जीवन में सदैव सन्मार्ग के उत्प्रेरक अतएव परम श्रद्धास्पद संस्कृत महाकवि पं० श्रीयुत सुधाकर शुक्ल (दतिया, डा० श्रीकृष्ण गुप्त (अवकाश प्राप्त, अध्यक्ष एवं प्राध्यापक, संस्कृत-विभाग, शा० एम० एल० बी० कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, ग्वालियर, म० प्र०), श्रीयुत माधवसिंह चौहान (अवकाश प्राप्त, जिला शिक्षा-अधिकारी, दतिया), श्रीयुत सतीश चन्द्र शर्मा (अवकाश प्राप्त, शिक्षा उपसंचालक निवास-ग्वालियर) डा० हरिहर गोस्वामी (प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, शा० स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दतिया), श्रीयुत बी० एम० कुमार (पुलिस अधीक्षक, दतिया), प्रोफेसर श्रीयुत

नरेन्द्र उपाध्याय (अध्यक्ष, विधि विभाग, शा० स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दतिया) के प्रति हृदय से आभार।

अपने सम्माननीय भाइयों श्रीयुत सीताराम, श्रीयुत श्रीराम एवं श्रीयुत बी० एल० गुप्त के प्रति आदर-भावाभिव्यक्ति।

प्रस्तुत कार्य में व्यावहारिक सहयोग के लिये श्रद्धेया बहिन डा० सुषमा कुलश्रेष्ठ (संस्कृत-प्राध्यापक डी० आर० कालेज, दिल्ली) सम्मान्य बन्धु श्रीयुत नारायण प्रसाद उपाध्याय (संस्कृत व्याख्याता, ग्वालियर) प्रिय बन्धु डा० निलय गोस्वामी (स० प्राध्यापक, हिन्दी, शा० महाविद्यालय, बैतूल) के प्रति हृदय से सम्मान एवं प्रिय जामातृ श्री हरिप्रकाश नीखरा तथा प्रिय पुत्र श्री राजेश गुप्त के प्रति स्नेह। मेरी पुत्रियों—उमा गुप्ता एवं अपर्णा गुप्ता तथा पत्नी श्रीमती लक्ष्मी गुप्ता का प्रोत्साहन भी उक्त सभी के नामोल्लेख के लिये मुझे अनुप्रेरित करता है।

अन्त में,

"सिया राम मय सब जग जानी
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी"

उक्त पावन भाव से सम्पूर्ण चराचर को विनत नमन सह प्रस्तुत कृति का लोकहिताय लोकार्पण।

निवेदक
डा० रामेश्वर प्रसाद गुप्त
आचार्य एवं अध्यक्ष [संस्कृत विभाग]
शा० स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
दतिया (म० प्र०)

दिनाङ्क
५.५.१९९३

विषयानुक्रमणिका

प्रास्ताविक vii

निवेदन xi

भूमिका १-१८

राजनीति की परिभाषा, राजनीति का महत्त्व, साहित्य में राजनीति के कार्य की संक्षिप्त रूपरेखा, राजनीति तथा वाल्मीकि रामायण ।

प्रथम अध्याय—वाल्मीकि और उनकी रामायण १९-५९

आदिकवि महर्षि वाल्मीकि—समय एवं जीवन, व्यक्तित्व एवं कृतित्व । रामायण-परिचय, आदिकाव्य, रामायण के संस्करण, समय, स्रोत, मूल एवं प्रक्षिप्त अंश, रामायण का महत्त्व, रामायण पर आलोचनात्मक कार्य, रामायण का उपयोग ।.

द्वितीय अध्याय—रामायण में राज्यों का संगठन ६०-८४

राज्य की परिभाषा, राज्य का उद्भव, रामायण में राज्यों का संगठन, रामायणानुसार राज्य के कार्य एवं उद्देश्य, रामायण में एकतन्त्र और उसका स्वरूप, रामायण में राज्यों का वर्गीकरण ।

तृतीय अध्याय—रामायणकालीन शासन व्यवस्था ८५-२१२

राजतन्त्र शासन, राजा, राजा की उत्पत्ति, रामायण में राजपद, राजा का व्यक्तित्व, राजकुमार की शिक्षा, राजा का निर्वाचन, राज्याभिषेक, राजचिह्न, राजा की प्रतिज्ञा,

राजा पर नियन्त्रण, राजा की दिनचर्या, राजा के कर्त्तव्य एवं अधिकार, राजा को सुविधाएँ, राजा की दिग्विजय, राजा का देवत्व, राजा का अधिकार-परित्याग, राजा का आदर्श, राम एक आदर्श राजा, रामराज्य का आदर्श ।

मन्त्री—महत्त्व, मन्त्रियों की नियुक्ति, मन्त्रियों की संख्या, मन्त्रियों के प्रकार, पुरोहित, मन्त्रियों की योग्यता, मन्त्रियों के कार्य, मन्त्रियों के पदों का विभाजन, विभिन्न विभाग, मन्त्रिपरिषद्, मन्त्रियों का आवास, पहनावा, वेतन, राजा, मन्त्री, तथा मन्त्रणा, मन्त्रणा के प्रकार, तीर्थ, अन्य-पदाधिकारी ।

सभा—सभा का गठन, पौरजानपद, नैगम, श्रेणी, सभा सदस्यों की योग्यता, सभापति, सभाभवन, सभा की बैठक, रामायण में सभा—एक दृष्टि (सभा की कार्यवाही), अयोध्या और लङ्का की सभा—एक समालोचना, सभा के कर्तव्य, सभा के अधिकार, रामायणकालीन सभा की विशेषताएँ, रामायण में मन्त्रिपरिषद् और सभा ।

कोष—महत्त्व, आय के स्रोत, कर लेने की विधि, राज्य की आय का व्यय, विशेष ।

न्याय—महत्त्व, न्याय का आधार 'विधि, रामायण में विधि के स्रोत, न्यायालय, न्याय सभा का संगठन, न्यायधीशों की योग्यता, न्यायपद्धति, न्याय की विशेषताएँ ।

दण्ड—रामायण में दण्ड का महत्त्व, दण्ड व्यवस्था, दण्डधर, अपराधी, अपराध, दण्ड के सिद्धान्त, दण्ड के प्रकार ।

रामायणकालीन प्रशासन—एक दृष्टि—रामायण में विधि एवं संविधान, सरकार, रामायण में व्यवस्थापिका, कार्य-पालिका, सचिवालय, न्यायपालिका, केन्द्रीय एवं ग्रामीण प्रशासन, रामायणकालीन शासन की विशेषताएँ, गृहनीति, रामायणकालीन शासन के दोष ।

चतुर्थ अध्याय—रामायणकालीन सैनिक संगठन तथा युद्ध २१३-२६७

सैनिक संगठन की आवश्यकता, रामायण में सैनिक संगठन, सेना का प्रधान—राजा, सेनापति, सेनापति की नियुक्ति, सेना—चतुरंगबल, विभिन्न सैन्य श्रेणियाँ, स्थल सेना, वायु सेना, नौ सेना, सेना की संख्या, सैनिकों का प्रशिक्षण, सारथी, दूत, गुप्तचर, शिविरनियन्ता, सैनिक, अनुशासन, सैनिकों को सुविधाएँ।

अस्त्र-शस्त्र—सुरक्षात्मक आयुध, आयुधागार।

मित्र—मित्र के प्रकार, मित्र के प्रति व्यवहार, मित्र के कर्तव्य।

दुर्ग—दुर्ग के प्रकार, सुरक्षा एवं सुविधा।

युद्ध—युद्ध के प्रकार, युद्ध के कारण, युद्ध का समय, यान, शिविर की व्यवस्था, युद्ध की तैयारी, युद्ध की घोषणा, युद्ध का आरम्भ, दुर्गों का विध्वंस, युद्ध के समय सावधानी, युद्ध में उत्साह, रामायण में युद्ध और उसके विविध रूप, कूटयुद्ध, आकाशयुद्ध, युद्ध में विजयार्थ यज्ञ, युद्ध में षड्गुण एवं चार नीतियाँ, युद्ध के नियम, युद्ध में सैनिकों की चिकित्सा, युद्ध में मृत सैनिकों का प्रबन्ध, युद्ध में बन्दी, युद्ध के पश्चात् विजित रांज्य के प्रति व्यवहार, राक्षसों की हार के कारण।

रामायण में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध

पञ्चम अध्याय—रामायणकालीन समाज, धर्म और राजनीति २६८-३०९

रामायणकालीन समाज का गठन, वानरों की मनुष्यत्व सिद्धि, वानर नामकरण, राक्षसों की मनुष्यत्व सिद्धि, राक्षस नामकरण, रामायण में वर्णव्यवस्था, आश्रम

व्यवस्था, रामायणकालीन समाज की सभ्यता एवं संस्कृति, उत्तरभारत के आर्यों की सभ्यता, उत्तर भारत के आर्यों की संस्कृति, वानरों की सभ्यता, वानरों की संस्कृति, राक्षसों की सभ्यता, राक्षसों की संस्कृति, रामायणकालीन समाज की तीन प्रमुख विशेषताएँ, रामायणकालीन समाज—एक आलोचनात्मक दृष्टि, रामायणकालीन समाज के दोष, रामायकालीन धर्भ, धर्म की परिभाषा, रामायण में धर्म के प्रकार, रामायणानुसार धर्म और राजनीति।

उपसंहार ३१०-३१२

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची ३१३-३१६

भूमिका

राजनीति की परिभाषा

राजनीति राज्य सम्बन्धी नीति है। राजनीति में दो पद हैं—राज्य एवं नीति। 'राज्य' पद, राजन्+यत् से निर्मित है। इसका शाब्दिक अर्थ है राजा का (क्षेत्र)। इस प्रकार राज्य से तात्पर्य राजा के क्षेत्र या संस्था से है। नीति शब्द 'नी' धातु (निर्देश देना या मार्ग प्रदर्शन करना) से क्तिन् प्रत्यय लग कर बना है। नीति का अर्थ है 'उचित निर्देशन'। इस प्रकार राजनीति का शब्दार्थ 'राज्य सम्बन्धी उचित निर्देशन' है। राजनीति राज्य के चार तत्त्वों—भूमि, जनता, सरकार एवं सम्प्रभुता की व्यवस्था की नीति है। यह राज्य के स्थायित्व एवं उसके कार्यों को सुचारु रूप से संचालित करने का निर्देशन है। यह राज्य से सम्बन्धित कार्यों के विषय में उचित या अनुचित का परिज्ञान कराने वाली नीति है। इस नीति के निर्देशन के अनुचित होने पर राज्य का विनाश होता है और उचित होने पर राज्य का स्थायित्व दृढ़ होता है। अतः यह राज्य की शक्ति का नियन्त्रण और आधिपत्य करने कीक्रिया है।

राजनीति राज्य के प्रत्येक पहलू अर्थात् समाज, उसके व्यवहार, उसके शासन एवं विदेश नीति को भी प्रभावित करती है। राजनीति तत्सम्बन्धी सम्पूर्ण राज्य एवं सम्बन्धित राज्य के अतिरिक्त क्षेत्र को भी पूर्णतः प्रभावित करती है। अतः इसका क्षेत्र न केवल सम्बन्धित राज्य की भूमि, जनसमुदाय, सरकार व सम्प्रभुता से ही हैं अपितु अन्य राज्यों तक भी विस्तृत है।

राजनीति के नैतिकता, सत्य, ईमानदारी, कर्त्तव्य-पालन, परोपकार, रक्षा करना, विकास करना, संरक्षण एवं स्थायित्व के भाव को उत्पन्न करना आदि गुण हैं। राजनीति के चार मूल तत्त्व हैं—

(१) धार्मिक एवं नैतिक आधार।
(२) व्यक्ति एवं समाज का सम्बन्ध स्थापित करना।
(३) सब की स्वतन्त्रता बनाये रखना।
(४) प्रजातन्त्रात्मक विधि को बनाये रखना।

प्राचीन भारत में राजनीति राज्य के सप्ताङ्गों पर आधारित थी। इसमें नैतिकता आदि सभी गुण समाहित थे। इसके चार अंग—साम, दाम, भेद, और दण्ड थे। राज्य के प्रत्येक कार्य को कार्यान्वित करने के लिये, चाहे वह कार्य आन्तरिक हो या बाह्य इन चारों का योग अपरिहार्य है। शासक को राज्य के प्रत्येक कार्य के संचालन और सिद्धि के लिये सर्वप्रथम साम (शान्ति का भाव) से कार्य करना चाहिये। यदि साम से कार्य की सिद्धि सम्भव न हो, तो दाम (लालच देकर) से अभीष्ट की प्राप्ति करे। इससे भी यदि कार्य में सफलता की प्राप्ति न हो, तो भेद से (विरोधी वर्ग में फूट डालकर) कार्य की सिद्धि करे। यदि भेद से भी वाञ्छित की अनुपलब्धि रहे, तो दण्ड (दमन) का आश्रय लेना चाहिये। इन चारों के यथोचित प्रयोग से राज्य में अराजकता का भय नहीं रहता और उस राज्य की सुदृढ़ता के कारण अन्य राज्य भी उस पर आँख उठा कर देखने का साहस नहीं करते।

'राजनीति' नीति और धर्म से युक्त है। वस्तुतः नीति, राजनीति और धर्म समान धर्म वाले हैं, अन्तर केवल क्षेत्र का है। नीति का क्षेत्र व्यक्ति तक ही सीमित है। नीति कहती है कि नागरिक 'आदर्श' हो। राजनीति का क्षेत्र सम्पूर्ण राज्य

पर्यन्त है। राजनीति एक आदर्श राज्य का निर्माण करती है। धर्म का क्षेत्र नीति और राजनीति के क्षेत्र से वृहत्तर है। 'धर्म' व्यक्ति और राज्य के सहित सम्पूर्ण समाज या संसार के आदर्श की ओर दृष्टि रखता है। वस्तुतः तीनों का रूप या गुण एक ही है। तीनों का लक्ष्य भी एक ही है। तीनों में नैतिकता की प्रधानता है।

राजनीति के नीति शब्द से स्पष्ट है कि यह 'नीति' या 'नैतिकता' से घनिष्ट सम्बन्ध रखती है। इसीलिये राम ने भरत से राज्यकार्य संचालन में नीति का आश्रय लेने पर बल दिया था।[1] राजनीति का धर्म से भी घनिष्ट सम्बन्ध है। बाल्मीकि-रामायण में राजनीति के साथ धर्म के सम्बन्ध का महत्त्व अनेक स्थलों पर दर्शाया गया है।[2] अयोध्याकाण्ड में निर्दिष्ट है कि धर्मानुसार प्रजा का पालन करने वाले नीतिज्ञ और शासनदण्डधारी राजा को स्वर्ग की प्राप्ति होती है।[3]

अस्तु, 'राजनीति' नीति और धर्म से सम्बन्धित राज्य की नीति है। इसका उद्देश्य राज्य में नैतिकता का प्रसार और उसकी रक्षा करना एवं उत्तम नागरिकों का निर्माण करके एक आदर्श राज्य की स्थापना करना है।

---

१. तां वृत्तिं वर्तसे कच्चिद् या च सत्पथगा शुभा।
वा० रा० २-१००-७५

२. रक्ष्या हि राजा धर्मेण सर्वे विषयवासिनः।
—वा० रा० २-१००-४९

३. राजा तु धर्मेण हि पालयित्वा, महामतिर्दण्डधरः प्रजानाम्।
अवाप्य कृत्स्नां वसुधां यथावदितश्च्युतः स्वर्गमुपैति विद्वान्।
—वा० रा० २-१००-७७

राजनीति के अनेक नाम

राजनीति के लिये अनेक नामों का प्रयोग किया गया है। कौटिल्य ने इसे दण्डनीति कहा है।[१] वाल्मीकि रामायण में इसके लिये 'राजधर्म' प्रयुक्त है।[२] मनुस्मृति में प्रयुक्त 'राजधर्म' भी राजनीति का बोधक है।[३] महाभारत में राजनीति के लिये राजधर्म[४] एवं राज्यशास्त्र का प्रयोग है। भर्तृहरि ने इस विधा के लिये नृपनीति[५] शब्द का प्रयोग किया है। इस प्रकार राजनीति भिन्न-भिन्न नामों से अभिहित होती है।

राजनीति का महत्त्व –

राज्यों के निर्माण के साथ ही साथ राजनीति का भी प्रार्दुभाव हुआ होगा। राज्य के स्थायित्व का आधार ही राजनीति है। कौटिल्य के अनुसार यह समस्त विधाओं के योग-क्षेम की नीति है।[६] इसे अप्राप्त वस्तु को उपलब्धि कराने वाली, लब्ध की रक्षा करने वाली, रक्षित वस्तु की वृद्धि कराने वाली एवं बर्धित वस्तु को उपयुक्त पात्रों में उपयोग कराने वाली कहा गया है।[७] इसे लोक-यात्रा (सामाजिक-व्यवहार) की सफलता का भी आधार कहा गया है।[८] स्पष्ट है कि राज्य की प्राप्ति, उसकी रक्षा एवं उसकी उन्नति

---

१. अर्थशास्त्र १-२, १-४

२. किं मे धर्माद्विहीनस्य राजधर्मः करिष्यति।
—वा० रा० २-१०१-१

३. राजधर्मान्प्रवक्ष्यामि। मनुस्मृति ७-१

४. महाभारत शान्तिपर्व ६३-२६

५. नृपिनीतिरनेक रूपा-नीतिशतकम् श्लोक ४७

६. अर्थशास्त्र १-४

७. अलब्धलाभार्था लब्धपरिरक्षिणी रक्षितविवर्धनी वृद्धस्य तीर्थेषु प्रतिपादिनी च। —अर्थशास्त्र १-४

८. तस्यामायत्ता लोकयात्रा। अर्थशास्त्र १-४

के लिये राजनीति का ज्ञान परमावश्यक है। इस पर निर्भर लोकयात्रा की सफलता इसके महत्त्व को और भी बढ़ा देती है। इसी कारण से शुक्राचार्य के अनुयायी केवल दण्डनीति (राजनीति) को ही विद्या मानते हैं।[1] उनके मत में समस्त विद्याओं (आन्वीक्षिकी, त्रयी और वार्ता) का समावेश राजनीति में ही हो जाता है। क्योंकि सुचारुरूपेण राज्य व्यवस्था चलने पर सब विद्याओं के व्यवहार की स्वतः सिद्धि हो जाती है।[2]

राजनीति का पतन होने पर समस्त विद्याओं और समस्त धर्मों का, चाहे वे उन्नत ही क्यों न हों, नाश हो जाता है। राजनीति के महत्त्व को दृष्टि में रखते हुये महाभारत में निर्दिष्ट है कि 'आत्म-त्याग के सभी रूप राजनीति में देखे जा सकते हैं, सभी विद्यायें राजनीति में विलीन हो जाती हैं, सभी ज्ञान राजनीति में प्रविष्ट हैं एवं समस्त संसार राजनीति में केन्द्रित हैं।[3]

वस्तुतः राजनीति राज्य का आधार स्तम्भ है। यदि राज्य में उसकी नीति का निर्धारण न हो तो वह अस्तित्व विहीन हो जाता है। राजनीति का निर्धारण राज्य के संचालन के लिये अपरिहार्य है। राज्य की व्यवस्था को बनाने के लिये, उसके विकास एवं उत्कर्ष के लिये एवं आदर्श राज्य के निर्माण के लिये राजनीति का महत्त्वपूर्ण योग है।

संस्कृत साहित्य में राजनीति के कार्य की संक्षिप्त रूपरेखा

वेदों में राजनीतिक तत्त्व—साहित्य सृजन के प्रारम्भ से ही राजनीति सम्बन्धी कार्य ने साहित्य में अपना स्थान निश्चित कर

---

१. दण्डनीतिरेका विद्येत्योशनसाः। अर्थशास्त्र १-२

२. तस्यां हि सर्व विद्यारम्भाः प्रतिबद्धा। अर्थशास्त्र १-२

३. सर्वे त्यागा राजधर्मेषु दृष्टा, सर्वाः दीक्षा राजधर्मेषु युक्ताः।
सर्वा विद्या राजधर्मेषु चोक्ताः, सर्वे लोका राजधर्मे प्रविष्टाः।
—महाभारत शान्ति पर्व ६३-२६

लिया था। वेद हमारी संस्कृति और साहित्य के प्राचीनतम ग्रन्थ माने जाते हैं। हम देखते हैं कि वैदिक साहित्य में भी राज्य सम्बन्धी नियमों का विस्तृत उल्लेख है।

ऋग्वेद वेदों में सर्वाधिक प्राचीन माना जाता है। प्रस्तुत ग्रन्थ में भी राजनीति सम्बन्धी विचार द्रष्टव्य हैं। ऋग्वेद के दो सूक्त (१०।१७३, १७४) राजनीति विषयक विचारों की दृष्टि से महत्त्व पूर्ण हैं। इनमें प्रजा द्वारा राजा के निर्वाचन से सम्बन्धित विवेचन है। अथर्ववेद के (७।८७-८८) सूक्त भी राजा के संवरण से सम्बन्धित है। अथर्ववेद के दो सूक्तों (३।३ एवं ३।४) में राजा के पुनः स्थापन एवं प्रजा द्वारा संवरण का विस्तृत विवेचन है। इसमें सभा एवं समिति के रूप में राजनैतिक संगठन का भी संकेत मिलता है।[1] इस प्रकार वेदों में अनेक स्थलों पर राजनीति सम्बन्धी विचारों का विवेचन है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में राजनीति

ब्राह्मण-ग्रन्थों में भी राजनीतिक तत्त्वों का विस्तृत विवेचन है। इनमें राजा के अभिषेक का वर्णन एवं उसकी प्रतिज्ञाओं का उल्लेख,[2] राजा के स्थायित्व के लिए राजसूय एवं अश्वमेघ यज्ञों का अनुष्ठान,[3] राजा से सम्बन्धित सेनानी, पुरोहित आदि। ग्यारह 'रत्नी' अधिकारियों का उल्लेख,[4] एवं अनेक शासन पद्धतियों 'भोज्य, स्वाराज्य, साम्राज्य, एवं राज्य का उल्लेख[5]

---

१. अथर्ववेद ७।१२।१, २
२. शतपथ ब्रा० ५।३।५।२ एवं तैत्तिरीय ब्रा० १।७।१०।१-६ एवं ऐतरेय ब्राह्मण ८।३।१५
३. शतपथ ब्राह्मण काण्ड १३
४. शतपथ ब्रा० ५।३
५. ऐतरेय ब्राह्मण ८।३

राजनीतिक विचारों की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इसी प्रकार तैत्तिरीय और पञ्चविंश ब्राह्मण में भी राजनीतिक तत्त्वों का विवेचन किया गया है। स्पष्ट है कि वैदिक साहित्य में राजनीतिक विचारों का विशद उल्लेख है।

रामायण और महाभारत में राजनीतिक विचार

लौकिक संस्कृत साहित्य के प्राचीन काव्य ग्रन्थ रामायण और महाभारत में भी राजनीतिक विचार पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होते हैं। रामायण में राज्य के सप्ताङ्गों का संकेत देकर उन-उन राज्याङ्गों के विषय में विस्तृत विचार विमर्श किया गया है।[1] प्रस्तुत शोध-ग्रन्थ में इसका विस्तृत विवेचन किया जायेगा।

महाभारत में राजनीतिक विचारों का विवेचन विस्तृत रूप में किया गया है। शान्तिपर्व राजनीतिक तत्त्वों के विवेचन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इसमें राजधर्म का सुन्दर विवेचन है। इसके अतिरिक्त सभापर्व (अध्याय ५) में शासन का आदर्श, आदि पर्व (अध्याय १४२) में शस्त्रादि का वर्णन, सभापर्व (अध्याय ३२) में और वनपर्व में (अध्याय २५, ३२, ३३ एवं १५०) आपत्ति कालिक नीतियों पर विचार प्रस्तुत किए गए हैं। उपर्युक्त राजनीति विषयक समस्त कार्य, कथाओं के माध्यम से है।

राजनीति पर स्वतन्त्र कार्य—

वस्तुतः राजनीति के सिद्धान्तों पर स्वतन्त्र रूप से साहित्य पांचवीं या छठवीं शताब्दी ईस्वी पूर्व से पहले का नहीं है। महाभारत में कहा गया है कि राजनीति के सिद्धान्तों पर कार्य

---

१. अप्रमत्तो वले कोशे दुर्गे जनपदे तथा, भवेथा गुह राज्यं हि दुरारक्षतमं मतम्। —वा० रा० २।५२।७२

एवं —यस्य कोशश्च दण्डश्चमित्राण्यात्मा भूमिप, समवेतानि सर्वाणि सराज्यं महदश्नुते। —वा० रा० ४।२६।१-२

ब्रह्मदेव के द्वारा एक लाख से भी अधिक श्लोकों में किया गया है। इस कार्य को सफलतापूर्वक विशालाक्ष (शिव), महेन्द्र, बृहस्पति और काव्य (शुक्र) द्वारा संक्षिप्त रूप दिया गया। इनके अतिरिक्त मनु, प्राचेतस, भरद्वाज और गौरशिरा आदि राजनीति शास्त्र के प्रणेताओं के नाम एवं वैशालाक्ष, बाहुदन्तक, बार्हस्पत्य आदि शास्त्रों का नाम भी महाभारत में निर्दिष्ट है।[१] उपर्युक्त राजनीति शास्त्र के प्रणेताओं के ग्रन्थ अनुपलब्ध होने पर भी यह तो स्पष्ट ही है कि राजनीति विषयक सामग्री का सृजन सातवीं शताब्दी ईस्वी पूर्व तक हो चुका था।

राजनीति विषयक स्वतन्त्र ग्रन्थ पाँचवीं या छठवीं शताब्दी ईस्वी पूर्व के पश्चात् के उपलब्ध है। मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति, पारासरस्मृति, शुक्रनीति आदि राजनीति के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।

राजनीति के सिद्धान्तों पर विस्तृत एवं महत्त्वपूर्ण विचारों का संग्रह हमें कौटिल्य के अर्थशास्त्र (चौथी शताब्दी ईस्वी पूर्व) में मिलता है। राज्य के सप्ताङ्ग ही कौटिलीय अर्थशास्त्र की विषय-सूची का आधार है। इन्होंने स्पष्ट किया है कि राज्य की सातों प्रकृतियों या अङ्गों के मिल कर कार्य करने से राज्य रूपी शरीर सुचालित तथा परिपुष्ट होता है। इन्होंने अपने ग्रन्थ में अन्य पूर्वाचार्यों—भरद्वाज (द्रोण), विशालाक्ष (शिव), पिशुन (नारद), कौणकदन्त (भीष्म), वातव्याधि (उद्धव), बाहुदन्तीपुत्र (इन्द्र), परासर एवं पाराशर के मन्तव्यों एवं सिद्धान्तों का उल्लेख करते हुए उनके मत का खण्डन किया है। कौटिल्य के राजनीति विषयक विचार अत्यन्त उन्नत हैं। इनके बाद के राजनीति विषयक ग्रन्थों में इनके विचारों के अतिरिक्त नवीन तत्त्वों का समावेश नहीं हो सका।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अनन्तर कामन्दकीय नीतिसार (लगभग चौथी शताब्दी ईस्वी) राजनीति का ग्रन्थ सामने आया।

---

१. महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय ५७-५९

यह कार्य कौटिल्य के कार्य का संक्षिप्त रूप ही है। तीसरी शताब्दी ईस्वी के लगभग विष्णुशर्मा द्वारा राजनीतिक विचारों से युक्त 'पञ्चतन्त्र' की रचना की गई।[1] यह ग्रन्थ भी अर्थशास्त्र का सार रूप ही है। जैसा कि प्रस्तुत ग्रन्थ से स्पष्ट होता है।[2] इसके अनन्तर जैन लेखक सोमदेवसूरि (९६० ई०) का 'नीतिवाक्यामृत' भी पूर्व रचित राजनीतिक विचारों का संक्षिप्त रूप है।

एक हजार ई० के लगभग राजनीति विषयक सिद्धान्तों के अनेकानेक स्वतन्त्र ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। 'शुक्रनीति' (आठवी शताब्दी ई०) राजनीति का अगला कार्य है। यह शासन सम्बन्धी विचारों की दृष्टि से अपना विशेष महत्त्व रखता है। यह राजा, मन्त्री एवं अन्य अधिकारियों के कर्तव्यों का विवेचन करता हुआ विदेश नीति, युद्ध, न्याय आदि से सम्बन्धित विचारों को प्रस्तुत करता है। राजनीतिक विचारों को प्रस्तुत करने वाला एक अन्य ग्रन्थ 'बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र' हैं। यह भी पूर्व विचारों का ही विवेचन करता है।

पुराणों में भी राजनीति विषयक पर्याप्त विचार पाये जाते हैं। अग्निपुराण, गरुडपुराण, मत्स्यपुराण, मार्कण्डेयपुराण आदि में कथाओं के माध्यम से राजनीतिक विचारों का उल्लेख है। लेकिन इनमें कोई मौलिकता नहीं है।

१००० ई० से १७०० ई० तक नीति और धर्म विषयक अनेक पुस्तकें विरचित हुई। इनमें राजनीति सम्बन्धी विचार भी पाये जाते हैं। इस समय के राजनीति सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ मुख्य रूप से निम्नलिखित हैं—सोमेश्वर का 'अभिलाषितार्थ चिन्तामणि'

---

१. सस्कृत साहित्य की रूपरेखा पृष्ठ, ३२२

२ सकलार्थशास्त्रसारं जगति समालोक्य विष्णुशर्मेदसम्।
तन्त्रैः पञ्चभिरेतच्चकार सुमनोहरं शास्त्रम्।
—पञ्चतन्त्रम्—श्लोक ३

(प्रथम चार अध्याय), भोज का 'युक्तिकल्पतरु' (१०२५ ई०), लक्ष्मीधर का 'राजनीतिकल्पतरु' (११२५ ई०) अन्नभट्ट की नीति चन्द्रिका (१२०० ई०), देवनभट्ट का 'राजनीतिकाण्ड' (१३०० ई०), चण्डेश्वर का 'राजनीतिरत्नाकर' (१३२५ ई०), नीलकण्ठ का 'नीतिमयूख' (१६२५ ई०) और मित्रमिश्र का 'राजनीति प्रकाश' (१६५० ई०)। इन सभी में राजनीति की अपेक्षा परमार्थ सम्बन्धी विचारों का उल्लेख अधिक है। लेकिन फिर भी राजा, मंत्री, दुर्ग, कोष एवं गृह और विदेशनीति आदि से सम्बन्धित विचारों का वर्णन राजनीति की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।[1]

धर्मसूत्र एवं स्मृतियों में भी राजनीतिक विचारों का विवेचन है। यद्यपि यह ग्रन्थ धार्मिक दृष्टि से लिखे गये हैं परन्तु इनमें भी राज्य व्यवस्था एवं राजा से सम्बन्धित कार्य-कलापों का विस्तृत विवेचन है।

संस्कृत के काव्यों एवं नाटकों में राजनीति—

संस्कृत के काव्यों एवं नाटकों में भी राजनीतिक विचारों का समावेश है। 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' (भास, चौथी शताब्दी ई० पूर्व) रघुवंश और मालविकाग्निमित्र (कालिदास, प्रथम शताब्दी ई० पू०), हितोपदेश (नारायण पण्डित, चौदहवी शताब्दी ई०), कादम्बरी और हर्षचरितम् (बाणभट्ट, ७वीं शताब्दी ई०), दशकुमारचरित (दण्डी, ६वीं शताब्दी ई०), राजतरङ्गिणी (कल्हण, १२वीं शताब्दी ई०), किरातार्जुनीयम् (भारवि ६वीं शताब्दी ई०), शिशुपालवध (माघ, ७वीं शताब्दी ई०), आदि ग्रन्थों में राजनीतिक विचारों का उल्लेख है।

संस्कृत साहित्य के अतिरिक्त पालि, प्राकृत एवं अपभ्रंश साहित्य में भी राजनीतिक विचार दृष्टिगोचर होते हैं। आचारंग सूत्र (प्राकृत भाषा में लिखित), दीर्घनिकाय, चुल्लवग्ग, दिव्यावदान और

---

१. स्टेट एण्ड गवर्मेन्ट इन एन्श्यन्ट इण्डिया, पृ० २०

जातक (पालि भाषा में विरचित) भी प्राचीन भारतीय राजनीति विषयक सामग्री का उल्लेख करते हैं।

शिलालेखों एवं मुद्राओं में राजनीति—

प्राचीन भारत के ताम्रपत्र और शिलालेख भी राजनीतिक सिद्धान्तों का उल्लेख करने के कारण अपना महत्त्व रखते हैं। यह राज्य के कार्यों के विषय में विचार व्यक्त करते हैं। इनमें अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के विषय में भी निर्देश मिलते हैं।

प्राचीन मुद्रायें भी प्राचीन भारतीय राजनीति के विषय में उल्लेख करती हैं। शिवि, मालव, अर्जुनायन, कुणेद, योधेय इत्यादि गणतन्त्रों का अस्तित्व मुद्रा लेखों से स्पष्ट सिद्ध हो जाता है।[1]

इस प्रकार संस्कृत साहित्य में स्वतन्त्र रूप से तथा साहित्य के माध्यम से राजनीतिक विचार विशद रूप से वर्णित हैं।

राजनीति सम्बन्धी आलोचनात्मक कार्य—

राजनीति विषयक मूल कार्य के अतिरिक्त तत्सम्बन्धी आलोचनात्मक कार्य भी प्रचुरता से प्राप्त होता है। यह कार्य अब और तीव्र गति से हो रहा है। संस्कृत साहित्य के राजनीतिक विचारों से सम्बन्धित मूल ग्रन्थों एवं साहित्य ग्रन्थों-वेदों, ब्राह्मणों, (ब्राह्मण ग्रन्थों), आख्यानों, स्मृतियों, पुराणों, काव्यों एवं नाटकों आदि में वर्णित राजनीतिक विचारों को आधार मानकर विद्वानों ने राजनीति सम्बन्धी आलोचनात्मक कार्य करके प्राचीन भारत की राजनीति पर प्रकाश डाला है। यह कार्य भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने किया है।

पाश्चात्य विद्वानों की यह धारणा थी कि भारतीयों में राजनीतिक विचारों की कमी है। तथ्य को न जानते हुये पाश्चात्य विद्वानों ने भारतीयों में इस कमी का उल्लेख किया है। प्रो० डनिंग ने अपने कार्य 'ए हिस्ट्री आफ पोलिटिकल थ्योरीज, एन्श्यन्ट

१. प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृ० १८

एण्ड मिडिवल' की भूमिका में लिखा है कि पूर्ववर्ती आर्यों ने अपनी राजनीति को अध्यात्म विद्या और परमार्थ विद्या के वातावरण से, जिसमें वह आज दबी हुई है, कभी मुक्त नहीं किया।[१] इसी प्रकार १८५६ ई० में प्रो० मैक्समूलर ने 'हिस्ट्री आफ एन्श्यन्ट संस्कृत लिटरेचर' (पृष्ठ ३०, ३१) में लिखा है कि, 'भारतीयों ने राष्ट्रीयता की भावना को कभी नहीं जाना हिन्दुओं का देश दार्शनिकों का देश था। ऐसे ही ग्रीन ने भारतीयों की राजनीति पर आरोप लगाते हुये लिखा है कि पूर्वीराज्य मुख्यतः कर एकत्रित करने वाली संस्थायें हैं।[२] सेनार्ट ने भारतीयों को राज्य या पितृभूमि के प्रति विचारों से रहित कहा है। उनके मत से भारतीयों के विचार राजनैतिक संविधान का विस्तार नहीं कर सके।[३] उपर्युक्त विद्वानों के विचारों से यह निष्कर्ष निकलता है कि भारतीय लोगों का राजनीतिक सिद्धान्तों पर कोई योगदान नहीं है। लेकिन उनके यह विचार निर्मूल है। उपर्युक्त विद्वानों के द्वारा भारतीय शास्त्रों का सम्यक् अध्ययन न किये जाने के कारण ही यह विचार प्रकट किये गये हैं। इन विद्वानों के कथन भारतीयों के लिये चेतावनी के कारण बने और भारतीय विद्वानों का ध्यान राजनीति के कार्य की ओर गया। १९वीं शताब्दी के अन्तिम तीन दशकों में भगवान लाल इन्द्राजी, आर० जी० भण्डारकर, आर० एल० मित्र एवं बी० जी० तिलक ने उपर्युक्त विद्वानों के कथनों को निर्मूल सिद्ध किया। 'इन विद्वानों ने अपने देश के अतीत इतिहास का अनेक रूपों में अनुसंधान के द्वारा अपने समय की, अपने देश की राजनैतिक और सामाजिक प्रगति के लिए एक सशक्त स्थिति बनाने का

१. सम आस्पेक्ट आफ एन्श्यन्ट हिन्दू पोलिटी, डा० डी० आर० भण्डारकर, पृ० १

२. द स्टेट इन एन्श्यन्ट इण्डिया—बेनी प्रसाद, पृ० ४९८

३. उद्धृत आस्पेक्ट आफ पोलिटिकल आयिडियाज एण्ड इन्स्टीट्यूशन्स इन एन्श्यन्ट इण्डिया, पृ० २

प्रयास किया।'[1] इसी समय भारतीय अतीत के विषय में अनुसंधान प्रारम्भ हुआ।

१८६४ में पी० एन० सिंह ने एक लेख में स्पष्ट किया कि प्राचीन भारत में शासन के तरीकों के विषय में अज्ञानता के कारण लोगों के भ्रामक विचार है।[2] इसी तथ्य को लेकर ए० सी० दास ने एक लेख में अपने विचार व्यक्त किये, 'अंग्रेजी शासन की अपेक्षा प्राचीन भारत में स्थानीय स्वशासन अच्छा था।'[3]

१९०५ ई० में कौटिल्य के अर्थशास्त्र की खोज के फलस्वरूप एवं १९०९ में साम शास्त्री द्वारा इसे प्रकाशित कराये जाने पर प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों की खोज प्रारम्भ हुई। इसके फलस्वरूप प्राचीन भारतीय राजनीति का वर्णनात्मक और आलोचनात्मक योगदान प्रारम्भ हुआ। इस समय के० पी० जायसवाल के द्वारा प्राचीन भारतीय राजनीति का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य किया गया एवं १९२४ ई० में भारतीय राजनीति के ऊपर 'हिन्दू पालिटी' नामक महत्त्वपूर्ण पुस्तक सामने आई। इस पुस्तक में प्राचीन भारत में प्रजातन्त्रात्मक प्रणाली के प्रचलन एवं उसके महत्त्व पर प्रकाश डाला गया।

सन् १९१६ ई० से १९२५ ई० तक प्राचीन भारतीय राजनीति पर महत्त्वपूर्ण शोध कार्य किये गये। प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचारों पर अनेक लेख एवं पुस्तकें लिखी गईं। सन् १९१६ ई० में पी० एन० बनर्जी की 'पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन एन्श्यन्ट इंडिया' प्रकाशित हुई। इसमें प्राचीन भारतीय शासन व्यवस्था को

---

१. आस्पैक्टस आफ पोलिटिकल आयिडियाज एण्ड इन्स्टीट्यूशन्स इन एन्श्यन्ट इण्डिया, पृ० २-३

२. वही, पृ० ३

३. आस्पैक्टस आफ पालिटिकल आइडियाज एण्ड इन्स्टीटयूशन्स इन एन्श्यन्ट इण्डिया, पृ० ४

संवैधानिक कहा गया। इसी समय के० वी० रंगस्वामी आयन्गर का, 'सम आस्पैक्टस आफ एन्श्यन्ट इण्डियन पालिटी' प्रकाश में आया। सन् १९१८ ई० में आर० सी० मजूमदार ने अपने कार्य 'कारपोरेट लाइफ इन एन्श्यन्ट इण्डिया' में स्पष्ट किया कि प्राचीन भारत में राजनीतिक संस्थायें उन्नत अवस्था में थी। सन् १९२० ई० में एन० एन० ला की' 'इन्टर स्टेट रिलेशन्स इन एन्श्यन्ट इण्डिया' प्रकाश में आई।[1] सन् १९२१ ई० में एन० एन० ला ने अपनी द्वितीय पुस्तक, 'आस्पैक्टस आफ एन्श्यन्ट इण्डियन पालिटी', में प्राचीन हिन्दू राजनीति में धर्म के रूप पर विस्तृत रूप से विचार प्रस्तुत किये। सन् १९२२ ई० में बी० के० सरकार की 'पालिटिकल इन्स्टीटयूशनस एण्ड थ्योरीज आफ दी हिन्दूज' प्रकाशित हुई। प्रस्तुत ग्रन्थ में लेखक ने राजनीति पर धर्म के प्रभाव को बताते हुये स्पष्ट किया कि हिन्दू राज्य 'धर्म' से संचालित थे। सन् १९२३ ई० में यू० एन० घोषल की 'हिस्ट्री आफ हिन्दू पालिटिकल थ्योरीज' प्रकाशित हुई। घोषल ने पाश्चात्य लेखकों के भारतीय राजनीति विषयक भ्रामक विचारों का खण्डन किया।[2]

सन् १९२५ ई० में डी० आर० भण्डारकर ने अपने व्याख्यानों, 'सम आस्पैक्टस आफ एन्श्यण्ट हिन्दू पालिटी' में डनिंग, मैक्समूलर और ब्लूमफील्ड के मतों को उद्धृत करते हुये उनका खण्डन किया। उन्होंने कहा कि डनिंग को पूर्वी देशों के विषय में ज्ञान नहीं। भण्डारकर के यह व्याख्यान सन् १९२९ में पुस्तक के रूप में प्रकाश में आये।[3] तत्पश्चात बी० आर० आर० दीक्षितार ने अपना शोध कार्य 'हिन्दू एडमिनिस्ट्रेटिव इन्स्टीटयूशन्स' १९२७ में पूर्ण किया। उन्होंने स्पष्ट किया कि प्राचीन भारत में राष्ट्रीयता

---

१. प्राचीन भारत में राज्य और न्यायपालिका, पृ० ३३९

२. आस्पैक्टस आफ पालिटिकल आइडियाज एण्ड इन्स्टीटयूशन्स इन एन्श्यन्ट इण्डिया, पृ० ७-८।

३. वही, ८

और देश भक्ति की कमी न थी, दिग्विजय इसके प्रमाण है।[1]

इसी प्रकार से प्राचीन भारत में स्थानीय स्वशासन और अन्तर्राष्ट्रीय नियमों के विषय में भी विद्वानों ने आलोचनात्मक कार्य प्रस्तुत किया। आर० के० मुकर्जी का, 'लोकल गवर्मेन्ट इन एन्श्यन्ट इण्डिया' ग्रामीण और केन्द्रीय शासन से सम्बन्धित राजनीतिक कार्य प्रकाश में आया। इसी प्रकार का पी० एन० बनर्जी का, 'इन्टरनेशनल ला एण्ड कस्टम इन एन्श्यन्ट इण्डिया' कार्य भी प्रकाशित हुआ। उनके मत से प्राचीन भारतीय अन्तर्राष्ट्रीय नियमों के विषय में निश्चित नियमों का ज्ञान रखते थे।[2] सन् १९२५ ई० में एस० बी० विश्वनाथ का 'इन्टरनेशनल ला इन एन्श्यन्ट इण्डिया' इस बात को स्पष्ट करता है कि प्राचीन भारतीय युद्ध के नियमों से अवगत थे।[3] सन् १९२५ ई० और १९३० ई० के मध्य प्राचीन भारतीय राजनीति पर प्रचुर कार्य हुआ। सन् १९२७ ई० में एन० सी० बंद्योपाध्याय की दो पुस्तकें 'डवलप्मेंट आफ हिन्दू पालिटी एण्ड पालिटिकल थ्योरीज' तथा 'कौटिल्य' प्रकाश में आईं। प्रथम पुस्तक में उन्होंने यह स्पष्ट किया कि प्राचीन भारत में अत्याचारी शक्ति को स्थान नहीं था। 'कौटिल्य' पुस्तक में उन्होंने यह उल्लेख किया कि कौटिल्य एक सच्चे राष्ट्रीय राजा की आशा के स्वप्न देखते थे।[4] सन् १८२८ ई० में बेनी प्रसाद की 'स्टेट इन एन्श्यन्ट इण्डिया' तथा 'गवर्नमेन्ट इन एन्श्यन्ट इण्डिया', ये दो पुस्तकें प्रकाश में आईं। सन् १९३१ में एस० के० आयन्गर ने अपनी 'एवोलयूशन आफ हिन्दू एडमिनिस्ट्रेटिव इन्स्टीटयूशन्स इन साउथ इण्डिया में शासन के सिद्धान्तों की विवेचना की। सन्

---

१. वही, पृ० ८-९
२. वही, पृ० ९-१०
३. वही, पृ० १०
४. वही, पृ० १०

१९२९ ई० में एक महत्त्वपूर्ण कार्य 'कन्ट्रीब्यूशन्स टू द हिस्ट्री आफ दि हिन्दू रेवेन्यू सिस्टम' यू० एन० घोषल का प्रकाश में आया इन्होंने प्राचीन काल के कर विषयक सिद्धान्तों के विषय में प्रकाश डाला।[1]

इसी तारतम्य में आगे भी भारतीय राजनीति पर आलोचनात्मक कार्य होता रहा। सन् १९३२ में बी० आर० आर० दीक्षितार का 'मौर्यन पालिटी' प्रकाशित हुआ।[2]

सन् १९३८ ई० में प्राचीन भारतीय राजनीति विषयक एच० एन० सिन्हा का कार्य 'सोवेरन्टी इन एन्श्यन्ट इण्डियन पालिटी' प्रकाश में आया एवं सन् १९४१ ई० में पी० सी० धर्मा का 'रामायण पालिटी' प्रकाशित हुआ।[3] इस प्रकार अब भारतीय राजनीति के एक-एक पक्ष को लेकर कार्य प्रारम्भ हुआ। सन् १९४१ ई० में के० ए० नीलकण्ठ शास्त्री का 'द प्लेस आफ अर्थशास्त्र इन द हिस्ट्री आफ इण्डियन पालिटी' प्रकाशित हुआ। सन् १९४४ ई० में जगदीशलाल शास्त्री का 'पालिटिकल थॉट इन पुराणाज' सन् १९३२ ई० में के० नीलकण्ठ शास्त्री का 'स्टडीज इन चोल हिस्ट्री एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन' तथा 'दि थ्योरी आफ प्री मुस्लिम इण्डियन पालिटी', सन् १९३४ ई० में आर० डी० बनर्जी का 'इन्टर नेशनल ला एण्ड कस्टम इन एन्श्यन्ट इण्डिया', सन् १९३७ में पी० सी० रामस्वामी का 'इण्डियन पालिटिकल थ्योरीज' सन् १९४९ में एस० एस० आलतेकर का 'स्टेट एण्ड गवर्मेन्ट इन एन्श्यन्ट इण्डिया', सन् १९५२ ई० में वी० आर० आर० दीक्षितार का 'द गुप्ता पालिटी,' सन् १९५३ ई० में एम वी० कृष्णा राव का 'स्टडीज इन कौटिल्य', सन् १९५० ई० में एच० सी० चौधरी का'

१. वही, पृ० ११
२. वही, पृ० २४५
३. रामायण कालीन संस्कृति, पृ० ५

पालिटिकल हिस्ट्री आफ एन्श्यन्ट इण्डिया', सन् १९५८ ई० में एच० एल० चटर्जी का' इन्टरनेशनल ला एण्ड इन्टर स्टेट रिलेशन्स इन एन्श्यन्ट इण्डिया', सन् १९५९ ई० में आर० एस० शर्मा का आस्पैक्टस आफ पौलिटिकल आइडियाज एण्ड इन्स्टीटयूशन्स इन एन्श्यन्ट इण्डिया,' सन् १९६३ ई० में भास्कर सालेतोरे का 'एन्श्यन्ट इण्डियन पालिटिकल थाट एण्ड इन्स्टीट्यूशन्स,' सन् १९६५ ई० में बी० बी० मिश्र का 'पालिटी इन अग्निपुराण,' सन् १९६५ ई० में हरिहर नाथ त्रिपाठी का 'प्राचीन भारत में राज्य और न्यायपालिका, सन् १९७१ ई० में डा० रामाश्रय शर्मा का 'ए सोस्यो-पालिटिकल स्टडीज आफ द वाल्मीकि रामायण आदि राजनीति विषयक कार्य प्रकाश में आया। इसी प्रकार से राजनीतिक विषयक कार्य प्रचुर मात्रा में प्रकाशित हो रहा है। राजनीति विषयक इस आलोचनात्मक कार्य के अवलोकन से स्पष्ट हो जाता हैं कि भारतीयों में राजनीतिक विचारों के प्रति जागरूकता प्रारम्भ से ही थी एवं उन्हें राजनीति सम्बन्धी पर्याप्त ज्ञान था।

राजनीति और वाल्मीकि रामायण—

काव्य किसी कथा के माध्यम से समाज से सम्बन्धित विभिन्न तत्त्वों का ज्ञान कराने में समर्थ होता है। वाल्मीकि रामायण में राम कथा के माध्यम से तत्कालीन भारतीय संस्कृति, धर्म, दर्शन, राजनीति आदि के विषय में विस्तार से विचार प्रस्तुत किये गये हैं। यह कृति मुख्य रूप से राजाओं के कार्यकलापों से सम्बन्धित है। राजाओं के कार्यकलापों का आधार राजनीति होती है। अतः प्रस्तुत कृति में राजनीतिक विचारों का विशदतया उल्लेख है। रामायण में राजा, अधिकारीवर्ग, सामन्त, प्रजा और यहां तक कि ऋषि मुनि भी राजनीति के प्रभाव से प्रभावित हैं। सम्पूर्णकृति में यत्र तत्र राजनीतिक विचार बिखरे पड़े हैं। इसमें निम्नलिखित स्थल राजनीति की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं--

(१) राम का भरत के प्रति राजनीतिक उपदेश।[1]

(२) प्रजा का वृत्तान्त जानने में असावधान रहने के कारण सूर्पनखा द्वारा रावण के प्रति उक्ति।[2]

(३) राजनीति के सही रूप को प्रस्तुत करते हुये मारीच का रावण के प्रति कथन।[3]

(४) हनुमान् की रावण के प्रति उक्ति।[4]

(५) विभीषण का रावण के प्रति निवेदन एवं माल्यवान् का रावण से कथन।[5]

(६) कुम्भकरण की रावण से वार्ता।[6]

(७) विभीषण द्वारा प्रहस्त आदि मन्त्रियों को निर्देश।[7]

इन स्थलों के अतिरिक्त उत्तरकाण्ड के भी कुछ स्थल राजनीतिक विचारों को प्रस्तुत करते हैं जो कि राजनीतिक दृष्टि से महत्त्व रखते हैं।

रामायण में राजनीतिक तत्त्वों के विशद विवेचन को दृष्टि में रखते हुए प्रस्तुत शोध कार्य किया गया है।

प्रस्तुत कार्य का आधार ग्रन्थ, 'श्रीमद्वाल्मीकि रामायण' (तीन भागों में प्रकाशित, सम्वत् १९९२), प्रकाशन—स्टीमप्रेस, कल्याण, 'बम्बई' है।

---

१. वा० रा० २-१००
२. वा० रा० ३-३३
३. वा० रा० ३-३७, ३८, ४१
४. वा० रा० ५-५१
५. वा० रा० ६-३५-९, वा० रा० ६-९, १०. आदि
६. वा० रा० ६-१२
७. वा० रा० ६-१४

प्रथम अध्याय

वाल्मीकि और रामायण

आदि कवि महर्षि वाल्मीकि—

स्वार्थ-लिप्सा एवं भोग आदि इच्छाओं के प्रति उदासीनता एवं फल की इच्छा न करते हुए सत्कर्म में प्रवृत्ति मनुष्य की श्रेष्ठता का प्रतीक है। ऐसे व्यक्ति धन के तो अनिच्छुक रहते ही हैं, साथ ही साथ यश की उपेक्षा करते हैं। ऐसे ही महाविभूतियों में महाकवि वाल्मीकि का नाम आता है। महर्षि वाल्मीकि ने राम के समय के भारत का सम्पूर्ण चित्र अपनी कृति में चित्रित किया है। उन्होंने इस विशाल देश के सम्पूर्ण राज्यों के विषय में, उनकी स्थिति के विषय में, उनमें निवास करने वाले प्राणियों के विषय में, विभिन्न जातियों की सभ्यता, संस्कृति, राजनीति आदि के विषय में विवेचन किया, लेकिन अपने विषय में, अपने समय, कुल, व्यक्तित्व आदि के विषय में संकेत भी नहीं दिया। अपनी इस निर्लिप्तता के कारण महर्षि एक महान् आदर्श व्यक्ति तो हैं लेकिन उनके जीवन का विषय हमारे लिए एक विवाद का विषय बना हुआ है।

मेरा विषय रामायण में राजनीतिक तत्त्वों का विवेचन करना है। अतः विषय से सम्बन्धित कृति 'रामायण' के रचयिता महर्षि वाल्मीकि के जीवन और समय के विषय में किञ्चित् विचार प्रस्तुत करना आवश्यक हो गया है। महर्षि वाल्मीकि के समय की संस्कृति, सभ्यता, आर्थिक, धार्मिक एवं सामाजिक स्थिति आदि के परिज्ञान के लिये न तो तत्कालीन शिलालेख या अन्य कोई साहित्यिक सामग्री ही प्राप्त है और न तत्कालीन इतिहास ही प्राप्त है। वाल्मीकि

रामायण ही इसके लिए एक मात्र प्रामाणिक ग्रन्थ है। अस्तु रामायण में निर्दिष्ट सामग्री एवं आलोचकों द्वारा प्रस्तुत प्रमाणों के अनुसार आदि कवि महर्षि वाल्मीकि के समय और जीवन के विषय में विचार प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। वाल्मीकि की कृति रामायण में उनके समय और जीवन के विषय में निम्नलिखित संकेत प्राप्त होते हैं—

(१) बालकाण्ड के प्रथम सर्ग में उल्लेख है कि नारद से मुनि-पुंगव वाल्मीकि ने अपने समय के श्रेष्ठ गुणों से युक्त नर के विषय में प्रश्न किया।[१]

(२) नारद वाल्मीकि से कहते हैं कि राजा राम श्रेष्ठ गुणों से युक्त है[२] एवं इस समय वे राज्यारूढ है।

(३) नारद का कथन है कि राम करोड़ों गायें दान देकर ब्रह्म लोक को जायेंगे।[३]

(४) नारद के देवलोक प्रस्थान कर जाने के पश्चात् वाल्मीकि तमसा नदी के तट पर पहुँचे, जो श्री गङ्गा से थोड़ी दूरी पर थी।[४]

(५) ब्रह्मा की प्रेरणा से वाल्मीकि ने राम के चरित्र की रचना की।[५]

(६) वनवास के समय राम, लक्ष्मण और सीता तीनों वाल्मीकि के आश्रम में गये। वहाँ वाल्मीकि ने उनका स्वागत किया।[६]

---

१. वा० रा० १।१।१, ५
२. वा० रा० १।१।७ आदि
३. गवां कोट्ययुतं दत्त्वा ब्रह्मलोकं गमिष्यति। वा० रा० १।१।९२
४. स मुहूर्तं गते तस्मिन्देवलोकं मुनिस्तदा, जगाम तमसातीरं जाह्नव्यास्त्वविदूरतः। वा० रा० १।२।३
५. वा० रा० १।२।३२, ३३
६. वा० रा० २।५६।१६, १७

(७) रामायण के उत्तर-काण्ड में वाल्मीकि के निवास स्थान का निर्देश है। वे गङ्गा के पार तमसा के तट पर आश्रम में रहते थे।[1]

(८) वाल्मीकि राजा दशरथ के सखा कहे गये हैं।[2]

(६) राम के द्वारा परित्यक्ता सीता वाल्मीकि के आश्रम में छोड़ दी गई।[3]

(१०) शत्रुघ्न ने वाल्मीकि के आश्रम में प्रस्थान किया।[4]

(११) सीता ने अपने पुत्रों को वाल्मीकि के आश्रम में उन्हीं के संरक्षण में जन्म दिया। सीता के पुत्रों, लव और कुश को वाल्मीकि ने राम कथा सिखाई और राम की सभा में राम को सीता के प्रति विश्वास उत्पन्न कराया।[5]

(१२) वाल्मीकि प्राचेतस (वरुण के पुत्र) थे।[6]

(१३) वाल्मीकि भृगवंशीय थे।[7]

इस प्रकार रामायण के बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड और उत्तर-काण्ड में महर्षि वाल्मीकि के जीवन एवं उनके कृतित्व से सम्बन्धित संकेत मिलते हैं।

उपर्युक्त उल्लेखों से स्पष्ट है कि—

(१) वाल्मीकि भृगुवंशीय मुनि थे। वे प्राचेतस अर्थात् वरुण के पुत्र थे।

---

१. वा० रा० ७-४५।१७
२. राज्ञो दशरथस्येष्टाः पितुर्मे मुनिपुंगवः, सखा परमको विप्रो वाल्मीकिस्समहायशाः। वा० रा० ७।६७।१६
३. वा० रा० ७।४७।१४ आदि
४. वा० रा० ७।७१।३
५. वा० रा० ७।६६।१६ आदि
६. वा० रा० ७।६६।१६
७. वा० रा० ७।६४।२६

(२) वाल्मीकि तमसा नदी के किनारे आश्रम में रहते थे।

(३) वे राम के समकालीन थे।

(४) उन्होंने कभी पाप नहीं किया।

रामायण से प्राप्त उपर्युक्त संकेतों से वाल्मीकि के जीवन के विषय में विशेष ज्ञान प्राप्त नहीं होता है। उनके समय के विषय में इतना संकेत अवश्य मिलता है कि वे राम के समकालीन थे। इनके चरित्र के विषय में, 'मनसा, कर्मणा, वाचा भूतपूर्वं न किल्विषम्,'[1] से स्पष्ट हो जाता है कि महर्षि होने के पूर्व के जीवन में भी डाकू या कुकृत्य करने वाले वे नहीं थे, जैसा कि इस विषय में उनसे सम्बन्धित लोक कथायें प्रचलित हैं।

वाल्मीकि के विषय में रामायण में उल्लिखित सामग्री के अतिरिक्त विद्वानों एवं आलोचकों के मतानुसार निम्नलिखित साक्ष्य हैं—

(१) डा० फादर कामल बुल्के के अनुसार वाल्मीकि के विषय में प्रामाणिक वाल्मीकि कृत रामायण में कुछ भी सामग्री नहीं मिलती।[2] वाल्मीकि के विषय में जो डाकू होने की बात प्रचलित है, उसके विषय में डा० बुल्के ने लिखा है कि 'वाल्मीकि के डाकू होने और इसके बाद तपस्वी बनने की जो कथायें आगे चलकर प्रचलित हो गई हैं उनका मूल स्रोत सम्भवतः महाभारत में देखा जा सकता है।[3] डा० फादर बुल्के ने वाल्मीकि के जीवन और समय के विषय में निश्चित मत प्रस्तुत नहीं किया।

(२) अध्यात्म रामायण में वाल्मीकि के डाकूवृत्ति को धारण करने, तत्पश्चात् वैराग्य हो जाने से तपस्वी होने और तप करते हुये वलि वल्मीकि से निकलने के कारण वाल्मीकि के नाम से

---

१. मनसा कर्मणा वाचा भूतपूर्वं न किल्विषम्। वा० रा० ७।९६।२१

२. राम कथा, पृष्ठ ३७

३. राम कथा, पृष्ठ ३८

अभिहित होने का उल्लेख है।[१] परन्तु इससे उनके निश्चित समय का और जीवन के विषय का ज्ञान नहीं होता है।

(३) अध्यात्म रामायण की उपर्युक्त कथा आनन्द रामायण में भी मिलती है।[२] परन्तु इससे भी अभीष्ट की सिद्धि नहीं होती।

(४) कृत्तिकावास कृत रामायण में वाल्मीकि का प्रारम्भिक नाम रत्नाकर बताया गया है। उन्हें च्यवन का पुत्र भी कहा है।[३] वाल्मीकि का यह परिचय भी अपूर्ण है।

(५) डा० नानूराम व्यास ने वाल्मीकि के विषय में रामायण में उल्लिखित संकेतों के आधार पर यह विचार प्रस्तुत किया है कि 'वाल्मीकि के जीवन सम्बन्धी इस सामग्री की प्रामाणिकता संदिग्ध है। स्वयं रामायण में उनके विषय में जो उल्लेख आये हैं वे मौलिक नहीं माने जाते। वाल्मीकि-नारद सम्वाद और क्रौञ्च वध के प्रसंग किसी दूसरे के द्वारा लिखे हुये हैं। चित्रकूट के निकट राम-वाल्मीकि की भेंट का उल्लेख भी रामायण के केवल दाक्षिणात्य पाठ में पाया जाता है। आधुनिक अन्वेषक वाल्मीकि को राम का समकालीन नहीं मानते।[४] डा० व्यास अन्यत्र लिखते हैं कि भले ही वाल्मीकि आधुनिकों की सम्मति में राम के समकालीन न रहे हों, फिर भी अन्य रामायणों की तुलना में वे राम राज्य की परम्पराओं और लोक श्रुतियों के अधिक निकट थे।[५]

डा० व्यास के उपर्युक्त कथन से भी महर्षि वाल्मीकि के निश्चित समय का ज्ञान नहीं होता है। इतना अवश्य स्पष्ट होता

---

१. अध्यात्म रामायण २।६।४२, ८८
२. आनन्द रामायण, राज्यकाण्ड, अध्यांय १४
३. कृत्तिवासीय रामायण, पृष्ठ २
४. रामायण कालीन समाज, पृ० ५, ६
५. रामायण कालीन संस्कृति पृ० २

है कि महर्षि वाल्मीकि यदि राम के समकालीन नहीं थे तो भी वे राम के समय के कुछ ही समय पश्चात् रहे होंगे।

वस्तुत: रामायण से ही वाल्मीकि के विषय में स्पष्ट ज्ञान हो सकता है। भले ही वाल्मीकि के जीवन और समय से सम्बन्धित अंश रामायण में प्रक्षिप्त ही क्यों न हो, वे मूल कृति से बहुत बाद के नहीं हो सकते, अत: वाल्मीकि के विषय में वे ही स्थल अधिक प्रामाणिक हैं।

वाल्मीकिरामायण में वाल्मीकि को राम के समकालीन कहा गया है। राम के समय के विषय में भी विद्वानों के विभिन्न मत हैं। पुराण विशेषज्ञ पार्जिटर के अनुसार राम का समय १६०० वर्ष ईस्वी पूर्व माना गया है।[1] अत: वाल्मीकि का समय राम के समकालीन मानने से या तो १६०० वर्ष ई० पूर्व माना जा सकता है या किञ्चित् बाद का। आज रामायण का जो स्वरूप है उसके अनुसार वाल्मीकि का समय इतने बाद का नहीं हो सकता, क्योंकि रामायण अनेक वर्षों में प्रक्षिप्त अंशों से युक्त होकर यह स्वरूप प्राप्त कर सकी।

अस्तु मूल रामायण और प्रक्षिप्तांशों सहित सम्पूर्ण रामायण के समय के विषय में आगे होने वाली चर्चा से मूल रामायण के रचयिता महर्षि वाल्मीकि के समय का अनुमान किया जा सकता है।

वाल्मीकि का व्यक्तित्व और कृतित्व

वाल्मीकि का व्यक्तित्व—

आदि कवि महर्षि वाल्मीकि के जीवन और समय के विषय में भले ही पूर्ण ज्ञान न हो, उनकी कृति रामायण उनके व्यक्तित्व को स्पष्ट कर देती है। वे श्रेष्ठ ऋषि, आदि कवि, बुद्धिमान् पंडित,

---

१. उद्धृत, रामायण कालीन संस्कृति, पृ० २

लोक कल्याण के इच्छुक, तपस्वी, नीतिज्ञ, दयालु, कर्तव्यनिष्ठ, धर्मज्ञ, आर्य संस्कृति के रक्षक एवं आदर्श राज्य की स्थापना के लिये प्रेरणा के श्रोत के रूप में अपनी कृति के माध्यम से हमारे समक्ष आते हैं। महर्षि वाल्मीकि के व्यक्तित्व के विषय में कुछ साहित्यकारों एवं आलोचकों के मत निम्नाङ्कित है—

महाकवि कालिदास ने "कृतवाग्द्वारे वंशेऽस्मिन्-पूर्वसूरिभिः"[१] लिखकर वाल्मीकि को वाणी का द्वार खोलने वालों में अग्रगण्य अर्थात् आदि कवि एवं कवियों के मार्ग-दर्शक के रूप में माना है।

प्रसिद्ध काव्य शास्त्री आनन्दवर्धनाचार्य ने महर्षि वाल्मीकि को शोक एवं श्लोक का समीकरण करने वाला श्रेष्ठ समालोचक माना है।[२]

वाचस्पति गेरोला ने वाल्मीकि के विषय में लिखा है कि 'वे आदि कवि, महाकवि, धर्माचार्य और सामाजिक जीवन की बारीकियों के ज्ञाता सभी कुछ एक साथ थे वे गम्भीर आलोचक भी थे।[३]

डा० नानूराम व्यास ने लिखा है कि 'वाल्मीकि ऋषि समाज के अग्रगण्य तपस्वी, साधक, वेद वेदांगों के परिनिष्ठित विद्वान्, रस सिद्ध कवीश्वर, तत्कालीन भारत के मानचित्र के सम्यक् ज्ञाता, सामाजिक प्रथाओं एवं मर्यादाओं के संस्थापक और व्याख्याकार सत्य और न्याय के समर्थक, धर्म के स्तम्भ एवं लोकानुरञ्जन के प्रबल हिमायती थे।'[४]

अस्तु भारतीय संस्कृति एवं धर्म के रक्षक के रूप में अपनी कृति के माध्यम से महर्षि वाल्मीकि आज भी प्रभावशाली एवं आकर्षक व्यक्तित्व की प्रतिमा बन कर हमारे समक्ष उपस्थित है।

---

१. रघुवंशमहाकाव्यम, प्रथम सर्ग, श्लोक ४
२. ध्वन्यालोक १।१८
३. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० २०२
४. रामायण कालीन समाज, पृ० ६

वाल्मीकि का कृतित्व—

वाल्मीकि ने एक ही कृति रामायण की रचना की है। रामायण में उल्लेख हैं कि वाल्मीकि ने रामायण काव्य रचने का संकल्प किया।[1]

रामायण में सात खण्ड हैं। वे इस प्रकार है—बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, युद्ध-काण्ड, एवं उत्तरकाण्ड। इस कृति में २४००० श्लोक, ५०० सर्ग[2] एवं १०० उपाख्यान है।[3]

रामायण का नामकरण —

रामायण पद रामस्य अयनम् से निर्मित है। रामायण का अर्थ राम का मार्ग या राम के जीवन मार्ग को प्रकाशित करने वाला काव्य रामायण है।

रामायण का विषय –

रामायण में राम के चरित्र का आधिकारिक कथा के रूप में वर्णन है। वाल्मीकि ने इस चरित्र का वर्णन-ब्रह्मा की प्रेरणा से किया है।[4] ब्रह्मा के निर्देशानुसार महर्षि वाल्मीकि ने राजसिंहासन पर आसीन राम का सम्पूर्ण चरित्र विचित्र पदों से युवत काव्य में वर्णन किया।[5] महर्षि ने स्वयं लिखा है कि उन महात्मा इक्ष्वाकु वंश वाले

---

१. कृत्स्नं रामायणं काव्यमीदृशैः करवाण्यहम्। वा० रा० १।२।४१

२. चतुर्विंशत्सहस्त्राणि श्लोकानामुक्तवानृषिः, तथा सर्गशतान्पंच षट् काण्डानि तथोत्तरम्। वा० रा० १।४।२

३. सन्निबद्धं हि श्लोकानां चतुर्विंशत्सहस्रकम्, उपाख्यानशतं चैव भार्गवेण तपस्विना। वा० रा० ७।९४।२६

४. रामस्यचरितं कृत्स्नं कुरु त्वमृषिसत्तम। वा० रा० १।२।३१
एवं व्रतं कथय धीरस्य यथाते नारदाच्छ्रुतम्। वा० रा० १।२।३२
एवं कुरु रामकथां पुण्यां श्लोकबद्धां मनोरमाम्। वा० रा० १।२।३५

५. प्राप्तराजस्य रामस्य वाल्मीकिभगवानृषिः, चकार चरितं कृत्स्नं विचित्रपदमात्मवान्। वा० रा० १।४।१
एव रघुवंशस्य चरितं चकार भगवानृषि। वा० रा० १।३।९

राजाओं के वंश में यह महा कथा उत्पन्न हुई है जो रामायण के नाम से जगत् में प्रसिद्ध है।[१] इस प्रकार इक्ष्वाकुवंशीय राम की कथा का वर्णन ही कवि का वर्ण्य विषय रहा है। इस प्रधान कथा से सम्बन्धित वानरों आदि की कथा को कवि ने प्रासङ्गिक कथा के रूप में अपनी कृति में वर्णन किया है।

'रामायण' आदि काव्य—

काव्य साहित्य का उत्तम अंग हैं। काव्य से मनुष्य को जैसा अलौकिक आनन्द प्राप्त होता है वैसा और किसी प्रकार के साहित्य से नहीं। आचार्य विश्वनाथ ने 'वाक्यं रसात्मकं काव्यं' से स्पष्ट किया है कि रसात्मक वाक्य ही काव्य है। इस दृष्टि से जब रामायण पर दृष्टिपात किया जाता है, तब हम पाते हैं कि रामायण रसाप्लावित रचना है, अतः काव्य है। रामायण में इस कृति को स्वयं ही काव्य की संज्ञा दी गई है।[२]

रामायण संस्कृत भाषा के काव्यों में सबसे प्रथम रचना मानी जाती है अतः यह आदि काव्य भी है। वाल्मीकि रामायण में भी इस काव्य को आदि काव्य कहा गया है।[३] निषाद द्वारा क्रौञ्च पक्षी का वध किये जाने पर महर्षि के मुख से जो नूतन छन्दमयी वाणी निःसृत हुई, वह श्लोक या काव्य कहा गया है।[४] उक्त वाणी को काव्य या श्लोक का रूप देने का, एवं पादबद्ध और लययुक्त समअक्षरमयी कहने का तात्पर्य भी यही है कि इस प्रकार की छन्दबद्ध रचना इससे पूर्व कभी नहीं हुई।

---

१. इक्ष्वाकूणामिदं तेषां राज्ञां वंशे महात्मनाम्, महदुत्पन्नमाख्यानं रामायणमिति श्रुतम। वा० रा० १।५।३

२. न ते वागनृता काव्ये काचिदत्र भविष्यति। वा० रा० १।२।३५
एवं काव्यं रामायणं कृत्स्नं सीतायाश्चरितं महत् १।४।७
एवं वा० रा० १।२।४१

३. आदिकाव्यमिदं त्वार्षपरा वाल्मीकिना कृतम्।
वा० रा० ६।१३१।१०३

४. शोकार्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोकोभवतु नान्यथा। वा० रा० १।२।१८

वाल्मीकि रामायण के प्रत्येक सर्ग के अन्त में 'इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि काव्ये' ये शब्द रहते हैं।

रामायण आदि काव्य है इसकी पुष्टि वाल्मीकि के बाद के कवियों ने भी की है। महाकवि कालिदास (ई० पू० प्रथम शताब्दी) ने रामायण को 'पहली कविता' के रूप में स्वीकार किया है।[1] करूण रस के कवि भवभूति (६वीं शताब्दी) ने रामायण को आदि काव्य स्वीकार करते हुये 'मा निषाद प्रतिष्ठां' पद को लक्ष्य करके 'उत्तर रामचरित' में लिखा है कि वेद से अन्यत्र भी छन्द का नया आविर्भाव हो गया।[2] भवभूति ने वाल्मीकि को आदि कवि की संज्ञा दी है।[3] आनन्दवर्धन (६वीं शताब्दी) ने अपनी कृति में वाल्मीकि को आदि कवि कहा है।[4]

रामचरित मानस की वृहत्टीका 'मानस पीयूष' में महर्षि की रचना रामायण और उनके विषय में उल्लेख है कि, 'यद्यपि लोक और वेदों में इनके पहले छन्दोबद्ध वाणी का प्रचार पाया जाता है तथापि मनुष्यों के द्वारा काव्य और इतिहास की जैसी रचना होती है वैसी इनके पूर्व न थी। इस प्रकार की रचना इन्हीं से (वाल्मीकि से) प्रारम्भ हुई। इससे इनको आदि कवि कहा गया है।[5]

सभी आलोचकों ने भी वाल्मीकि को आदि कवि और उनकी कृति रामायण को आदि काव्य माना है। डा० रामस्वामी इस विषय में लिखते है कि वाल्मीकि निःसंदेह आदि कवि हैं, वे प्राचीन-

---

१. स्वकृतिं गापयामास कविप्रथमपद्धतिम्। रघुवंश महाकाव्यं १५।३३

२. आम्नायादन्यत्र नूतनश्छन्दसामवतारः। उत्तररामचरितम्, द्वितीय अंक, पृ० ६०

३. आद्यः कविरसि। उत्तररामचरितम्, द्वितीय अंक, पृ० ६१

४. ध्वन्यालोक, उद्योत १ एवं, काव्यस्यात्मा स एवार्थः तथा चादिकवेः पुरा। ध्वन्यालोक, १।१८.

५. मानसपीयूष (बालकाण्ड) खण्ड १ पृ० ३।३

तम एवं श्रेष्ठतम कवि है ।[1] अनेन प्रकारेण सर्वसम्मति से वाल्मीकि आदि कवि और उनकी कृति रामायण आदि काव्य के रूप में प्रतिष्ठित है ।

रामायण महाकाव्य है—

रामायण आदि काव्य के साथ-साथ महाकाव्य के लक्षणों से भी उपेत है । दण्डी के काव्यादर्श के अनुसार महाकाव्य का कथानक ऐतिहासिक हो, उसका नायक धीरोदात्त प्रकृति का हो, जिसका लक्ष्य चर्तुवर्गफल की प्राप्ति हो । महाकाव्य अलङ्कृत, भावों एवं रसों से युक्त, दीर्घ, सर्ग बद्ध एवं पञ्च सन्धियों से युक्त हो । उसमें मङ्गलाचरण एवं आशीर्वादात्मक वाक्य हो ।[2] महाकाव्य के उपर्युक्त लक्षणों के अनुसार रामायण में महाकाव्य के सभी प्रमुख लक्षण विद्यमान है । जंसा कि डा० नानूराम व्यास ने लिखा है कि 'रामायण में महाकाव्य के सभी प्रमुख लक्षण, विषय की उदात्तता, घटनाओं का वंचित्र्यपूर्ण विन्यास तथा भाषा का सौष्ठव पाये जाते हैं ।[3] अतः रामायण महाकाव्य की कोटि में आता है ।

रामायण के संस्करण—

रामायण के विभिन्न पाठ प्रचलित हैं इसका कारण यह है कि प्रारम्भ में रामायण मौखिक रूप में प्रचलित था और बहुत काल के बाद भिन्न-भिन्न परम्पराओं के आधार पर स्थाई लिखित रूप धारण कर सका । फिर भी कथानक के दृष्टिकोण से विभिन्न पाठों की तुलना करने पर सिद्ध होता है कि कथावस्तु में जो अन्तर पाये जाते हैं वे गौण है ।[4] रामायण के विभिन्न पाठ निम्नाङ्कित है—

---

१. स्टडीज इन रामायण, पृ० १८८
२. काव्यादर्श १।१४।१९
३. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा, पृ० १४
४. रामकथा, पृ० ३१

(१) देवनागरी संस्करण—निर्णय सागर प्रैस बम्बई से प्रकाशित। उत्तर भारत में इसी संस्करण का विशेष प्रचलन है।

(२) बंगाल संस्करण—यह कलकत्ता से प्रकाशित है। इस संस्करण का प्रकाशन डा० गौरशियो ने अनेक उपयोगी टिप्पणियों के साथ किया है। यह सन् १८८४ ई० से १८८७ ई० तक प्रकाशित हुआ।

(३) काश्मीर या पश्चिमोत्तरीय संस्करण—यह दयानन्द महाविद्यालय लाहौर के अनुसन्धान कार्यालय से सन् १९१३ ई० में प्रकाशित हुआ।[1]

(४) दाक्षिणात्य दक्षिण भारत के संस्करण—यह मध्व विलास बुक डिपो, कुम्भ कोणम से प्रकाशित है। यह सन् १९२९, ३० ई० में प्रकाशित हुआ।

रामायण का रचनाकाल—

रामायण के रचना काल के विषय में विद्वानों एवं आलोचकों का एक मत नहीं है। स्वयं वाल्मीकि के अनुसार इस कृति का रचना काल राम का राज्य काल है। बालकाण्ड के आरम्भ में वाल्मीकि मुनि ने नारद से प्रश्न किया कि इस समय संसार में गुणवान् व्यक्ति कौन है।[2] नारद ने तत्कालीन श्रेष्ठ पुरुष राम का उल्लेख किया एवं वाल्मीकि ने राम को विषय बनाकर रामायण की रचना की।[3] राम आयोध्या के राजसिंहासन पर आसीन हो चुके थे तभी वाल्मीकि ने रामायण काव्य की रचना की।[4] राम के वर्णन के लिये नारद ने वर्तमान क्रियाओं का प्रयोग भी किया है।[5]

---

१. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्यबलदेव उपाध्याय, पृ० ६४
२. वा० रा० १।१।२
३. वा० रा० १।२।४२, ४३
४. प्राप्तराजस्य रामस्य वाल्मीकिर्भगवानृषिः, चकार चरितं कृत्स्नं विचित्रपदमात्मवान्। वा० रा० १।४।१
५. वा० रा० १।१।८, ९।१० आदि

राम दान आदि देकर वैकुण्ठ को जावेंगे, इस प्रकार की भविष्यत् काल की क्रियाओं के प्रयोग से प्रतीत होता है कि रामराज्य के समाप्त होने से पहले रामायण की रचना हुई।

अयोध्याकाण्ड एवं उत्तरकाण्ड में उल्लिखित प्रमाणों से भी सिद्ध होता है कि वाल्मीकि राम के समकालीन थे तथा उन्होंने राम के राज्य काल में ही रामायण की रचना की। उदाहरणार्थ लवकुश ने यह काव्य राम के अश्वमेघ समारोह के अवसर पर सभा में बैठ कर गाया।[1] वाल्मीकि स्वयं सीता के सतीत्व की साक्षी देने के लिये राम की सभा में उपस्थित हुये एवं सीता को दोष रहिता सिद्ध करने के लिये शपथ की।

उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर यदि वाल्मीकि रामायण की रचना राम के समकालीन मानी जावे, तो राम के समय का भी निर्धारण करना होगा।

परम्परानुसार राम का समय त्रेतायुग माना जाता है। रामस्वामी शास्त्री ने लिखा है कि 'परम्परानुसार रामायण त्रेतायुग में, आज से लगभग ९ लाख वर्ष ई० पूर्व (८६७१०२ वर्ष ई० पूर्व) लिखी गई।[2]

राम का समय पार्जिटर के अनुसार, जैसा कि पूर्व निर्दिष्ट है, १६०० वर्ष पूर्व है। राम के समकालीन होने से वाल्मीकि रामायण का भी यही रचना काल रहा होगा।

वस्तुतः रामायण में उल्लिखित राम एवं वाल्मीकि से सम्बन्धित प्रसंग प्रक्षिप्त माने जाते हैं ऐसा प्रतीत होता है कि वाल्मीकि को महत्त्व देने के लिये उनका सम्बन्ध राम से जोड़ दिया गया है। जैसा कि तुलसीदास का सम्बन्ध राम से जोड़ने का प्रयास किया गया है—

---

१. वा० रा० ७।९४।१६
२. स्टडीज इन रामायण, पृ० २३

चित्रकूट के घाट पर, भई सन्तन की भीड़ ।
तुलसीदास चन्दन घिसें, तिलक करै रघुवीर ।

इसी प्रकार वाल्मीकि और राम से सम्बन्धित प्रसंग भी बाद में जोड़ दिये गये । वस्तुतः वाल्मीकि तो राम से बहुत समय बाद हुये होंगे ।

रामायण की रचना ऋग्वेद कालीन मानने का भी सन्देह हो सकता है, क्योंकि ऋग्वेद के सूक्तों के रचयिता हृत्समद, विश्वामित्र, वामदेव, अत्रि, भारद्वाज और वसिष्ठ रामायण में पात्र के रूप में उल्लिखित है। यह ऋषि रामायण के अनुसार राम से भी सम्बन्धित है। अतः राम का काल ऋग्वेद का काल माना जा सकता है एव अनुमान किया जा सकता है कि वाल्मीकि ने ऋग्वेद के रचना काल[1] में रामायण की रचना की होगी ।

लेकिन ऋग्वैदिक काल में वाल्मीकि का होना या रामायण की रचना की जाना सम्भव नहीं हो सकता, क्योंकि यदि रामायण ऋग्वैदिक काल में रची जाती, तो उसकी भाषा भी वैदिक भाषा होती या उसकी भाषा का वैदिक भाषा से बहुत कुछ साम्य होता ।

रामायण के अनेक स्थलों के आधार पर रामायण का समय वैदिक काल के बाद का ही प्रतीत होता है। रामायण में वेदोपबृंहण[2] शब्द का प्रयोग है। इसके अतिरिक्त तीनों वेदों ऋक्, यजु और साम का भी उल्लेख है।[3] वेदों के अतिरिक्त वेदाङ्ग शब्द का भी उल्लेख रामायण में किया गया है।[4] राम और हनुमान् के प्रथम वार्तालाप के समय हनुमान् की संस्कारयुक्त वाणी को सुनकर राम ने कहा कि इन्होंने सम्पूर्ण व्याकरण बहुधा सुना है

---

१. तिलक के अनुसार ऋग्वेद का रचना काल ४००० से २५०० वर्ष वि० पूर्व है। उद्धृत वैदिक साहित्य और संस्कृति, पृ० १४०

२. वा० रा० १।४।६

३. नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः, नासामवेदविदुषः शक्यमेवं प्रभाषितुम् । वा० रा० ४।३।२८

४. वेदवेदाङ्गतत्वज्ञो, वा० रा० १।१।१४

क्योंकि इन्होंने दीर्घ समय तक वार्तालाप करने पर भी अशुद्ध शब्द का प्रयोग नहीं किया।[1] इसी प्रकार सीता ने भी हनुमान् की वाणी को संस्कार युक्त और क्रम सम्पन्न कहा।[2]

वाल्मीकि रामायण में व्याकरण शब्द का प्रयोग एवं वाणी के लिये संस्कार शब्द का प्रयोग यह सिद्ध करता है कि पाणिनि की व्याकरण के पश्चात् रामायण की रचना हुई होगी। क्योंकि वाणी का संस्कार या भाषा का संस्कार सर्व प्रथम पाणिनि ने ही अपनी अष्टाध्यायी की रचना करके किया। व्याकरण शब्द का प्रयोग पाणिनि की अष्टाध्यायी की ओर ही संकेत करता है। अत: रामायण का रचना काल पाणिनि के समय के बाद का होगा। पाणिनि ने कौसल्या और कैकई का नाम अपने सूत्रों में उद्धृत किया है।[3] पाणिनि का समय गोल्डस्टकर ने ९ या १०वीं शताब्दी ईस्वी पूर्व बताया है।[4] पाणिनि का अन्तिम समय निर्धारण चौथी शताब्दी ई० पूर्व माना गया है।[5] अत: वाल्मीकि का समय भी चौथी शताब्दी ई० निर्धारित किया जा सकता है।

रामायण का उत्तरकाण्ड निश्चिय ही पाणिनि की अष्टाध्यायी के पश्चात् लिखा गया होगा। क्योंकि इसमें सूत्र, वृत्ति, अर्थपद, महार्थ आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है।[6] यहाँ सूत्र, वृत्ति,

---

१. नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतं, बहु व्याहरतानेन न किञ्चिद-पशब्दितम्। वा० रा० ४।३।२९

२. संस्कारक्रमसम्पन्नामद्रुताविलम्बिताम्, उच्चारयति कल्याणि वाचम् हृदयहारिणां। वा० रा०

३. उद्धृत, स्टडीज इन रामायण, पृ० ३८

४. उद्धृत, स्टडीज इन रामायण, पृ० ३८

५. उद्धृत, स्टडीज इन रामायण, पृ० ३८

६. ससूत्र-वृत्यर्थपदं महार्थं ससंग्रहं सिद्धयति वै कपीन्द्रः। न ह्यस्य कश्चित्सदृशोऽस्ति शास्त्रे वैशारदे छन्दगतो तथैव। वा० रा० ७।३६।४७

अर्थपद, महार्थ आदि का प्रयोग रामायण की रचना को पाणिनि के बाद का सिद्ध करता है।

रामायण में 'पौराणिक'[१] (पुराण विधा का जानकार) शब्द का प्रयोग हुआ है। इससे प्रतीत होता है कि रामायण का समय पुराणकाल या इसके बाद का (लगभग ६०० ई० पूर्व से ४०० ई० पूर्व तक के बीच का) रहा होगा।

रामायण में श्रमण[२] शब्द का प्रयोग है श्रमण शब्द का अर्थ टीकाकारों ने क्षपणक (बौद्धभिक्षु) किया है। इससे भी स्पष्ट होता है कि रामायण की रचना बौद्धधर्म के प्रादुर्भाव के पश्चात् अर्थात् पाँचवी शताब्दी ई० पूर्व के बाद हुई होगी; लेकिन मूल रामायण का रचना काल ५०० वर्ष ई० पूर्व के पश्चात का नहीं हो सकता, क्योंकि यदि मूल रामायण की रचना बौद्ध धर्म के पश्चात् हुई होती, तो बौद्ध धर्म के मुख्य तत्त्व अहिंसा का प्रभाव अवश्य ही रामायण पर पड़ता, लेकिन ऐसा नहीं है। इसके अतिरिक्त यह भी बात है कि श्रमण शब्द का प्रयोग शवरी के प्रसङ्ग में प्रयुक्त हुआ है।[3] लेकिन शवरी बौद्ध भिक्षुणी के रूप में हमारे समक्ष नहीं आती।

डा० नानूराम व्यास ने श्रमण शब्द का अर्थ बौद्ध भिक्षु या क्षपणक न बताते हुए लिखा है कि 'ब्राह्मण ग्रन्थों में श्रमण शब्द जिस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है उससे बौद्ध भिक्षु का संकेत नहीं मिलता। ....रामायण में उल्लिखित श्रमणों को वैदिक तपस्वियों की श्रेणी में गिना जा सकता है। ब्राह्मण, गृहस्थ और वनवासी तापसों से पार्थक्य स्थापित करने के लिये वे अपने को श्रमण कहते थे।[४]

१. वा० रा० ७।६४।५

२. आर्येण मम मान्धात्रा व्यसनं घोरमीप्सितम्।
श्रमणेन कृते पापे यथा पापं कृतं त्वया। वा० रा० ४।१८।३५

३. वा० रा० ३।७३।२५

४. रामायण कालीन संस्कृति, पृ० २३४-२३५

अस्तु, रामायण के सभी साक्ष्यों के आधार पर रामायण का रचना काल चौथी शताब्दी ई० पूर्व के लगभग माना जा सकता है।

रामायण के समय के निर्धारण के विषय में विभिन्न विद्वानों ने भी अपने मत प्रस्तुत किये हैं। कुछ विद्वानों के मत निम्नाङ्कित हैं—

जर्मन विद्वान् याकोवी के अनुसार वाल्मीकि ने अपनी मूल रामायण की रचना ८००-६०० वर्ष ई० पूर्व में की। प्रक्षेप आदि से उसके कलेवर की वृद्धि होती रही और वर्तमान रूप ईसा के प्रादुर्भाव के आस पास हुआ।[१] वेवर के अनुसार रामायण का समय तीसरी या चौथी शताब्दी ई० पूर्व है।[२] मोनियर विलियम ने इसका रचना काल तीसरी शताब्दी ई० पूर्व माना है।[३] विन्टरनित्स का भी यही मत है।[४] मैकडोनल का कथन है कि मूल काव्य पाचवीं शताब्दी ई० पू० के पहले का होना चाहिये।[५] कीथ ने इसका काल ६वीं शताब्दी ई० पूर्व माना है।[६] काउन्ट विजारन्स्टजेरन इसका समय २००० वर्ष ई० पूर्व निश्चित करते हैं।[७] ए० श्लेगल के अनुसार रामायण का समय ग्यारहवी शताब्दी ई० पूर्व तथा जी० गोरेसियो के अनुसार इसका समय लगभग १२वीं शताब्दी ई० पू० माना गया है।[८]

पाटिलिपुत्र (पटना) नगर ४०० वर्ष ई० पूर्व में निर्मित हुआ

१. रामायण कालीन संस्कृति, पृ० २
२. स्टडीज इन रामायण, पृ० २३
३. स्टडीज इन रामायण पृ० २३
४. हिस्ट्री ग्राफ संस्कृत लिटरेचर, पृ० ५१७
५. ए हिस्ट्री ग्राफ संस्कृत लिटरेचर, पृ० ३०९
६. उद्धृत, स्टडीज इन रामायण, पृ० २४
७. वही पृ० २४
८. उद्धृत राम कथा, पृ० ३५

था। वाल्मीकि ने रामायण में उसका उल्लेख नहीं किया। जब कि उन्होंने अन्य पूर्वी भारत के नगरों का उल्लेख किया है। इससे स्पष्ट है कि रामायण का काल चौथी शताब्दी ई० पूर्व के पश्चात् का नहीं।[1]

रामस्वामी शास्त्री ने रामायण का समय ५०००-६००० वर्ष ई० पूर्व माना है।[2]

सी० बी० वैद्य रामायण का रचना काल दूसरी शताब्दी ई० पूर्व तथा दूसरी शताब्दी ई० के बीच मानते हैं। यद्यपि वह पहली शताब्दी पूर्व अधिक सम्भव समझते हैं।[3]

डा० बुल्के ने रामायण के समय के सम्बन्ध में अपना मत देते देते हुए लिखा है कि 'अधिक सम्भव प्रतीत होता है कि वाल्मीकि ने लगभग तीसरी शताब्दी ई० पूर्व अपनी अमर रचना की सृष्टि की है।[4]

आचार्य बलदेव उपाध्याय ने अनेक प्रमाणों के आधार पर रामायण का समय निर्धारित करते हुये लिखा है कि 'रामायण की रचना बुद्ध के पहले हो गई। अर्थात् रामायण को पाँचवी शताब्दी ई० पूर्व से पहले की रचना मानना न्याय संगत है।[5]

डा० नानूराम व्यास ने रामायण के समय पर विचार करते हुये लिखा है कि, 'मूल रामायण की रचना निश्चय ही पाणिनि (५०० वर्ष ई० पूर्व) से पहले की जान पड़ती है, क्योंकि रामायण की भाषा में ऐसे अनेक आर्ष प्रयोग पाये जाते हैं जो पाणिनीय व्याकरण से मेल नहीं खाते। यदि वाल्मीकि पाणिनि के बाद हुये होते, तो ऐसा न होता। पाणिनि ने कौसल, कौसल्या, कैकेयी, केकय,

---

१. स्टडीज इन रामायण, पृ० ३८
२. स्टडीज इन रामायण, पृ० ३९
३. उद्धृत, दि रिडिल ग्राफ दी रामायण, पृ० २०
४. रामकथा पृ० ३७
५. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ६७

भरत, वैश्रवण, विभीषण, रावण और वाल्मीकि जैसे नामों की व्युत्पत्ति भी समझाई है। किन्तु रामायण के प्रधान पात्र राम, सीता और दशरथ पाणिनि में नहीं मिलते।[1]

रामायण के प्रक्षिप्तांशों में उत्तरकाण्ड सबसे बाद का प्रतीत होता है। लेकिन यह भी तृतीय शताब्दी ई० पूर्व से बाद का नहीं। इस सन्दर्भ में आचार्य बलदेव उपाध्याय का मत उल्लेखनीय है—बौद्धों में एक प्रसिद्ध जातक है 'दशरथजातक' जिसमें रामायण का वर्णन संक्षेप रूप में उपलब्ध होता है। इसमें पालिभाषा में रूपान्तरित उत्तरकाण्ड का एक श्लोक हू-बहू मिलता है इस जातक का समय विक्रम पूर्व तृतीय शताब्दी माना जाता है। अतः मानना पड़ेगा कि उत्तरकाण्ड की रचना उक्त शताब्दी के पहले की है।[2] अतः सम्पूर्ण रामायण की रचना का समय तृतीय शताब्दी के पश्चात् का नहीं है।

कालिदास ने वाल्मीकि को आदि कवि कहा है।[3] इससे यह स्पष्ट है कि वाल्मीकि की प्रसिद्धि रामायण के रचनाकार के रूप में कालिदास के समय (प्रथम शताब्दी ई० पूर्व) तक हो चुकी थी।

रामायण के रचना काल से सम्बन्धित उपर्युक्त प्रमाणों एवं आलोचनात्मक विवरण से रामायण का रचना काल पूर्णतः निश्चित नहीं होता। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि रामायण के साक्ष्य के आधार पर मूल रामायण का समय बौद्ध धर्म के प्रादुर्भाव के पूर्व (५०० वर्ष ईसा पूर्व) रहा होगा, एवं प्रक्षेपांशों सहित समग्र रामायण का रचना काल, वेदांग, पुराण, श्रमण, व्याकरण तथा सूत्र, वृत्ति, अर्थपद, महार्थ आदि पदों के प्रयोगों के कारण चतुर्थ शताब्दी ईसा पूर्व एवं तृतीय शताब्दी ईसा पूर्व के मध्य का माना जा सकता है, इसके पश्चात् का नहीं।

---

१. रामायण कालीन समाज, पृ० ६
२. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ६३-६४
३. रघुवंश महाकाव्यं, सर्ग १५ श्लोक ४१

रामायण की कथा का स्रोत

रामायण की कथा के स्रोत के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के विभिन्न दृष्टिकोण हैं। कोई-कोई आलोचक रामायण की कथा का स्रोत विदेशी तत्त्वों को मानते हैं, कोई इसका स्रोत जातक कथाओं में वर्णित राम कथा का बृहत् रूप मानते है। कुछ विद्वान् रामायण की कथा को काल्पनिक मानते हैं, बहुत से विद्वान् इसका स्रोत ऐतिहासिक मानते हैं। उपर्युक्त सभी दृष्टियों को ध्यान में रखकर रामायण के स्रोत पर विचार किया जाता है :—

रामायण की कथा का स्रोत विदेशी तत्त्वों को मानने वाले विद्वानों में बेवर और एम० वेंकट रत्नम प्रमुख है। डा० बेवर का मत है कि बौद्ध ग्रन्थ 'दशरथ जातक' में वर्णित रामकथा की प्रेरणा को ग्रहण करके आदि कवि ने अपने ढंग से उसको रामायण में विस्तार से लिख दिया है। बेवर का इस सम्बन्ध में कथन है कि उक्त बौद्ध ग्रन्थ में अनुपलब्ध सीता हरण की कथा को वाल्मीकि ने सम्भवतः होमर काव्य के 'पैरिस द्वारा हेलेन का अपहरण' प्रसंग से और लंका युद्ध को सम्भवतः यूनानी सेना द्वारा 'त्राय' का अवरोध, प्रसंग से उद्धृत किया है।[1] डा० बुल्के ने बेवर के मत के विषय में टिप्पणी की है कि होमर के काव्य को रामायण अथवा राम कथा का आधार मानने के लिए बेवर को छोड़ कर कोई भी तैयार नहीं है।[2] डा० बुल्के ने दशरथ जातक की रामकथा को वाल्मीकीय रामकथा का विकृत रूप कहा है।[3]

वस्तुतः रामायण की कथा जातक कथाओं या दशरथ जातक की कथा का विस्तार नहीं कही जा सकती, क्योंकि स्वयं वाल्मीकि

---

१. उद्धृत, संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाचस्पति गैरोला पृ० २०३-२०४

२. रामकथा पृ० १०२

३. वही

ने रामायण को वेदों का विस्तार कहा है।[१] राम सम्बन्धी चरित्र की गाथायें वैदिक काल में प्रचलित रही होंगी और वाल्मीकि ने उन्हें एक बृहत् काल का रूप दे दिया। डा० बुल्के ने लिखा है कि 'प्रारम्भ से ही दानस्तुति स्वरूप 'नाराशंसी' गाथाओं' का उल्लेख मिलता है (ऋग्वेद १०, ८५, ६) वाल्मीकि के पूर्व रामकथा सम्बन्धी गाथायें प्रचलित हो चुकी थीं। इसके प्रमाण हमें बौद्ध त्रिपिटक में मिलते हैं।[२] वाल्मीकि ने उस स्फुट आख्यान काव्य को एक ही प्रबन्ध काव्य में संकलित करके लगभग ३०० ई० पूर्व आदि रामायण की रचना की है।[3]

रामायण के स्रोत के विषय में वेंकट रत्नम के मत को उद्धृत करते हुए डा० बुल्के ने लिखा है कि 'एम० वेंकट रत्नम का विश्वास है कि यह वास्तव में मिश्र देश के रमसेस नामक राजा का इतिहास है।[४] इस मत का निराकरण करते हुए डा० बुल्के ने लिखा है कि 'रमसेस के विषय में आधुनिक खोज के आधार पर जो कुछ ज्ञात हुआ है उससे स्पष्ट है कि वाल्मीकि रामायण से उस राजा का कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता।[५]

रामायण की कथा के स्रोत सम्बन्धी जे० टी० व्हीलर के मत को उद्धृत करते हुए डा० बुल्के ने लिखा है कि व्हीलर के अनुसार रामायण काव्य ब्राह्मण और बौद्ध दोनों धर्मों के संघर्ष का प्रतीक है। राक्षसों से बौद्धों का अभिप्राय है।[६] व्हीलर के मत से सहमत न होते हुए डा० बुल्के ने लिखा है कि 'रामायण में जो राक्षसों का चित्रण मिलता है उसमें उनके बौद्ध होने का कोई भी निर्देश नहीं मिलता। 'राक्षस' ब्राह्मणों के विरोधी अवश्य हैं लेकिन

---

१. वेदोपबृंहणं वा० रा० १।४।६
२. रामकथा पृ० १३४
३. वही पृ० १३६
४. रामकथा पृ० ११६
५. वही
६. वही० पृ० ६६, १००

वे स्वयं भी यज्ञ करते हैं और नर भक्षी भी कहे जा सकते हैं'।[१] इस प्रकार व्हीलर का मत भी कपोल कल्पित है।

रामायण की कथा को काल्पनिक मानने वालों में रमेश चन्द्र दत्त है। रमेश चन्द्र दत्त महाभारत के पात्रों की तरह रामायण के वीरों को भी काल्पनिक मानते हैं।[२] लेकिन यह केवल कल्पित विचार ही है।

येदातोरे सुब्बाराव के अनुसार 'रामायण का अर्थ दार्शनिक है, रामायण के भौगोलिक स्थान योगशास्त्र के चक्र हैं। ई० सूर भी रामकथा में एक दार्शनिक शास्त्र का प्रतिपादन करते हैं।[3] डा० बुल्के इन मतों के सम्बन्ध में असहमति प्रकट करते हैं कि, इतना ही निश्चित है कि ये कल्पनायें आदि कवि के मन से कोसों दूर थी।[४]

रामायण को कथा के स्रोत विषयक अन्य मत ई० हापकिन्स, डा० वान नेगेलैन, दिनेश चन्द्र सेन आदि के भी हैं। इन मतों को उद्धृत करते हुए डा० बुल्के ने इनके सम्बन्ध में आलोचना भी प्रस्तुत की।

वस्तुतः रामायण की कथा ऐतिहासिक है। लेकिन इस मत में भी विद्वानों की भिन्न-भिन्न धारणायें हैं। रामायण के द्वितीय भाग का आधार निर्धारित करने के लिए डा० याकोवी वैदिक साहित्य का सहारा लेते हैं।[५] याकोवी के मत का समर्थन मैकडानल और कीथ ने भी किया है।[६] वस्तुतः ये मत निराधार है। डा०

---

१. वही पृ० १००
२. रामायण कालीन संस्कृति, पृ० ६
३. रामकथा, पृ० १००
४. रामकथा पृ० ११६
५. उद्धृत, रामकथा, पृ० १०६
६. वही

बुल्के इस विषय में लिखते हैं कि डा० याकोबी के इस मत के विरुद्ध हम सामान्य रूप से कह सकते हैं कि इसमें कल्पना प्रधान है।[1]

जे० सी० ओमन का मत है कि रामायण की कहानी ऐतिहासिक सत्य पर आधारित है। आर्य जब गंगा के मैदान में निवास ही कर पाये होंगे कि इन्हें असभ्य जातियों के साथ युद्ध करना पड़ा होगा और उनके मुख्य नेता के वीरतापूर्ण 'कार्य' गान की कथा वस्तु बन गये होंगे।[2] ओमन का यह कथन कि रामायण की कहानी ऐतिहासिक है, सत्य है। लेकिन उस रूप में नहीं जैसा कि उन्होंने प्रस्तुत किया है। रामायण की कथा के स्रोत के विषय में दिनकर का मत है कि रामकथा सम्बन्धी आख्यान काव्यों की वास्तविक रचना वैदिक काल के बाद इक्ष्वाकुवंश के सूतों ने आरम्भ की। इन्हीं आख्यान काव्यों के आधार पर वाल्मीकि ने रामायण की रचना की। इस रामायण में अयोध्याकाण्ड से लेकर युद्धकाण्ड तक की कथा वस्तु का वर्णन था और उसमें सिर्फ १२०० श्लोक थे।[3]

डा० बुल्के ने रामायण की कथा का स्रोत ऐतिहासिक बताते हुए स्पष्ट किया है कि 'वाल्मीकि रामायण को पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि कवि को अपने कथानक की ऐतिहासिकता के विषय में सन्देह नहीं है। नायक का छल से बाली का वध करना भी ऐतिहासिकता की ओर निर्देश करता हैं।[4] रामायण को उपजीव्य बताते हुए बुल्के का मत है कि राम, रावण तथा हनुमान के विषय में पहले स्वतन्त्र आख्यान प्रचलित थे, जिनके संयोग से रामायण की रचना हुई।[5]

---

१. वही
२. उद्धृत, द कन्सेप्ट आफ धर्म इन रामायण, पृ० १४
३. संस्कृति के चार अध्याय, पृ० ६९
४. रामकथा, पृ० ११३
५. वही, पृ० ६४

वी० वी० कामेश्वर ऐयर का भी यही मत है कि भारतीय परम्परा और समग्र संस्कृत साहित्य में राम के ऐतिहासिक अस्तित्व को स्वीकार किया गया है।[1]

रामायण की कथा का स्रोत ऐतिहासिक है, इसका प्रमाण स्वयं रामायण से प्राप्त होता है। रामायण में उल्लेख है कि जिस वंश में सगर नाम के राजा हुए, जिनके ६० पुत्रों ने समुद्र का खनन किया था[2] उन महात्मा इक्ष्वाकु[3] वंश के राजा में यह महाकथा उत्पन्न हुई। जो रामायण के नाम से प्रसिद्ध है। रामायण की कथा की ऐतिहासिकता की पुष्टि के लिए रामायण में इक्ष्वाकु वंश के राजाओं से सम्बन्धित राज्य एवं निश्चित भूभाग का भी उल्लेख है। रामायण में उल्लेख है कि सरयू नदी के किनारे धन धान्य से सम्पन्न कौसल नाम का जनपद था।[4] इसमें मानवों के राजा मनु द्वारा निर्मित अयोध्या नगरी थी।[5] इसमें राजा दशरथ राज्य करते थे।[6] उन्हीं राजा दशरथ की रानी कौसल्या के गर्भ से राम का जन्म हुआ।[7] वे राम ही इक्ष्वाकु वंश को बढ़ाने वाले थे।[8]

---

१. वा० रा० एण्ड दि वेस्टर्न क्रिटिक्स, उद्धृत, रामायण कालीन संस्कृति पृ० ७
२. येषां स सगरो नाम सागरोयेनखानितः, षष्टिपुत्रसहस्राणि यं यान्तं पर्यवारयन्। वा० रा० १।५।२
३. इक्ष्वाकूणामिदं तेषां राज्ञां वंशेमहात्मनां, महदुत्पन्नमाख्यानं रामायणमिति श्रुतम्। वा० रा० १।५।३
४. कौसलोनाम मुदितः स्फीतो जनपदो महान्, निविष्टः सरयूतीरे प्रभूत धनधान्यकम्। वा० रा० १।५।५
५. अयोध्यानाम नगरी तत्रासील्लोकविश्रुता, मनुना मानवेन्द्रेणयापुरी निर्मिता स्वयं। वा० रा० १।५।६
६. तां तुराजादशरथो महाराष्ट्रविवर्धनः, पुरीमावासयामास दिवि देवपतिर्यथा। वा० रा० १।५।६
७. कौसल्या जनयद् रामं। वा० रा० १।१८।१०
८. पुत्रमैक्ष्वाकुनन्दनम्। वा० रा० १।१८।१०

आसीन हो जाने पर उनके सम्पूर्ण चरित्र उन्हीं राम के राजसिंहासन पर का वर्णन वाल्मीकि ने रामायण में किया है।[1]

स्पष्ट है कि वाल्मीकि रामायण की कथा का स्रोत न तो विदेशी है, न जातक कथाओं में वर्णित रामकथा का विस्तार है और न दार्शनिक तत्त्वों पर आधारित है और न काल्पनिक है। रामायण की कथा का स्रोत वह ऐतिहासिक रूप भी नहीं है जो असंबद्ध या मनगढ़न्त हो। रामायण की कथा का स्रोत कौसल जनपद में मनु के द्वारा बसाई गई अयोध्या नगरी में राज्य करने वाले इक्ष्वाकु कुल के राजवंश में उत्पन्न सत्य के रक्षक, लोक हितैषी एवं राजाओं में श्रेष्ठ राम का चरित्र है।

रामायण के मूल और प्रक्षिप्त अंश

किसी ग्रन्थ में जब उस ग्रन्थ कर्ता की मृत्यु के पश्चात् कोई अन्य व्यक्ति स्वरचित या अन्य किसी की रचना को जोड़ देता है तो यह अंश प्रक्षिप्त अंश कहलाता है।

रामायण का आज का जो रूप है उसके विषय में सामान्य रूप से यह धारणा है कि यह एक कवि की रचना नहीं है। इसकी प्रतीति अनेक प्रमाणों से होती है। रामायण में कई स्थल ऐसे हैं जिनमें कि एक ही प्रकार के कथा के वर्णन में विरोध है। इस कृति में मूल और बाद में जोड़े गए अंशों की रचना शैली में भी वैभिन्न्य है। इसमें प्रक्षेपांशों का स्पष्टीकरण इससे भी होता है कि प्रस्तुत कृति के रचयिता वाल्मीकि किन्हीं-किन्हीं प्रसंगों में स्वयं पात्र के रूप में वर्णित है।

रामायण का अध्ययन करने से एवं प्रक्षेपांशों की दृष्टि से विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि रामायण में निम्नांकित अंश प्रक्षिप्त है :—

---

१. प्राप्तराज्यस्य रामस्य वाल्मीकिर्भगवानृषिः। चकार चरितं कृत्स्नं विचित्रपदमर्थवत्। वा० रा० १.४.१

बालकाण्ड में प्रारम्भिक चार सर्ग प्रक्षिप्त प्रतीत होते हैं, क्योंकि इन सर्गों को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इसकी कथा को बाल्मीकि नहीं कह रहे हैं, कोई अन्य व्यक्ति ही इस कथा को कहने वाला है। इस कथा में वाल्मीकि भी एक पात्र के रूप में निर्दिष्ट है। बालकाण्ड के प्रथम सर्ग में उल्लेख है कि वाल्मीकि ने नारद से श्रेष्ठ गुणों से युक्त नर के विषय में प्रश्न किया।[१] यदि यह अंश वाल्मीकि द्वारा लिखा गया होता तो, वाल्मीकि उत्तम पुरुष में प्रयुक्त हुए होते। ऐसा प्रतीत होता है कि वाल्मीकि का परिचय, व्यक्तित्व और महत्त्व बताने के लिये किसी व्यक्ति के के द्वारा या वाल्मीकि के शिष्यों के द्वारा बालकाण्ड में प्रारम्भिक चार सर्ग बाद में जोड़ दिये गये।

वाल्मीकि कृत रामायण को कथा का आरम्भ बालकाण्ड के पाँचवें सर्ग से ही प्रतीत होता है। कुछ विद्वानों के अनुसार सम्पूर्ण बालकाण्ड ही प्रक्षिप्त है। याकोबी का मत है कि उत्तरकाण्ड की भाँति बालकाण्ड भी आदि रामायण का अंग नहीं है।[२] इस कथन को पुष्टि डा० बुल्के ने अनेक प्रमाण देकर की है[३] और यह सिद्ध किया है कि बालकाण्ड आदि रामायण में नहीं था।

का० बुल्के एवं याकोबी का उपर्युक्त मत मान्य नहीं हो सकता। क्योंकि रामायण में इस कृति के कलेवर के लिये 'षट्काण्डानितथोत्तरम्'[४] का प्रयोग हुआ है। षट्काण्डानि से बालकाण्ड से युद्धकाण्ड तक का बोध होता है। युद्धकाण्ड के अन्त में ग्रन्थ के समाप्त होने की सूचना भी प्रतीत होती है। दूसरी बात यह भी है कि बालकाण्ड सम्पूर्ण रामायण का आधार है। अतः बालकाण्ड के प्रथम चार सर्गों एवं अवतारवाद के अंशों

---

१. वा० रा० १।१।१।
२. उद्धृत, रामकथा पृ० १२२
३. रामकथा, पृ० १२२-१२४
४. वा० रा० १।४।२

को, जो कि प्रक्षिप्त प्रतीत होते हैं, छोड़ कर यह काण्ड मूल या आदि रामायण में अवश्य ही रहा होगा।

उत्तरकाण्ड पर प्रक्षिप्तांशों की दृष्टि से विचार करने पर यह पूर्ण रूपेण होता है कि यह सम्पूर्ण काण्ड प्रक्षिप्त है। इस काण्ड के प्रक्षिप्त होने में निम्नलिखित प्रमाण है—

(१) बालकाण्ड में 'षट्काण्डानि तथोत्तरम्'[१] से यह ध्वनि निकलती है कि उत्तरकाण्ड बाद में रचा गया होगा। अथवा तथोत्तरम् लिखने की क्या आवश्यकता थी। केवल षट् के स्थान पर सप्त ही लिखा जा सकता था। राम, रावण, हनुमान् आदि से सम्बन्धित कथाओं को महत्त्व देने की दृष्टि से ही यह रचना-कार्य उत्तरकाण्ड के रूप में वाल्मीकि-रामायण में जोड़ दिया गया।

(२) रामायण में उत्तरकाण्ड बाद में जोड़ने का एक प्रमाण यह भी है कि उसमें ब्राह्मणों की महिमा का अत्यधिक वर्णन है। सम्भवत: इसी महिमा को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये किसी ब्राह्मण ने श्रेष्ठ कृति रामायण में उत्तरकाण्ड को रचकर जोड़ दिया।

(३) उत्तरकाण्ड में अनेक स्थलों से प्रतीत होता है कि उनमें वाल्मीकि के अतिरिक्त कोई अन्य ही कथा को कह रहा है। उदाहरण स्वरूप सीता के दो पुत्रों की उत्पत्ति की सूचना मुनि बालक ने वाल्मीकि मुनि को दी।[२] वाल्मीकि प्रसन्न हुये[३] 'वाल्मीकि ने दोनों कुमारों की रक्षा की,[४] आदि। यदि वाल्मीकि

---

१. वा० रा० १।४।२

२. वाल्मीके: प्रियमाचख्यु: सीताया: प्रसवं शुभम्। वा० रा० ७।६६।२

३. जगामतत्र हृष्टात्मा ददर्श चकुमारकौ, भूतघ्नीं चाकरोत्ताभ्याम् रक्षां रक्षोविनाशिनीम्। वा० रा० ७।६६।५

४. भूतघ्नीं चाकरोत्ताभ्याम् रक्षां रक्षोविनाशिनीम्। वा० रा० ७।६६।५

द्वारा उत्तरकाण्ड की रचना हुई होती तो वे उत्तम पुरुष में प्रयुक्त हुये होते।

(४) रामायणानुसार इस कृति का रचना काल राम का राज्य काल अर्थात् त्रेता युग है।[१] लेकिन उत्तकाण्ड में उल्लेख है कि जब ब्राह्मण एवं क्षत्रिय अवनति को प्राप्त हुए, तब अधर्म का दूसरा चरण पृथ्वी पर आया, जो द्वापर कहलाया।[२] रामायण की रचना पूर्वोक्ति के अनुसार त्रेता युग में हुई। अतः उत्तरकाण्ड में द्वापर युग के आगमन की सूचना का उल्लेख यह सिद्ध करता है कि उत्तरकाण्ड की रचना त्रेतायुग के बाद की अर्थात् द्वापर युग की है। यदि उत्तरकाण्ड भी त्रेतायुग की रचना होता, तो द्वापर का प्रयोग इसमें भविष्यत् काल की क्रिया के साथ होता। जैसा कि कलियुग के आगमन के लिये भविष्यत् काल की क्रिया का प्रयोग है।[3]

(५) उत्तरकाण्ड में वर्णन आया है कि इक्ष्वाकु कुल के इष्ट देव जगन्नाथ है।[४] जगन्नाथ, जो कि पुरो में है, सुभद्रा, श्रीकृष्ण और बलभद्र का अर्थावतार है। अतएव इनका प्रादुर्भाव कृष्णावतार के पश्चात् मानना पड़ेगा। रामावतार तो कृष्णावतार के बहुत पूर्व का है। अतः जगन्नाथ का इक्ष्वाकु कुल का आराध्य देव होना संगत नहीं जान पड़ता। अतः उत्तरकाण्ड कृष्णावतार के पश्चात् द्वापर युग की रचना प्रतीत होती है।

(६) उत्तरकाण्ड में वासुदेव का नाम आया है।[५] यह कृष्ण के लिये प्रयुक्त होगा। अतः उत्तरकाण्ड आदि रामायण से बहुत बाद की रचना प्रतीत होती है।

---

१. वा० रा० १।४।१
२. ततो द्वापर संज्ञा सा युगस्य समजायत। वा० रा० ७।७४।२३
३. वा० रा० ७।७४।२७
४. वा० रा० ७।१०८।३१
५. उत्पत्स्यते हि लोकेऽस्मिन् यदूनां कीर्तिवर्धनः, वासुदेव इति ख्यातो लोके पुरुषविग्रहः। वा० रा० ७।५३।२०

(७) उत्तरकाण्ड में मूल रामायण के प्रसङ्गों से विरोध एवं असगतियां भी प्राप्त होती है। बालकाण्ड एवं उत्तरकाण्ड में वर्णित अहिल्या के प्रसङ्ग एवं इन्द्र के शाप के विषय में विरोध है। कहीं कहीं विषय के प्रस्तुत करने में असङ्गतियाँ भी दृष्टिगोचर होती हैं। युद्धकाण्ड में उल्लेख है कि राम द्वारा सत्कृत होकर सुग्रीव किष्किधापुरी में प्रस्थान कर गये और विभीषण ने लङ्का की ओर प्रस्थान किया।[1] उत्तरकाण्ड में पुनः उनकी उपस्थित दिखाई गई है[2] जब कि उनके पुनः आने का कोई उल्लेख नहीं है।

(८) उत्तरकाण्ड में वर्ण्य विषय में स्वयं विरोध मिलता है। जैसे कि लक्ष्मण ने सीता के साथ गङ्गा को पार किया।[3] तथापि उनके गङ्गा पार होने का पुनः विस्तार से वर्णन है।[4]

(९) उत्तरकाण्ड में भूतकाल की क्रियाओं का प्रयोग भी इस बात को सूचित करता है कि राम राज्य के अनन्तर ही उत्तरकाण्ड की रचना हुई होगी।

(१०) उत्तरकाण्ड में उल्लेख है कि रामायण में २४००० श्लोक एवं १०० उपाख्यान हैं।[5] प्रचलित वाल्मीकि रामायण में बालकाण्ड से युद्धकाण्ड तक ही २४००० से अधिक श्लोक पाये जाते हैं अतः उत्तरकाण्ड निश्चित ही प्रक्षिप्त है।

उत्तरकाण्ड के प्रक्षेप के विषय में 'रामायण कालीन आर्य संस्कृति के रचयिता' विष्णु दामोदर शास्त्री का मत है कि 'यह बात अवश्य है कि अन्य ६ काण्डों के अनुसार उत्तरकाण्ड का भी कुछ अंश प्रक्षिप्त होगा, और है भी, पर इतने से ही 'सम्पूर्ण उत्तर-

---

१. वा० रा० ६।१३१।८३, ८४, ८५

२. वा० रा० ७।३०।५२

३. वा० रा० ७।४६।३३, ३४

४. वा० रा० ७।४७।१

५. वा० रा० ७।६४।२६

काण्ड ही प्रक्षिप्त है' यह नहीं कहा जा सकता ।[१] उन्होंने आगे लिखा है कि 'उत्तरकाण्ड प्रक्षिप्त तो नहीं है किन्तु रामायण का परिशिष्ट है यह बात बालकाण्ड सर्ग ३, श्लोक ३९ से ही स्पष्ट होती है। यथा—

अनागतं च यत् किंचित रामस्य वसुधातले ।
तच्चकारोत्तरे काव्ये वाल्मीकिर्भगवान् ऋषिः ।।

अर्थात् श्रीरामचन्द्र जी के चरित्र वर्णन में जो कुछ वर्णन करने के लिये बाकी रह गया है, अर्थात् जो कथा प्रसंग छूट गये हैं उन सबका समावेश भगवान् वाल्मीकि ऋषि ने उत्तरकाण्ड में किया है ।[२]

श्री विष्णु दामोदर शास्त्री ने यह भी उल्लेख किया है कि 'यदि उत्तरकाण्ड की रचना महर्षि वाल्मीकि ने न की होती तो (१) राक्षसों की उत्पत्ति (२) हनुमान् जी का जन्म (३) रावण का पराक्रम (४) श्रीराम का चरित्र, (५) भरत और शत्रुघ्न के पराक्रम, (६) सीता त्याग, लवकुश जन्म, श्रीराम जो का पुनः दारपरिग्रह न करके अन्त तक व्रतस्थ रहना, श्रीराम के प्रति प्रजाजनों द्वारा प्रकट किया हुआ असीम प्रेम तथा अन्यान्य प्रसङ्गों का चिह्न भी शेष न रहा होता ।[३]

श्री विष्णु दामोदर शास्त्री द्वारा प्रस्तुत किये गये उपर्युक्त प्रमाण उत्तरकाण्ड के प्रक्षिप्त न होने के लिये पर्याप्त नहीं है । क्योंकि यदि उत्तरकाण्ड वाल्मीकि की रचना होती, तो उसमें मूल रामायण से एवं स्वयं के कथानक में विरोध एवं असंगतियाँ न होतीं एवं स्वयं वाल्मीकि भी पात्र के रूप में प्रयुक्त न होते ।

---

१. रामायण कालीन आर्य संस्कृति-निबन्ध माला, प्रथम भाग, पृ० ९५
२. वही पृ० ९६
३. वही पृ० ९७

रामायण में बालकाण्ड के प्रथम चार सर्ग एवं उत्तरकाण्ड तो प्रक्षिप्त हैं ही, साथ ही अन्य काण्डों में भी प्रक्षेपांश हैं। किष्किन्धाकांड के स्थलों में भी विरोध होने के कारण वे प्रक्षिप्त प्रतीत होते हैं। उदाहरणार्थ राम से प्रथम वार्ता के समय सुग्रीव अपने को बालि द्वारा राज्य से निष्कासन करने की बात कहता है।[1] लेकिन अन्यत्र इसी प्रसंग को सुग्रीव भिन्न रूप में कहता है कि बालि मुझे मार डालने के लिये मेरे ऊपर दौड़ा तब मैं मन्त्रियों सहित भागा।[2] इस प्रकार के विरोध प्रक्षेपांश को ही सिद्ध करते हैं।

डा० बुल्के ने रामायण के प्रक्षेपांशों पर विस्तार से विचार किये हैं। उनकी दृष्टि में बालकांड एवं उत्तरकाण्ड तो पूर्ण रूपेण प्रक्षिप्त है, साथ ही अन्य कांडों में भी प्रक्षेप है। उनके मत से रामायण में प्रक्षेपांशों को संक्षेप में निम्नलिखित रूप से उल्लेख किया जाता है—

(१) डा० बुल्के ने उल्लेख किया है कि रामायण में अवतार सम्बन्धी समस्त सामाग्री प्रक्षिप्त है।

(२) कथा में पुनरुक्ति के प्रसंग प्रक्षिप्त है।

(३) इसमें अद्भुत रस की सामग्री का उल्लेख प्रक्षिप्त है।

(४) इसमें काव्यात्मक तथा अलङ्कार पूर्ण वर्णन प्रक्षिप्त है।

(५) रामायण को ज्ञान का भंडार बनाने की प्रवृत्ति के कारण इसमें प्रक्षिप्त अंश जोड़े गये हैं।

(६) इसमें आदर्शवाद के प्रभाव के कारण भी प्रक्षेप हुये है।

---

१. वा० रा० ४।८।३२

२. वा० रा० ४।४६।११

उपरोक्त तत्वों के आधार पर डा० बुल्के ने प्रायः सभी कांडों में कुछ न कुछ प्रक्षिप्त अंश बताये हैं। प्रस्तुत कृति में कई काल्पनिक प्रसंग भी अपनी प्रक्षिप्ता का समर्थन करते हैं। वस्तुतः रामायण के बालकांड के प्रथम चार सर्ग और इसमें आये हुये विरोधी प्रसंग, राम के विष्णु सम्बन्धी अवतार के प्रसंग, अयोध्याकाण्ड के प्रसंग, अरण्यकांड में राम के दिव्य पराक्रम के प्रसंग, सुन्दर-कांड में आये हुये राम के दैवीय गुणों से युक्त होने के प्रसंग एवं युद्धकांड में अवतार से सम्बन्धित प्रसंग एवं अन्य काल्पनिक और विरोधात्मक सामग्री प्रक्षेपांश ही है।

रामायण में प्रक्षेपों के कारण—

रामायण में प्रक्षेपों के कारण निम्नलिखित हैं—

(१) प्रारम्भ में रामायण की कथा मौखिक रूप में रही होगी। अतः इसके गायन करने वाले कुशीलवो द्वारा ही इसमें विभिन्न अंशो को जोड़ दिया गया होगा। जैसा कि याकोवी के मत को उधृत करते हुए डा० बुल्के ने लिखा है कि 'कुशीलव रामायण को गाते-गाते श्रोताओं की रुचि का भी ध्यान रखते होंगे। जिन गायकों में काव्यकौशल था वे इन लोक प्रिय अंशों को बढ़ाते थे और इसी तरह आदि रामायण का कलेवर बढ़ने लगा।[१] रामायण में कुशीलवो द्वारा राम की सभा में रामायण की कथा के गायन का उल्लेख है।[२]

(२) प्रक्षेपों का दूसरा कारण यह भी रहा होगा कि किसी वर्ग विशेष की महत्ता को स्थिर रखने के लिये उस जाति विशेष

---

१. राम कथा, पृष्ठ १४१
२. वा० रा० १।४।१४

के व्यक्ति ने अपने वर्ग की महत्ता को बढ़ाने के प्रसंग रच कर रामायण में जोड़ दिये होंगे। जैसे कि राम द्वारा ब्राह्मणों की श्रेष्ठता के कथन के उल्लेख[1] आदि। यह इसलिये किया कि ये प्रसंग महत्त्वपूर्ण उपयोगी और सामाजिक नियम के रूप में स्थिर रहें।

(३) प्रक्षेपों का कारण यह भी रहा होगा कि कुछ कवियों ने अपनी रचना को महत्त्व देने के लिये रामायण में जोड़ दिया होगा।

(४) रामायण में प्रक्षेपों का एक यह भी कारण है कि यह लिपिबद्ध हुई होगी तो लेखबद्ध करने वालों ने इस कृति में जाने या अनजाने दूसरों के नीति के श्लोक एवं लोक प्रचलित अनेक गाथायें लिपिबद्ध कर दी होंगी।

(५) रामायण में अवतार सम्बन्धी कई प्रसंग है। यह अवतार सम्बन्धी श्लोक और अनेक पौराणिक कथायें भी प्रस्तुत कृति में प्रक्षेपों के रूप में जोड़ दिये गये होंगे।

वस्तुतः रामायण ६ काण्डों की कहानी है। जैसा कि मस्ती एम. वेंकटेश आयन्गर ने इस कृति को ६ पुस्तकों या काण्डों की कहानी कहा है।[2] उत्तरकाण्ड पूर्णतः प्रक्षिप्त है। अन्य सभी काण्डों में भी अनेक स्थल प्रक्षिप्त हैं जो कि पहले काल्पनिक, अवतार सम्बन्धी, विरोधी आदि कहे गये हैं। रामायण में जितने भी प्रक्षेपांश हैं वे मूल रामायण की रचना काल के बहुत बाद के नहीं है। अतः सम्पूर्ण रामायण (प्रक्षेपांशों सहित) को दृष्टि में रख कर

---

१. वा० रा० ७।६०।१४

२. द पोइट्री आफ वाल्मीकि, पृ०२१

भी प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में रामायण में राजनीतिक तत्त्वों का विवेचन किया गया है।

वाल्मीकि रामायण का महत्व—

सत्य, शिव एवं सौन्दर्य गुणों से युक्त ऐतिहासिक[१] कृति वाल्मीकि रामायण भारतीय संस्कृति का आधार, प्रतीक एवं उद्‌बोधक है। यह कृति तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था, धार्मिक स्थिति, राजनैतिक व्यवस्था आदि समाज के सभी क्षेत्रों का परिज्ञान कराती है। और आदर्श समाज के निर्माण की प्रेरणा देती है।

रामायण कालीन राज्यों का संचालन धर्म द्वारा होता था। उस समय धर्म किसी वर्ग विशेष, जाति विशेष या सम्प्रदायिक तत्त्वों से प्रभावित न होकर सदाचार, आत्मकल्याण तथा लोक-कल्याण आदि भावनाओं के स्तम्भों पर स्थित था। रामायण में वर्णित यही धर्म राज्य का आधार स्तम्भ होने के कारण आज के युग के लिये मार्ग दर्शन के रूप में अवस्थित है। अतः आदर्श राज्य की स्थापना के लिये रामायण में उल्लिखित राजनीतिक तत्त्वों के अवलोकन की आवश्यकता रामायण के महत्त्व को और भी बढ़ा देती है।

यह कृति न केवल सामाजिक या राजनीतिक आदर्शों की दृष्टि से ही अनुकरणीय है, अपितु यह साहित्य की दृष्टि से भी संस्कृति साहित्य में कथावस्तु, चरित्र चित्रण, भाषा शैली और उद्देश्य की दृष्टि से अपना श्रेष्ठतम स्थान रखती है। यह कवियों की प्रेरणा का स्रोत भी रही है जैसा कि स्वयं इसी कृति में उल्लिखित है कि 'परं कवीनामाधार'। इसी कृति से प्रेरित होकर

---

१. वा० रा० ६।१३१।११२

२. वा० रा० १।४।२१

संस्कृत के अन्य कवियों भास, कालिदास, भवभूति आदि ने आदि-कवि वाल्मीकि के महत्व को निर्दिष्ट करते हुये अपनी रचनाओं में इसके कथानक को स्थान दिया है।

संस्कृत साहित्य में रामचरित सम्बन्धी अनेक रामायणों एवं महाकाव्यों अध्यात्म रामायण, रघुवंश महाकाव्य, रावणवध या भट्टिकाव्य, कुमारदास का जानकीहरण, अभिनन्द का राम चरित, क्षेमेन्द्र का दशावतारचरित एवं रामायणमञ्जरी, मानान्तक का रामचन्द्रोदय, विमल सूरि के पउमचरिउ का हरिषेणाचार्य कृत संस्कृत अनुवाद आदि की रचना हुई लेकिन वाल्मीकि रामायण ही अपने महत्व के कारण इतनो लोकप्रिय बनी एवं सभो काव्यों में श्रेष्ठतम स्थान प्राप्त कर सकी।

वाल्मीकि रामायण के महत्व के विषय में कुछ आलोचकों एवं विद्वानों के मत उल्लेखनीय है, जो निम्नांकित है—

डा० बुल्के का मत है कि आदि कवि वाल्मीकि के पूर्व की रामकथा, विषयक कथाओं तथा आख्यान काव्यों की लोकप्रियता तथा व्यापकता निर्धारित करना असम्भव है और इस सामग्री की अल्पता का ध्यान रखकर यह अनुमान दृढ़ हो जाता है कि जिस दिन वाल्मीकि ने इस प्राचीन गाथा साहित्य को एक ही कथा सूत्र में ग्रथित कर आदि रामायण की सृष्टि की थी उसी दिन से राम कथा की द्विग्विजय प्रारम्भ हुई।

पी० मेसन आसेल ने रामायण के महत्व को दर्शाते हुये लिखा है कि 'आत्मत्याग वीरत्व और पति-पत्नी के प्रेम की यह अनूठी कथा विश्व में जितनी प्रसारित हुई है उतनी कोई अन्य साहित्यिक कृति नहीं।'[1]

आर० वी० जागीरदार ने रामायण को सहज भावों और

---

१. एन्श्यन्ट इण्डिया एण्ड इण्डियन सिविलिजेशन, पृ० २५६

सौन्दर्य की कृति मानते हुये लिखा है कि लौकिक संस्कृत के महा-काव्यों में रामायण का सहज स्वाभाविक प्रवाह, उसकी भाव प्रवणता, सरलता एवं सौन्दर्य चेतना के कम दर्शन होते है। इस कमी की पूर्ति के लिये ये कवि पाण्डित्य प्रदर्शन और अलङ्कारों का प्रचर प्रयोग करने लगे। इन प्रासङ्गिक असमानताओं के आ जाने पर भी लौकिक संस्कृत साहित्य रामायण के यथासम्भव निकट ही बना रहा।[1]

रवीन्द्र बाबू ने रामायण की सर्वाङ्गीणता को लक्ष्य करके एक बार कहा था कि, रामायण की प्रधान विशेषता यही है कि उसमें घर की ही बातें अत्यन्त विस्तृत रूप से वर्णित हुई हैं। पिता-पुत्र में, भाई-भाई में, स्वामी-स्त्री में जो धर्म बन्धन है, जो प्रीति और भक्ति का सम्बन्ध है उसने रामायण को इतना महान् बना दिया है कि वह सहज में महाकाव्य के उपयुक्त हो गया है।[2]

डा० नानूराम व्यास ने रामायण की महत्ता को स्पष्ट करते हुये लिखा है कि भारतीय साहित्य के आधे से अधिक हिस्से को वाल्मीकि रामायण ने प्रेरित किया है जो संस्कृत में वाल्मीकि के कथानक को लेकर अनेक रामायणें निर्मित हुईं वहाँ आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्य में भी रामकथा की अद्वितीय व्यापकता दिखाई पड़ती है। तमिल कंबन रामायण, तेलगु द्विपाद रामायण, मलयालम रामचरित, कन्नड़ तोखे रामायण, बंगाली कृति वासीय रामायण, हिन्दी रामचरितमानस, उड़िया बलरामदास रामायण, असमिया रामायण, मराठी भावार्थ रामायण, गुजराती रामबाल-चरित, कथा राजस्थानी रघुनाथ रूपक गीतों से—ये वाल्मीकि की

---

१. ड्रामा इन संस्कृत लिटरेचर, पृ० ६, १०

२. प्राचीन साहित्य (द्वारा रवीन्द्रनाथ ठाकुर), पृ० १, अनुवादक रामदहिन मिश्र, उद्धृत संस्कृत साहित्य का इतिहास, (वाचस्पति गैरोला) पृ० २०४

दिग्विजय के प्रमाण हैं ।[1]

वाचस्पति गेरोला ने रामायण के महत्व के विषय में उल्लेख किया है कि रामायण एक दिन अपने अकेले निर्माता की कृति मात्र रही होगी, किन्तु आज वह कोटि-कोटि नर नारियों के घर-घर की वस्तु है। रामायण निःसन्देह एक महान् कवि की महान् कृति है। उसमें एक ओर तो अपने महान् निर्माता की अनुपम पाण्डित्य प्रतिभा का समावेश है और दूसरी ओर जिस देश एवं धरती में उसका निर्माण हुआ, वहाँ के सामाजिक, धार्मिक, आध्यात्मिक और आदर्शमय जीवन में समग्रताओं का एक साथ समावेश है।[2]

श्री मनमथ नाथ दत्त ने रामायण के महत्व का उल्लेख इस प्रकार किया है कि 'महाभारत के विषय में जो लोकोक्ति प्रचलित है कि जो भारत (महाभारत) में नहीं है वह भारत (भारतवर्ष) में नहीं है, वह रामायण पर भी घटित होती है।'[3]

रामायण की महत्ता के कारण ही इस कृति में इसके स्थायित्व का उल्लेख किया गया है।[4]

अस्तु मानव जीवन के सभी पक्षों को एव सभी सिद्धान्तों का उल्लेख करने वाली यह कृति वाल्मीकि रामायण अपने महत्व को अक्षुण्ण बनाने में समर्थ है। रामायण की सर्वाङ्गीण भावना का परिचय उसके आकार में ही मिलता है। उसकी इसी सर्वाङ्गीणता के कारण स्वयं कवि ने उसे काव्य,[5] आख्यान[6] और पुरातन

१. रामायण कालीन संस्कृति पृ० २६४
२. संस्कृत साहित्य का इतिहास, द्वारा वाचस्पति गैरोला पृ० २०१, २०२।
३. उद्धृत रामायण कालीन संस्कृति, पृ० ४
४. वा० रा० १।२।३६
५. वा० रा० १।२।४१ एवं वा० रा० १।४।७
६. वा० रा० १।४।२१, २७ एवं वा० रा० १।५।३

इतिहास[1] कहा है।

रामायण के महत्व के कारण, जैसा कि ऊपर निर्दिष्ट है इसकी कथा को आधार मानकर अनेक काव्य ग्रन्थ और नाटक आदि तो लिखे ही गए हैं साथ ही साथ इस पर आलोचनात्मक कार्य भी बहुलता से हुआ है एवं अब भी हो रहा है। प्रस्तुत विषय में डा० नानूराम व्यास ने उल्लेख किया है कि आधुनिक काल में रामायण विषयक अध्ययन प्रारम्भ हुये लगभग एक शताब्दी होने को आई है। इस क्षेत्र में लैसेन नामक जर्मन बिद्वान अग्रणी माने जाते हैं। बेब्र, म्युअर, प्रेडरिक, मोनियर विलियम, याकोवी, हेन्स, विटज, वामगार्टनर, लुडविग, ल्यूडर्स, डाल्हमैन, लेवी, हापकिंस, मेक्डानेल, विंटरनिक्स, कीथ, पार्जिटर, रवेन, प्रभृति विद्वानों ने एक समालोचक की दृष्टि से वाल्मीकि रामायण की व्याख्या की। किन्तु पाश्चात्य विद्वानों ने अधिकतर रामायण के पाठों की समीक्षा, उसके रचना काल के विवेचन तथा उसके ऐतिहासिक तथ्यों के मूल्यांकन में ही अपने को उलझाये रखा। रामायण के रोचक पक्ष उसके सांस्कृतिक अध्ययन की ओर उनका ध्यान नहीं गया। कतिपय भारतीय विद्वानों ने भी अंग्रेजी में रामायण की अन्तरङ्ग परीक्षा की है। स्वर्गीय चिन्तामणि विनायक वैद्य की 'दि रिडिल आफ दी रामायण' (बम्बई १९०६) में काव्य और इतिहास की दृष्टि से वाल्मीकि रामायण की समालोचना की गई। कुमारी पी० सी० धर्मा की 'रामायण पोलिटी' (मद्रास १९४१) में रामायणकालीन राजनीतिक परिस्थितियों का विश्लेषण है। स्वर्गीय बी० यस० श्रीनिवास शास्त्री की 'लेक्चर्स आन दी रामायण' में रामायण के पात्रों का सुन्दर चरित्र चित्रण किया गया है। के० एस० रामास्वामी शास्त्री की 'स्टडीज इन द रामायण' (बड़ौदा १९४४) में रामायण का एतिहासिक, तुलनात्मक एवं काव्य शास्त्री समीक्षण किया गया है

---

१. वा० रा० ६।१३१।११२

तथा रामायण की कुछ पहेलियों को सुलझाया गया है। डा० सी० सेन, बी० आर० रामचन्द्र दीक्षिकार, नील माधव सेन, शिवदास बनर्जी, सी० एन० मेहता, वी० एस० सुकथनकर, सी० शिवराममूर्ति, एस० सी० सरकार, नवीन चन्द्रदास, टी० परमशिवऐयर, जे० एन० समद्दर, एम० वी० किबे, नीलकण्ठ शास्त्र, के० राघवन, मनमथ साधराय, बी० एच० बड़ेर आदि भारतीय विद्वानों ने भी रामायण पर आलोचनात्मक, ऐतिहासिक, भौगोलिक, साहित्यिक, कलात्मक आदि दृष्टियों से अनुसंधानपरक ग्रन्थ अथवा लेख लिखे हैं।…… हिन्दी के रामायण सम्बन्धी शोध पूर्ण साहित्य में सर्वाधिक उल्लेखनीय कृति डा० बुल्के की 'रामकथा' है।[1]

उपरोक्त कार्य के अतिरिक्त अन्य अनेक विद्वानों ने रामायण पर महत्वपूर्ण आलोचनात्मक कार्य किया है। रामायण कालीन सामाजिक और सांस्कृतिक पक्षों की ओर ध्यान आकर्षित करते हुये डा० नानूराम व्यास ने 'रामायणकालीन संस्कृति' एवं 'रामायण कालीन समाज' का प्रकाशन कराया। रामायण कालीन संस्कृति सम्बन्धित विष्णु दामोदर शास्त्री का रामायणकालीन आर्य संस्कृति निबन्ध माला (प्रथम भाग) कार्य भी सामने आया। सन् १९४० ई० एम० बी० आयंगर की 'दि पोट्री आफ वाल्मीकि' रामायण के श्रेष्ठ स्थलों की आलोचना के रूप में प्रस्तुत की गई। सन् १९६५ ई० में बी० खान ने, 'दि कन्सेप्ट आफ धर्म इन वाल्मीकि रामायण' लिख कर रामायण में उल्लिखित धर्म की विचारधारा को प्रस्तुत किया। इसी प्रकार एन० आर० नावलेकर ने 'ए न्यू एप्रोच टू द रामायण' लिखकर रामायण में वर्णित कथा के प्रति अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। डा० विद्या मिश्रा ने, 'वाल्मीकि रामायण एवं रामचरित मानस का तुलनात्मक अध्ययन' भी प्रकाश में आया। सन् १९६७ ई० में एस० एन० व्यास की 'इण्डिया इन द रामायण एज' प्रकाशित हुई एवं अभी हाल ही में सन् १९७१ ई० रामाश्रय शर्मा द्वारा

१. रामायण कालीन संस्कृति, पृ० ५

'वाल्मीकि रामायण की सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति को स्पष्ट करने के लिए 'ए सोश्यो पोलिटिकल स्टडी आफ दी वाल्मीकि रामायण' प्रस्तुत किया गया।

अनेन प्रकारेण वाल्मीकि रामायण पर बहुलता से आलोचनात्मक कार्य किया गया एवं किया जा रहा है। इस अथाह अमृत सागर में विद्वान गोता लगाते हुए भी नहीं थकते तथा कुछ न कुछ प्राप्ति करके उसे समाज के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार वाल्मीकि रामायण का महत्व स्पष्ट ही है।

रामायण का उपयोग—

किसी कृति की सार्थकता उसके उपयोग में है। कला कला के लिये ही नहीं होती अपितु उसे जीवन के लिये ही उपयोगी होना चाहिये। जैसा कि डा० रामकुमार वर्मा ने उल्लेख किया है कि 'यह सर्व मान्य है कि साहित्य राष्ट्र की तपस्या है, वह जीवन के अनन्त प्रयोगों की सिद्धि है और समस्त सम्वेदनाओं का साररूप है। वह केवल 'आज' का मनोरंजन ही नहीं है, परन्तु 'कल' का सम्बल भी है। अत: उसमें जीवन का ऐसा परिष्करण या उर्जस्वीकरण है, जिससे मनुष्य को भविष्य में बल मिल सके।'[1]

अस्तु, मनुष्य या समाज के उपयोग की दृष्टि के रामायण पर जब दृष्टिपात किया जाता है तो यह कृति नवरसों के रसास्वादन से आनन्दित करने के अतिरिक्त मनुष्य के जीवन के चार प्रमुख अभीष्ट लक्ष्यों, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति की साधिका, आदर्श समाज की स्थापना, शुभाशुभ का परिज्ञान कराने वाली श्रेष्ठ शिक्षिका और सत्कर्मों को करने की प्रेरणा का स्रोत, राजा को अपने कर्तव्यों के प्रति सचेत रखने की अधिकारिणी,[2] सामान्य मनुष्य से लेकर राजा को भी परहित और लोकहित की प्रेरणा

---

१. साहित्य शास्त्र (डा० रामकुमार वर्मा) पृ० ३

२. वा० रा० २।१००।४६

देने वाली एवं आदर्श राज्य की स्थापना के लिये उचित निर्देशिका सिद्ध होती है। आसुरी प्रवृत्तियों से बलात् सुप्रवृत्तियों की ओर आकर्षित करने वाली और रामराज्य के आदर्शों[1] का उल्लेख करने वाली यह कृति इसीलिये पुनः हम भारतीयों के हृदय को रामराज्य की स्थापना के लिये प्रेरित करती है। अनेन प्रकारेण वाल्मीकि रामायण आदि काल से भारतीय समाज के लिये उपयोगी रही है एवं उपयोगी रहेगी।

---

१. वा० रा० १।१।८८ एवं वा० रा० १।१।९१

द्वितीय अध्याय

रामायण में राज्यों का संगठन

राज्य की परिभाषा—

राज्य (राज्ञोभाव: कर्मवा) राजन् में यत् प्रत्यय से बनता है। राज्य का अभिप्राय राजा के क्षेत्र से है। प्राचीन भारतीय राज-शास्त्रियों में राज्य के स्वरूप को प्रतिपादित करते हुए इसकी सप्तांग में कल्पना की है। राज्य प्रशासन की आवश्यक सामग्री के ये सात राज्यांग इस प्रकार हैं—स्वामी, अमात्य, सुहृत, कोश, राष्ट्र, दुर्ग (पुर) और बल (सेना)।

कौटिल्य के अनुसार राज्य के दो तत्व, जनता एवं भूमि है।[1] आधुनिक राजनीति विशारदों द्वारा राज्य के चार तत्व माने गये हैं—निश्चित भू-भाग, जनसंख्या, सरकार (पदाधिकारी-व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका) तथा सम्प्रभुता (स्वयं की सत्ता)। इस प्रकार राज्य निश्चित भू-भाग से युक्त क्षेत्र है जिसके निवासी परस्पर एक दूसरे से विधियों द्वारा सम्बन्धित हो। इसमें सुसंगठित शासनतन्त्र होता है एवं अन्य राज्यों से अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध स्थापित करने के अधिकार होते हैं।

राज्य का उद्भव—

आदि काल में मनुष्य जंगली था। धीरे-धीरे वह मिल कर एक स्थान पर रहने लगा। सर्वप्रथम वह परिवार या कुलों के रूप में एक स्थान पर रहा होगा। फिर कई परिवार एक साथ समूह बना कर रहने लगे होंगे, ताकि हिंसक पशुओं या शत्रुओं से सुरक्षित

---

१. अर्थशास्त्र १३-४

रह सके और एक दूसरे की सहायता की जा सके। यह कई परिवार जब एक साथ मिल कर रहे होंगे तो इन्हें ग्राम का रूप मिला होगा। इस प्रकार अलग-अलग कई ग्राम राज्य के उद्भव का कारण बने होंगे। इसका संचालन किसी वर्ग विशेष या व्यक्ति विशेष के हाथ में रहा होगा, ताकि अव्यवस्था और असंयतता उत्पन्न न हो। अराजकता से बचने के लिये राज्य की उत्पत्ति हुई होगी। जैसा कि रामायण में उल्लिखित है कि बिना राजा के देश में किसी की कोई वस्तु अपनी नहीं रहती। मछलियों की तरह सब लोग परस्पर एक दूसरे को अपना ग्रास बनाते हैं।[1]

रामायण, महाभारत और दीर्घनिकाय में राज्य की उत्पत्ति के विषय में उल्लेख है। रामायण में उल्लेख है कि सतयुग में मानवीय प्रजा बिना राजा के थी।[2] प्रजाजनों ने पाप कृत्यों से बचने के लिये ब्रह्मा से किसी राजा को बनाने के लिए प्रार्थना की।[3] क्योंकि प्रजाजन जानते थे कि राजा के बिना व्यक्ति का स्थायित्व असम्भव है।[4] इस पर ब्रह्मा ने इन्द्रादि लोकपालों के तेज के अंशों से युक्त एक क्षुप नामक पुरुष उत्पन्न करके—उसे पृथ्वी का राजा बनाया।[5] इस प्रकार राजा के बनने से राज्य का प्रादुर्भाव हुआ।

राज्योत्पत्ति के विषय में महाभारत में आया है[6] कि कृतियुग के आदि में न राज्य था न राजा, न दण्ड था और न दण्ड देने वाला। धर्म से प्रजा परस्पर रक्षा करती थी। लेकिन यह स्थिति सदैव न रही। लोग धर्म से विमुख हुए। लोगों में स्वार्थ उत्पन्न हुआ।

---

१. वा० रा० २।६७।३१
२. वही, ७।७६।३६
३. वही, ७।७६।३६
४. वही
५. वही, ७।७६।४२, ४३, ४४
६. महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय ५८।१२, १४, १६

मत्स्य न्याय शुरू हुआ। इस कठिन अवस्था को देखकर सब देवता ब्रह्मा के पास गये। उनकी प्रार्थना सुनकर ब्रह्मदेव ने संसार में धर्माचरण प्रतिष्ठित कराने के लिये 'विरजा' नामक एक मानस पुत्र को उत्पन्न किया। 'विरजा' को राजा बनाया। प्रजा उसका आदेश पालन करने लगी। इस प्रकार राज्य और राजा की उत्पत्ति हुई। इसमें प्रजा की भी सहमति थी। प्रजा ने एक व्यक्ति विशेष को अपने ऊपर राज्य करने का अधिकार इसी शर्त पर दिया था कि वह धर्म और न्याय के साथ शासन करते हुए असाधु का विनाश और साधु का परित्राण करेगा।

इसी प्रकार दीर्घनिकाय के अनुसार एक व्यक्ति जिसका नाम महाजनसम्भत् था, जो कि बुद्धिमान था, लोगों ने उससे प्रार्थना की कि वह राजा बने और विनाश को दूर करे। उसने यह स्वीकार किया और लोगों ने उसे राजा के रूप में स्वीकार किया। इस प्रकार राज्य का प्रारम्भ हुआ।[1]

वस्तुतः समाज की उन्नति और उसका अस्तित्व राज्य के संगठन पर ही निर्भर है। मनुष्य की प्रवृत्तियाँ स्वभावतः बुराई की ओर जाती हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर आदि मनुष्य में स्वभावतः ही होते हैं। इन प्रवृत्तियों के संयमन के लिये उचित बन्धन अपेक्षित है। इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के दैहिक, दैविक और भौतिक कष्ट भी मनुष्य पर आते हैं, उनके निवारणार्थ प्रारम्भ में मनुष्य को एक व्यवस्था या संगठन की आवश्यकता हुई और राज्य का उद्भव हुआ। इस प्रकार मानवता के विकास और सामाजिक व्यवस्था के लिये एक संगठन बना और वह राज्य कहलाया।

रामायण में राज्यों के प्रकार या शासन पद्धतियाँ—

वैदिक साहित्य से ही विभिन्न शासन पद्धतियों का परिचय

---

१. दीर्घनिकाय, तृतीय भाग पृ० ८४।९६।

मिलता है। ऋग्वेद में ही राज्य के विभिन्न प्रकार निर्दिष्ट है। राज्य के द्वारा व्यवस्थित रूप ग्रहण करने पर राज्य शक्ति का रूप सामने आता है। वैदिक साहित्य में प्रयुक्त एक राज (ऋग्वेद ८-३७-३) अधिराज (अथर्ववेद ६-९८-२), समाज (ऋग्वेद १-२५-१०), एवं स्वराज्य (ऋग्वेद २-२-१) आदि से स्पष्ट प्रतीत होता है कि वैदिक काल में राज्य शक्ति की स्थापना और उनमें स्तर भेद हो चुका था।[1] ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार राज्य, भोज्य, वैराग्य और साम्राज्य देश के विभिन्न भागों में स्थापित थे।[2] लेकिन भण्डारकर ने इन शब्दों का प्रयोग विभिन्न शासन प्रणालियों के स्थान पर उपाधियों के रूप में माना है।[3] लेकिन अन्य विद्वानों, जैसे पी० एन० बनर्जी ने इन्हें शासन प्रणालियाँ ही माना है[4]। इस प्रकार वैदिक युग से ही राज्यों के विभिन्न प्रकार या विभिन्न शासन पद्धतियों, विशेष रूप से गणतन्त्रात्मक और राजतन्त्रात्मक एवं अल्पजन शासित शासन पद्धतियों का परिचय मिलता है।

वाल्मीकि रामायण में राजतन्त्रात्मक शासन प्रणाली का ही उल्लेख है। रामायण में यह राजतन्त्रात्मक शासन प्रणाली दो प्रकार की कही जा सकती है, एक संवैधानिक राजतन्त्र या प्रजातंत्रात्मक राजतन्त्र या मर्यादितराजतन्त्र और दूसरी राजतन्त्रात्मक शासन पद्धति। राजा दशरथ या राजा राम का राज्य संवैधानिक राजतन्त्र था और रावण का राज्य राजतन्त्रात्मक राजतन्त्र कहा जा सकता है। रामायण में सम्राट्, सर्वराज, चक्रवर्ति, अधिराज आदि का प्रयोग है लेकिन ये सभी राजा दशरथ एवं उनके पुत्रों की उपाधियों के लिए प्रयुक्त हैं। यह राजतन्त्र शासन पद्धति के ही

---

१. प्राचीन भारत में राज्य और न्यायपालिका, पृ० १०
२. ऐतरेय ब्राह्मण ८।३।१४
३. सम आस्पैक्ट आफ एण्श्यन्ट हिन्दू पालिटी, पृ० ९१।९५
४. उद्धृत प्राचीन भारत में राज्य और न्यायपालिका, पृ० ४७

द्योतक हैं। इस प्रकार रामायण में मूलतः राजतन्त्रात्मक शासन पद्धति का ही उल्लेख है।

रामायण में राज्यों का संगठन—

मनुष्य के संगठित जीवन बिताने से राजनीतिक संगठन का प्रारम्भ होता है। इस राजनीतिक संगठन का स्वरूप वैदिक काल से ही स्पष्ट होता है। उस समय कुल या परिवार राजनीतिक इकाई का स्वरूप था। तत्पश्चात् कई कुलों से गोत्र बना, गोत्र से जन, जन से विश तथा विशों का समन्वित रूप राष्ट्र था।[१]

रामायण के समय तक राजनीतिक संगठन का रूप स्पष्ट हो चुका था राज्य की सीमा निर्धारित हो चुकी थी। इसमें राज्य राष्ट्र, राज्य, जनपद और विषय के रूप में सामने आया। रामायण में राज्य के लिए जनपद,[२] विषय,[३] देश,[४] एवं राज्य[५] का उल्लेख है। पुरी शब्द भी कहीं-कहीं पर राज्य के अर्थ में प्रयुक्त है।[६] सम्भवतः जनपद विषय एवं देश भौगोलिक इकाई के रूप में और राज्य राजनीतिक इकाई के रूप में प्रयुक्त है। जनपद और राष्ट्र सम्पूर्ण देश के लिए प्रयुक्त है।[७] जनपद या राष्ट्र शब्द का प्रयोग राजधानी के अतिरिक्त शेष देश के लिए भी रामायण में प्रयुक्त हुआ है।[८] जनपद या राष्ट्र संवास,[९] ग्राम,[१०] महाग्राम,[११] घोष,[१२]

---

१. हिन्दू पालिटी, पृ० १२
२. वा० रा० १।५।५
३. वही १।६।२२, १।७।१०, १।१०।२६
४. वही १।५।१४ एवं २।६८।१३
५. वही २।२।४, २।५०।११, २।६७।६ एवं २।६८।६ आदि
६. वही १।३२।५
७. वही १।५।५ एवं २।५०।४
८. वही २।३४।५५
९. वही २।४६।३
१०. वही २।४६।३
११. वही ४।४०।२२
१२. वही २।८३।१५

पटटन,[1] पुर,[2] या नगर[3] से मिलकर बना। रामायण में राष्ट्र की सबसे छोटी इकाई ग्राम प्रतीत होती है। ग्राम, महाग्राम, घोष, पटटन, पर और अतिरिक्त भूमि-पर्वत, वन,[4] खाने,[5] दुर्ग आदि सभी का संगठित रूप राष्ट्र के स्वरूप को स्पष्ट करता है। इसके अतिरिक्त एक स्वतन्त्र राष्ट के अन्तर्गत अधीनराज्य भी होते थे।[6] रामायण में यही राज्यों का स्वरूप था।

रामायणानुसार राज्य के कार्य और उद्देश्य

राज्य मानवीय संस्था है। व्यक्ति के आवश्यक कार्यों की पूर्ति और व्यक्ति तथा राज्य के हितों के लिये राज्य की आवश्यकता है। जैसा कि पूर्व निर्दिष्ट है, शरीरांगों की तरह राज्य के दो सप्तांग होते हैं। राज्य प्रशासन के आवश्यक तत्त्व इन राज्यांगों के द्वारा हो राज्य के समस्त कार्य क्रियान्वित होते हैं। इसी लिए कौटिल्य ने इन्हें राजसम्पद कहा है।[7] परस्पर उपकारी इन सप्तांगों से ही राज्य का निर्माण होता है।[8] इन्हीं के मिलकर कार्य करने पर ही राज्य का संगठन, उसकी दृढ़ता एवं स्थायित्व निर्भर है। इन सप्त प्रकृतियों के सम्यक कार्य करने से ही राज्य का विकास और उत्कर्ष होता है।

वाल्मीकि रामायण के अनुसार राज्य के इन सप्तांगों के प्रति अप्रमत रहने पर ही राज्य की रक्षा की जा सकती है।[9] इन पर

---

१. वा० रा० ४।४०।२४
२. वही १।३।३६ एवं १।१८।४
३. वही १।११।८ एवं १।११।२४
४. वही २।३४।५५
५. वही २।१००।४६
६. वही १।५।१४
७. अरिबीजाः प्रकृतयः सप्तताः स्वगणोदयाः, उक्ताः प्रत्यंग भूतास्ताः प्रकृता राजसम्पदः। अर्थशास्त्र ६।१।१
८. परस्परो उपकारोदं सप्तांगं राज्यमुच्यते। कामन्दकनीतिसार— अध्याय ४
९. वा० रा० २।५२।७२

द्योतक हैं। इस प्रकार रामायण में मूलतः राजतन्त्रात्मक शासन पद्धति का ही उल्लेख है।

रामायण में राज्यों का संगठन—

मनुष्य के संगठित जीवन बिताने से राजनीतिक संगठन का प्रारम्भ होता है। इस राजनीतिक संगठन का स्वरूप वैदिक काल से ही स्पष्ट होता है। उस समय कुल या परिवार राजनीतिक इकाई का स्वरूप था। तत्पश्चात् कई कुलों से गोत्र बना, गोत्र से जन, जन से विश तथा विशों का समन्वित रूप राष्ट्र था।[१]

रामायण के समय तक राजनीतिक संगठन का रूप स्पष्ट हो चुका था राज्य की सीमा निर्धारित हो चुकी थी। इसमें राज्य राष्ट्र, राज्य, जनपद और विषय के रूप में सामने आया। रामायण में राज्य के लिए जनपद,[२] विषय,[३] देश,[४] एवं राज्य[५] का उल्लेख है। पुरी शब्द भी कहीं-कहीं पर राज्य के अर्थ में प्रयुक्त है।[६] सम्भवतः जनपद विषय एवं देश भौगोलिक इकाई के रूप में और राज्य राजनीतिक इकाई के रूप में प्रयुक्त है। जनपद और राष्ट्र सम्पूर्ण देश के लिए प्रयुक्त है।[७] जनपद या राष्ट्र शब्द का प्रयोग राजधानी के अतिरिक्त शेष देश के लिए भी रामायण में प्रयुक्त हुआ है।[८] जनपद या राष्ट्र संवास,[९] ग्राम,[१०] महाग्राम,[११] घोष,[१२]

१. हिन्दू पालिटी, पृ० १२
२. वा० रा० १।५।५
३. वही १।६।२२, १।७।१०, १।१०।२६
४. वही १।५।१४ एवं २।६८।१३
५. वही २।२।४, २।५०।११, २।६७।६ एवं २।६८।६ आदि
६. वही १।३२।५
७. वही १।५।५ एवं २।५०।४
८. वही २।३४।५५
९. वही २।४६।३
१०. वही २।४६।३
११. वही ४।४०।२२
१२. वही २।८३।१५

पटटन,[1] पुर,[2] या नगर[3] से मिलकर बना। रामायण में राष्ट्र की सबसे छोटी इकाई ग्राम प्रतीत होती है। ग्राम, महाग्राम, घोष, पटटन, पर और अतिरिक्त भूमि-पर्वत, वन,[4] खाने,[5] दुर्ग आदि सभी का संगठित रूप राष्ट्र के स्वरूप को स्पष्ट करता है। इसके अतिरिक्त एक स्वतन्त्र राष्ट के अन्तर्गत अधीनराज्य भी होते थे।[6] रामायण में यही राज्यों का स्वरूप था।

रामायणानुसार राज्य के कार्य और उद्देश्य

राज्य मानवीय संस्था है। व्यक्ति के आवश्यक कार्यों की पूर्ति और व्यक्ति तथा राज्य के हितों के लिये राज्य की आवश्यकता है। जैसा कि पूर्व निर्दिष्ट है, शरीरांगों की तरह राज्य के दो सप्तांग होते हैं। राज्य प्रशासन के आवश्यक तत्व इन राज्यांगों के द्वारा हो राज्य के समस्त कार्य क्रियान्वित होते हैं। इसी लिए कौटिल्य ने इन्हें राजसम्पद कहा है।[7] परस्पर उपकारी इन सप्तांगों से ही राज्य का निर्माण होता है।[8] इन्हीं के मिलकर कार्य करने पर ही राज्य का संगठन, उसकी दृढ़ता एवं स्थायित्व निर्भर है। इन सप्त प्रकृतियों के सम्यक कार्य करने से ही राज्य का विकास और उत्कर्ष होता है।

वाल्मीकि रामायण के अनुसार राज्य के इन सप्तांगों के प्रति अप्रमत रहने पर ही राज्य की रक्षा की जा सकती है।[9] इन पर

---

१. वा० रा० ४।४०।२४
२. वही १।३।३६ एवं १।१८।४
३. वही १।११।९ एवं १।११।२४
४. वही २।३४।५५
५. वही २।१००।४६
६. वही १।५।१४
७. अरिवीजाः प्रकृतयः सप्तताः स्वगणोदयाः, उक्ताः प्रत्यंग भूतास्ताः प्रकृता राजसम्पदः। अर्थशास्त्र ६।१।१
८. परस्परो उपकारोदं सप्तांगं राज्यमुच्यते। कामन्दकनीतिसार—अध्याय ४
९. वा० रा० २।५२।७२

समान दृष्टि रखने पर ही राज्य का स्थायित्व रहता है।[1] वस्तुतः जब यह राज्यांग परस्पर उपकारी भाव एवं समान भाव से कार्य करते हैं तो राज्य का स्थायित्व सुदृढ़ होता है।

राज्य धर्म और अर्थ एवं काम का मूल माना जाता है।[2] अतः राज्य के जनता के प्रति धर्म, अर्थ और काम सम्बन्धी कार्य होते हैं। प्रजार्थ धर्म, अर्थ और काम के फल के साधन के लिये राज्य के अंगों द्वारा सम्पादित होने वाले कार्य दो श्रेणियों में विभक्त किये जा सकते हैं—आन्तरिक कार्य और बाह्य कार्य।

राज्य के आन्तरिक कार्यों में प्रजा के जीवन और सम्पत्ति की रक्षा, सामाजिक व्यवस्था और लोक हित (शिक्षा का प्रसार, मार्ग निर्माण, कृषि कार्य का विकास आदि) एवं लोकानुरंजन करना आदि का अन्तरभाव है। राज्य के बाह्य कार्यों के अन्तर्गत बाह्य शत्रुओं से रक्षा करना एवं राज्य की वृद्धि करना आदि का समावेष होता है। ताकि राज्य का संगठन क्षत, विक्षतन हो और उसका सतत्व विकास एवं उत्कष हो।

रामायण में राज्य लोककल्याणार्थ एक संस्था के रूप में वर्णित है।[3] इसे प्रजा का योग क्षेम कारक कहा गया है।[4] इसमें राज्य प्रजा के सम्पूर्ण क्रिया-कलापों के साधक के रूप में वर्णित है। रामायण के अनुसार राज्य प्रजा को दुर्भिक्ष से बचाये,[5] दैविक, भौतिक, और देहिकतापों से रक्षा करने में समर्थ हो और नगर एवं राष्ट्र को धन धान्य से पूर्ण रखे,[6] सभी वर्णों को अपने अपने

---

१. वा० रा० ४।२६।११
२. धर्माथकामपलायराज्यायनमः। नीतिवाक्यामृतमं। पृ० ७
३. वा० रा० १।१।८६, ६०, ६३
४. वही २।६७।३४
५. वही १।१।८८
६. वही १।१।६०, ६१, ६२, ६३

कर्तव्य से लगावे,[१] राज्य का वर्धन करे,[२] समस्त प्रजा को धर्मशील एवं सुसंयत बनाये,[३] कामी, कदर्य और नृशंसों को आश्रय न दे,[४] धर्मात्मा, सत्यवान एवं शीलवान को प्रश्रय दे,[५] चौर्यवृत्ति को न पनपने दे,[६] झूठ, अशिक्षित एवं परनिन्दक को आश्रय न दे,[७] सभी में राष्ट्रीयता का भाव उत्पन्न कराये,[८] प्रजाजनों को गुण सम्पन्न बनाये।[९] इस प्रकार राज्य अपनी सब प्रकार से संवृद्धि करे।[१०] इसके अतिरिक्त लोक कल्याण के कार्य भी राज्य द्वारा करणीय बताये गये हैं। रामायणानुसार सिंचाई की व्यवस्था,[११] सार्वजनिक स्थलों का निर्माण,[१२] नूरतनशालादि की व्यवस्था, राजपथों पर प्रकाश की व्यवस्था,[१३] राजमार्गों की व्यवस्था,[१४] एवं हर प्रकार की सुरक्षात्मक व्यवस्था[१५] करना राज्य का कर्तव्य है। इसके अतिरिक्त धन का दुरुपयोग करने से प्रजा को बचाना,[१६] प्रजा को सदाचरण के लिये प्रेरित करना तथा व्यवहार और न्याय के प्रति जागरुक रहना आदि राज्य के कर्तव्यों के रूप में कृति में

---

१. वा० रा० १।१।६३ एवं १।६।१६
२. वही १।५।६
३. वही १।६।६
४. वही १।६।८
५. वही १।६।६
६. वही १।६।१२
७. वही १।६।१४
८. वही १।६।१६
९. वही १।६।१७-१८
१०. वही १।६।२८
११. वही २।१००।४४, ४५, ४६
१२. वही २।६।११
१३. वही २।६।१८
१४. वही १।५।८
१५. वही १।५।१०, १३
१६. वही २।१००।४७, ४८, ५५

उल्लिखित है। रामायण में असहाय, अनाथ और वृद्धों की उचित व्यवस्था करना तथा निर्धन को धन देना, दान करना दुर्भिक्ष के समय सहायता करना आदि भी राज्यों के कर्तव्यों के रूप में वर्णित है।

राज्य के बाह्य कार्यों के रूप में राज्य की शान्ति को भंग करने के कारणों का निवारण करना राज्य का प्रधान कर्तव्य था इसके लिये राज्य द्वारा बाह्य शत्रुओं के प्रति साम, दाम, भेद और दण्ड इन चार नीतियों तथा षड्गुणों, संधि, विग्रह, आसन, यान, संश्रय और द्वैधीभाव का आश्रय लिया जाता था। इसके अतिरिक्त राज्य को समीपस्थ दूरस्थ राज्यों से मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों की स्थापना करना भी अपेक्षित था। राज्य की समृद्धि की वृद्धि के लिये राज्य का विस्तार करना भी, रामायण में, राज्य के बाह्य कार्य के रूप में वर्णित है। इस प्रकार राज्य को हर प्रकार की कठिन स्थिति से बचाने के लिए और उसके उत्कर्ष शान्ति, विकास, आदि के हेतु राज्य के कार्यों का रामायण में विस्तार से वर्णन है।

अनेन प्रकारेण रामायण में राज्य समाज का आधार और उसके कल्याण का मुख्य साधन समझा जाता था। अतः उसके कार्य हितकारी एवं विकासात्मक थे। उसके कार्यों में समाज के कल्याण की भावना का नियोजन था। राज्य के कार्यों का संचालन केवल राजा ही या मन्त्री ही नहीं करता था अपितु समस्त कर्मचारी, विभिन्न संस्थाओं के प्रमुख, पौरजनपद, निगम आदि भी राज्य के कार्यों में सहयोग देते थे।[1] इस प्रकार राज्य की कार्यवाही राजा, मंत्रियों और लोकप्रिय संस्थाओं के सक्रिय सहयोग से होती थी।

राज्य का उद्देश्य—

राज्य युग का निर्माता कहा गया है।[2] इसका लक्ष्य राज्य का

---

१. वा० रा० २।२।१ एवं वा० रा० २।२।१९

२. महाभारत शान्तिपर्व, ६३।२५

सर्वाङ्गीण विकास करना है। रामायण के अनुसार राज्य का उद्देश्य राज्य की भौतिक उन्नति के साथ-साथ प्रजाजनों में आध्यात्मिक भावना का उदय करना भी था। इस प्रकार राज्य में शान्ति, सुरक्षा, व्यवस्था एवं न्याय की स्थापना करना तो राज्य का लक्ष्य ही था साथ ही लोगों में धर्म अर्थ और काम तथा मोक्ष की सिद्धि के लिए आस्तिकता की भावना को उदय करना भी इसका उद्देश्य था।[1] एवं उनमें धार्मिक वृत्ति को उत्पन्न करना भी राज्य का लक्ष्य था।[2] इस प्रकार राज्य का उद्देश्य प्रजा की भौतिक उन्नति के साथ-साथ नैतिक उन्नति करना भी था। राज्य प्रजा के धर्म, अर्थ एवं काम का सम्वर्धन करने को उद्यत रहता था। राज्य की सर्वोच्च शक्ति राजा भी त्रिवर्ग की प्राप्ति में तत्पर रहता था।[3] धर्म का तात्पर्य उस समय किसी सम्प्रदाय से न था अपितु धर्म के अन्तर्गत नैतिकता, सदाचार, सत्यवादिता, परोपकार, सन्तोष, निर्लोभता आदि समाहित थे।[4] इस प्रकार सत्य, सदाचार, नैतिकता आदि गुणों से समन्वित धर्म के अनुसार अपने कर्तव्यों का पालन करता हुआ तत्कालीन समाज सम्पन्नता को प्राप्त था। राज्य प्रजा को धर्म पूर्वक अर्थ का चिन्तन कराता है। उसे धर्मेण अर्जित अर्थ के उचित उपभोग से सुख भोगने के लिए प्रेरित करता था तथा उसकी कामना की तृप्ति या सुख का सम्वर्धन संगीत, नृत्य, चित्रकला, स्थापत्यकला, आदि कलाओं के पोषण एवं संस्कृति के प्रचार व प्रसार के माध्यम से करता था। राज्य प्रजा की विघ्न बाधाओं से रक्षा करता हुआ धर्म, अर्थ और काम का सही उपभोग करता हुआ उनकी उन्नति करने में तत्पर रहता था। समाज में सभी को समान उन्नति के अवसर प्रदान किए गये थे।

---

१. वा० रा० १।६।८
२. वा० रा० १।६।६
३. वा० रा० १।६।५
४. वा० रा० १।६।६,९

सभी वर्णों को समान अधिकार थे। सभी स्वतन्त्र थे लेकिन स्वच्छन्दता से दूर थे। सभी प्रजाजन धर्म, अर्थ और काम के सम्यक् उपभोग से अपने इहलोक और परलोक के मार्ग को प्रशस्त करते हुए अपने को मोक्ष या उच्च पद का अधिकारी समझते थे।

इस प्रकार प्रजाजनों में स्वतन्त्रता एवं समानता की भावना का उदय करके, उन्हें सर्वतः सुरक्षित करके शान्तिपूर्ण एवं सुव्यवस्थित जीवन बिताने के लिए प्रेरित करके,[1] सभी लोगों की ज्ञानेषणा और धर्मेषणा की तृप्ति करके,[2] उनकी भौतिक उन्नति करके और उनमें नैतिक और आध्यात्मिक भावना को उत्पन्न करके उनका सर्वाङ्गीण विकास करना ही राज्य का परम उद्देश्य था।

रामायण का एक तन्त्र और उसका रूप—

रामायण में एकतन्त्र और राजतन्त्र राज्यों का वर्णन है। इनमें राजा ही सर्वोच्च सत्ताधारी था। लेकिन वह अपनी शक्तियों का राज्य के कार्यों में स्वच्छन्दता पूर्वक उपयोग नहीं कर सकता था। उसके लिए उचित प्रतिबन्ध थे। दशरथ, राम, रावण, बालि, सुग्रीव आदि सभी राजाओं के लिए मंत्रणा, मार्गदर्शन देने के लिए एवं उन्हें स्वच्छन्द बनने से रोकने के लिए मन्त्रिपरिषदें थी। राजा सर्वोच्च सत्ताधारी होते हुए भी प्रजा के सेवक के रूप में था।[3] उसकी मनमानी तो दूर रही, उसे प्रजा के हित के लिए अपने सुखों और अभीष्ठ का भी परित्याग करना पड़ता था। राजा दशरथ ने लोक कल्याण के लिए अपने प्रिय बालकों राम और लक्ष्मण को यज्ञ की रक्षार्थ विश्वामित्र के लिए सौंप दिया था।[4] राजा राम ने भी लोकरंजनार्थ अपनी प्रिय महिषी सीता का परित्याग कर

---

१. वा० रा० १।१।९०, ९३ एवं १।६।६ आदि
२. वही १।६।१४
३. वही ७।७४।३१
४. वही १।२२।३

दिया था।[१] रामायण में राजा को देश की सुख समृद्धि एवं विपत्ति का उत्तरदायी कहा गया है।[२] राजकार्यों में राजा की सहायतार्थ मन्त्रिपरिषद् के अतिरिक्त पौरजनपद, निगम आदि संस्थायें भी थी। अतः रामायण में एक तन्त्र राज्य संवैधानिक राजतन्त्र के अर्थ का द्योतक है, जैसाकि आगे शासन व्यवस्था एवं समाज व्यवस्था के वर्णन से स्पष्ट हो जायेगा।

रामायण में राज्यों का वर्णन—

रामायण काल में राज्य छोटे छोटे थे। बड़े बड़े नगर ही राज्य बन गए थे। हाँ इतना अवश्य था कि उनके आस पास के छोटे-छोटे गाँव भी उनमें सम्मिलित थे, जैसे कि अयोध्या का समीपस्थ नन्दीग्राम भी कौशल राज्य की सीमा के अन्तर्गत था।

उत्तरी भारत में आर्यों के राज्य थे। इनका क्षेत्र हिमालय और विन्ध्य पर्वत के मध्य भाग का भूभाग था। इस भूभाग में मिथिला, काशी, कौशल, केकय, सिन्धु, सौवीर, सौराष्ट्र, विशाला, शंकाशी, अंग, बंग, मगध, मत्स्य, आदि स्वतन्त्र राज्य थे। कौशल राज्य ही उत्तर भारत में सबसे बड़ा राज्य था लेकिन यह बहुत बड़ा न था। वन जाते समय राम ने रथ में चलकर एक ही दिन में इसकी सीमा पार कर ली थी।[३] कौशल राज्य के निकटवर्ती प्रान्त या भूभाग के सामन्त राजा इसके अधीन रहते थे। अयोध्या में सामान्त राजाओं का जमाव रहता था।[४] विश्वामित्र के इस कथन से, कि क्या आपके (दशरथ के) सामन्त राजा और शत्रुगण आपके वश में हैं,[५] स्पष्ट होता है कि राजा दशरथ के अधीन अनेक सामन्त राजा थे।

---

१. वा० रा० ७ सर्ग ४५, ४६
२. वही १।६।८, ६
३. वही २।५०।१०
४. वही १।५।१४
५. वही १।१८।४७

राजा दशरथ स्वयं भी अपने को समस्त वसुन्धरा का स्वामी मानते थे।[1] इसी प्रकार राम ने भी बालि से कहा था कि, उसका राज्य अयोध्या के अन्तर्गत आता है उन्होंने उसकी भूमि को इक्ष्वाकु राजाओं की भूमि कहा।[2] लेकिन रामायण में यह स्पष्ट नहीं है कि बाली कौशल राज्य के अधीन था।

रामायण के उद्धरणों से यह अवश्य ही स्पष्ट होता है कि अपने पड़ोसी राज्यों पर कौशल नरेश दशरथ का अधिकार रहा होगा। राजा दशरथ ने इस सन्दर्भ में केकई से कहा था कि द्राविण, सिन्धु, सौवीर, सौराष्ट्र, दक्षिणापथ, बंगाल, अंग, मगध, मत्स्य, काशी, और कौशल ये सब देश, जहाँ तरह तरह की वस्तुऐं उत्पन्न होती हैं और जो धनधान्य एवं पशुओं से भरे पूरे हैं, हमारे अधीन हैं।[3] राजा दशरथ का यह कथन यह संकेत करता है कि उनके अधीन अनेकों राज्य रहे होंगे। इसलिए वे नतसामन्तः कहे गए हैं।

विन्ध्य पर्वत के दक्षिण में वानरों और राक्षसों के राज्य थे। इस भू-भाग में विन्ध्य और शिवाला पर्वत के मध्य में दण्डक वन था।[4] यहाँ कुछ ही सन्यासियों को छोड़कर राक्षसों का निवास था। इसी दण्डक वन में जन स्थान था, जो कि राक्षसों की बाहरी सीमा थी। दण्डकारण्य के दक्षिण में किष्किन्धा राज्य एवं अन्य राज्यों आन्ध्र, चोल, पाण्य और केरल एवं लंका द्वीप था।

रामायण में प्रमुख रूप से कौशल, किष्किन्धा और लंका राज्यों का ही विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है। रामायण में उल्लिखित राज्यों का विवरण निम्नांकित है—

---

१. वा० रा० २।१०।३८
२. वही ४।१८।६
३. वही २।१०।३८, ३९ एवं २।१०।३९, ४०
४. वही ७।७९।१६ एवं ७।८१।१९

कौसल जनपद—

यह आधुनिक अवध प्रान्त है। रामायण में कौसल जनपद को विस्तृत, महान, और समृद्धशाली कहा गया है। इसकी स्थिति सरयू नदी के किनारे निर्दिष्ट है।[1] इसकी राजधानी मनु के द्वारा बसाई गई अयोध्या नगरी थी।[2] आयोध्या अपनी प्राचीनता के कारण प्रसिद्ध है। इसका वर्णन अथर्व संहिता में विस्तृत रूप में आया है। इस संहिता में इस पुर का कई मन्त्रों में महत्व दर्शाया गया है।[3] शिव संहिता में यह अनेक नामों नन्दिनी, सत्या, साकेत, कौसला, राजधानी, ब्रह्मपुरी और अपराजिता से युक्त अष्टदल पद्म के आकार की, नवद्वारों से युक्त और धर्म के धनी लोगों की नगरी कही गई है।[4] इस संहिता में यह लीला भूमि के रूप में उल्लेख की गई है।

इसी प्रकार वसिष्ठसंहिता[5] और वृहद् ब्रह्म संहिता[6] आदि में अयोध्या का महत्व उल्लिखित है। वाल्मीकि ने इसकी स्थिति, स्थायित्व, समृद्धि और शोभा का वर्णन रामायण में विशद रूप से किया है।[7] कौशल जनपद में स्थित अयोध्यापुरी का वर्णन कवि ने विस्तार से किया है। इसके अतिरिक्त इसी जनपद में स्थित नन्दिग्राम का भी उल्लेख किया गया है। यह अयोध्या से एक कोस की दूरी पर स्थित रमणीय ग्राम था।[8] भरत ने राम के वनवास जाने पर नन्दिग्राम से अवधि के शासन का संचालन किया था।[9]

---

१. वा० रा० १।५।५
२. वही १।५।६
३. अथर्व० १०।२।२७ से ३३ मन्त्र
४. शिवसंहिता, पटल, ५ अध्याय २०
५. वसिष्ठ संहिता २६
६. वृहद् ब्रह्म संहिता—पाद ३, अध्याय १
७. वा० रा० १।५
८. वही ६।१२८।२७, २८, २९
९. वही २।११५।२२

रामायण में कौसल जनपद के अन्य भागों की (ग्राम और नगर) समृद्धि का भी वर्णन किया गया है।[1]

राम ने कौसल जनपद को दो भागों में विभक्त किया था। कौसल में कुश और उत्तर कौसल में लव राजपद पर अभिषिक्त किए गए थे।[2]

किष्किन्धा राज्य—

यह विलारी जिले में हंपी से चार मील दूर तुंगभद्रा नदी पर स्थित अनागोंदी नामक स्थान बताया गया है।[3] यह वानरराज बालि का राज्य था। तत्पश्चात् सुग्रीव ने इस पर राज्य किया। इसकी राजधानी किष्किन्धापुरी थी। यह एक पर्वतीय राज्य की गुफा थी।[4] जो कि अतुलप्रभा वाली थी।[5] यह प्रस्रवण पर्वत के समीप स्थित थी।[6] यह दुर्गम थी।[7]

लङ्का देश—

यह राक्षसों का देश था। इसमें रावण राज्य करता था।[8] यह देश लङ्का से लेकर जनस्थान तक विस्तृत था। लङ्कापुरी इसकी राजधानी थी। यह पुरी पर्वत शृङ्ग (त्रिकूट) पर स्थित चारों ओर से समुद्र से घिरी हुई थी।[9] यह पर्वत, वन, समुद्र एवं कृतिम दुर्ग

---

१. वा० रा० २।५०।८, ९, १०
२. वही ७।१०७।७
३. रामायण कालीन समाज—परिशिष्ट
४. वा० रा० १।१।६५ एवं ४।२६।४०
५. वही ४।११।२१
६. वही ४।२७।२६
७. वही ६।२८।३०
८. वही ४।४०।१०
९. वही ४।५८।२३

से घिरी हुई अमेघ थी।[१] इस पुरी की व्यवस्था राजनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण थी।[२]

उपरोक्त तीन विशाल एवं प्रसिद्ध देशों के अतिरिक्त अन्य छोटे-छोटे देशों का भी रामायण में उल्लेख है। वे इस प्रकार हैं—

अंग देश—

इस देश पर राजा रोमपाद का शासन था।[३] रामायण में इस देश की स्थिति गंगा और सरयू नदी के संगम पर निर्दिष्ट है। यहाँ पर शिवजी तपस्या करते थे कामदेव ने उनकी तपस्या में विघ्न उत्पन्न की। शिवजी ने अपने तृतीय नेत्र से उसे भस्म कर दिया। उसके शरीर के सब अङ्ग जहाँ बिखरे, उस प्रदेश को अङ्ग देश की संज्ञा प्राप्त हुई।[४] यही वह अंग देश है। यह देश राजा दशरथ के अधीन था।[५]

अङ्ग देश आधुनिक भागलपुर या उसके निकट का प्रदेश बताया गया है।[६]

आन्ध्र—

भारत के दक्षिण में स्थित यह एक देश था, जहाँ सीता की खोज के लिये सुग्रीव ने अंगद को भेजा था।[७] यह वर्तमान तेलंगाना माना जाता है।[८]

---

१. वा० रा० ६।३।२०, २१, २२
२. वही ६।३६
३. वही १।६।७ एवं १।१३।२३
४. वही १।२३।१४
५. वही २।१०।३६
६. रामायण कालीन समाज, परिशिष्ट
७. वा० रा० ४।४१।१२
८. संस्कृत हिन्दी कोष—परिशिष्ट ३

उत्कल—

यह देश वर्तमान उड़ीसा के दक्षिण में स्थित है और गोदावरी के मुहाने तक फैला हुआ है।[१]

कलिंग[२]—

इसकी स्थिति उड़ीसा से दक्षिण तथा द्रविण देश से उत्तर पूर्वी क्षेत्र में मानी जाती हैं।[३]

करष[४]—

यह देश आधुनिक बघेल खण्ड का क्षेत्र माना जाता है।[५]

कामपित्य—

रामायणानुसार यहाँ राजा ब्रह्मदत्त राज्य करते थे।[६] यह आधुनिक फर्रुखाबाद है।[७]

काम्बोज—

यह देश घोड़ों के लिए प्रसिद्ध था।[८] इसकी स्थिति कश्मीर के उत्तर में थी। लौगमेंन की 'उच्च श्रेणी का भारत मानचित्र' पुस्तक में २५० ई० पूर्व के भारत ऐतिहासिक मान चित्र में कम्बोज को कश्मीर के पूर्व और हिमालय के उत्तर में दिखाया गया है।[९] यह हिन्दूकुश पर्वत का वह प्रदेश होगा जहाँ यह बलख से गिलगित को पृथक करता है तथा तिब्बत और लद्दाख तक फैला हुआ है।[१०]

---

१. वा० रा० ४।४१।१०, संस्कृत हिन्दी कोष—परिशिष्ट ३
२. वा० रा० ४।४१।११
३. रामायण कालीन समाज, परिशिष्ट
४. वा० रा० १।२४।१७
५. रामायण कालीन समाज, परिशिष्ट
६. वा० रामायण १।३३।१९
७. रामायण कालीन समाज, परिशिष्ट
८. वा० रा० १।६।२२
९. उद्धृत, कालिदास का भारत, भाग १ पाठ १०४, १०५
१०. संस्कृत हिन्दी कोष, परिशिष्ट ३

कारपथ—

यह रामायण में एक रमणीय निरामय देश के रूप में वर्णित है।[1] अंगदीया इसकी राजधानी थी यहाँ लक्षमण के पुत्र अंगद का राज्य था। इसे राम ने अंगद के लिए बसाया था।[2] इसे सिन्धु नदी के पश्चिम किनारे पर बन्नू जिले में स्थित आधुनिक कारावाग कहा गया है।

काशी[3]—

यह देश आधुनिक बनारस का विस्तृत क्षेत्र रहा होगा। यहाँ पर राजा दशरथ का अधिपत्य था।[4] रामायण में उल्लिखित एक कथा के अनुसार प्राचीन काल में काशी के राजा पुरुरवा थे।[5]

केकय—

कैकयी के पिता अश्वपती इसके राजा थे।[6] राजगृह इसकी राजधानी थी।[7] यह देश झेलम और चिनाव नदियों के मध्य का प्रदेश था जो कि आधुनिक शाहपुर गुजरात है।[8] आप्टे के अनुसार यह देश सिन्धु देश की सीमा बनाने वाला कहा गया है।[9]

केरल—

यह दक्षिण भारत में स्थित एक देश था।[10] इसमें आधनिक

---

१. वा० रा० ७।१०२।५
२. वही ७।१०२।८, १३
३. वही १।१३।२२ एवं ४।४०।२२
४. वही २।१०।३६
५. वही ७।५६।२५
६. वही १।१३।२३, २४
७. वही २।७०।१ एवं २।७१।१
८. रामायण कालीन समाज, परिशिष्ट
९. संस्कृत हिन्दी कोष, परिशिष्ट ३
१०. वा० रा० ४।४१।१२

कानड़ा, मलावार, और त्रावणकोर शामिल कहे गए हैं।[१]

गान्धार—

यह गन्धर्वों का देश था।[२] यह सिन्धु नदी के दोनों ओर बसा हुआ था। भारत द्वारा निर्मित तक्षशिला इसका प्रसिद्ध नगर था।[३]

चोल—

यह दक्षिण भारत में स्थित एक देश था।[४] यह कावेरी के तट पर बसा हुआ मैसूर प्रदेश का दक्षिण भाग है।[५]

जनस्थान—

मधुमन्तपर (विन्ध्याचल और शेवल पर्वत के बीच का भाग) के ध्वस्त हो जाने पर तपस्वियों के निवास करने के कारण इसका नाम जनस्थान पड़ा।[६] रावण का छोटा भाई 'खर' यहाँ राज्य करता था।[७] डा० व्यास ने इसे औरंगावाद तथा कृष्णा और गोदावरी नदी के मध्य स्थित देश कहा है।[८]

दशार्ण[९]—

डा० व्यास के अनुसार यह भेलसा, वेत्रवती तथा बुन्देलखण्ड की अन्य छोटी नदियों का प्रदेश था।[१०] यह मालवा का पूर्वी भाग था।

---

१. रामायण कालीन समाज, परिशिष्ट
२. वा० रा० ७।१०१।१०, ११
३. वही ७।१०१।१० से १५
४. वही ४।४१।१२
५. संस्कृत हिन्दी कोश, परिशिष्ट ३
६. वा० रा० ७।८१।१६
७. वही ३।२०।१२
८. रामायण कालीन समाज, परिशिष्ट
९. वा० रा० ४।४१।१०
१०. रामायण कालीन समाज, परिशिष्ट

पंचाल—

केकय देश को जाते समय वशिष्ट के दूत इस देश के मध्य से गए थे।[१] यह वर्तमान रूहेल खण्ड है।[२] यह गंगा और यमुना का मध्यवर्ती भाग था।[3]

पाण्ड्य —

यह दक्षिण भारत का देश था।[४] डा० व्यास ने इसमें वर्तमान तिनेवेल्ली और मदुरा जिलों को शामिल किया है।[५] यह चोल देश के दक्षिण पश्चिम में विद्यमान देश बताया गया है।[६]

वाल्हीक—

रामायण में यह देश अश्वों के लिये प्रसिद्ध कहा गया है।[७] यह वर्तमान बलख है।[८]

मगध —

यह देश राजा दशरथ के अधिकार में था।[९] यह गंगा के दक्षिण में स्थित था। यह वर्तमान दक्षिण बिहार है।[१०]

मत्स्य—

यह देश भी राजा दशरथ के आधीन था।[११] इसका क्षेत्र

---

१. वा० रा० २।६८।१३
२. रामायण कालीन समाज, परिशिष्ट
३. संस्कृत हिन्दी कोश, परिशिष्ट ३
४. वा० रा० ४।४१।१२
५. रामायण कालीन समाज, परिशिष्ट
६. संस्कृत हिन्दी कोश, परिशिष्ट ३
७. वा० रा० १।६।२२
८. रामायण कालीन समाज, परिशिष्ट
९. वा० रा० २।१०।३९ एवं ४।४०।२२
१०. रामायण कालीन समाज, परिशिष्ट
११. वा० रा० २।१०।३९

आधुनिक अलवर और भरतपुर रहा होगा।[1] इसे धौलपुर के पश्चिम में स्थित बताया गया है।[2]

मद्र[3]—

डा० व्यास ने इसे चिनाव के पूर्व में उत्तरी पंजाब का एक जनपद बताया है।[4]

मलद[5]—

यह गंगा के पूर्वी किनारे का एक जनपद था जो अब मालदा कहलाता है।

मल्लदेश—

यहाँ का राज्य लक्ष्मण के पुत्र चन्द्रकेतु को दिया गया था।[6] यह वर्तमान मुल्तान जिला है।[7]

यवद्वीप—

इस राज्य में सीता की खोज के लिए सुग्रीव ने विनत को भेजा था। यह सप्त राज्यों से शोभित कहा गया है।[8] डा० व्यास ने इसे जावाद्वीप कहा है।[9]

वंग—

रामायणानुसार यह समृद्धशाली देश राजा दशरथ के आधीन

---

१. रामायण कालीन समाज, परिशिष्ट
२. संस्कृत हिन्दी कोश, परिशिष्ट ३
३. वा० रा० ४।४३।११
४. रामायण कालीन समाज, परिशिष्ट
५. वा० रा० १।२४।१७
६. वा० रा० ७।१०२।६
७. रामायण कालीन समाज, परिशिष्ट
८. वा० रा० ४।४०।२६
९. रामायण कालीन समाज, परिशिष्ट

था।[1] यह वर्तमान पूर्वी बंगाल का प्रदेश है।[2]

विदर्भः[3] —

यह वर्तमान वरार है।[4]

विदेहः[5] —

डा० व्यास ने इसे वर्तमान तिरहुत कहा है।[6] यह मगध के पूर्वोत्तर में विद्यमान एक देश था। इसकी राजधानी मिथिला थी। अब यह मधुवनी के उत्तर में नेपाल में जनकपुर के नाम से प्रसिद्ध है। प्राचीन काल में विदेह के अन्तर्गत नेपाल के एक भाग के अतिरिक्त वह सब स्थान जो अब सीतामढ़ी, सीताकुण्ड अथवा तिरहुत के पुराने जिले का उत्तरी भाग और चम्पारन का उत्तर पश्चिम भाग कहलाता है, इसमें सम्मलित था।[7]

शृङ्गवेरपुरः—

यहाँ राजा गुह का राज्य था।[8] रामायण में इसकी स्थिति गंगा के तट पर अयोध्या से चित्रकूट जाने वाले मार्ग पर बताई गई है।[9] इसे प्रयाग से १८ मील दूर गंगा तट पर स्थित वर्तमान सिंगरौर कहा गया है।[10]

---

१. वा० रा० २।१०।३६
२. रामायण कालीन समाज, परिशिष्ट
३. वा० रा० १।३८।३ एवं ४।४१।११
४. रामायण कालीन समाज, परिशिष्ट
५. वा० रा० ४।४०।२२
६. रामायण कालीन समाज, परिशिष्ट
७. संस्कृत हिन्दी कोश, परिशिष्ट ३
८. वा० रा० २।८३।१६
९. वा० रा० २।६३।१६
१०. रामायण कालीन समाज, परिशिष्ट

सांकाश्या –

यहाँ कुशध्वज का राज्य था।[१] यह फरूखाबाद जिले में फतेहगढ़ के पश्चिम की ओर २३ मील पर इक्षुमती नदी के पास कपित्थ नाम से प्रसिद्ध है।[२]

सिन्धुः—

इसे नदीज भी कहा गया है।[3] यह समृद्धशाली देश राजा दशरथ के अधिकार में था।[४] यह सिद्ध नदी के दोनों किनारों पर स्थित था। यहां से उत्तम जाति के अश्व अयोध्यापुरी से लाये गये थे।[५]

सौराष्ट्रः—

यह देश भी राजा दशरथ के आधीन कहा गया है।[६] यह आधुनिक काठियावाढ़ प्रदेश है।[७]

सौवीरः—

राजा दशरथ के आधीन यह समृद्धशाली देश[८] वर्तमान उत्तरी सिंधु में स्थित था।[९]

उपर्युक्त राज्यों के अतिरिक्त रामायण में, इन्द्रशिरा[१०] (ऐरावतवंशी गजराजों के लिए प्रसिद्ध राज्य), कुरु[११] (हस्तिनापुर

---

१. वा० रा० १।७०।२
२. रामायण कालीन समाज, परिशिष्ट
३. वा० रा० १।६।२२
४. वा० रा० २।१०।३८
५. वा० रा० १।६।२२
६. वा० रा० २।१०।३६
७. रामायण कालीन समाज, परिशिष्ट
८. वा० रा० २।१०।३६
९. रामायण कालीन समाज, परिशिष्ट
१०. वा० रा० २।७०।२२
११. वा० रा० ४।४३।११

के उत्तर पश्चिम में स्थित राज्य), कुशावती[1] (विन्ध्य पर्वत के नीचे स्थित राज्य), कुक्षि[2] (पश्चिम भारत में स्थित देश), कौशिक,[3] द्रविण,[4] द्रुमकुल्य,[5] पुण्ड्र[6] (पूर्वी भारत में स्थित देश), पुण्ड्र[7] (दक्षिण भारत में स्थित देश), पुलिंद[8] (उत्तर भारत का एक देश), वनायु[9] (डा० नानूराम व्यास के अनुसार यह अश्व देश है।[10] रामायण में इसे अश्वों के लिए प्रसिद्ध कहा गया है।), वाल्हीं[11] राजा इल का देश), ब्रह्ममाल[12], मध्यदेश,[13] मधुपरी[14] (वर्तमान मथुरा, यही लवणासुर का राज्य था, उसके पश्चात् शत्रुघ्न के पुत्र को यहाँ का राज्य दिया गया।) मालव[15] (आधुनिक मालवा), माहिषक[16] (दक्षिण भारत में स्थित देश), मेखला[17] (दक्षिण भारत का देश), सिन्धुनद,[18] सुवर्णद्वीप,[19] सुमात्रा),

---

१. वा० रा० ७।१०८,४
२. वा० रा० ४।४२।७
३. वा० रा० ४।४१।११
४. वा० रा० २।१०।३८
५. वा० रा० ६।२२।३१
६. वा० रा० ४।४०।२२
७. वा० रा० ४।४१।२२
८. वा० रा० ४।४३।११
९. वा० रा० १।६।२२
१०. रामायण कालीन समाज, परिशिष्ट
११. वा० रा० ७।८७।३
१२. वा० रा० ४।४०।२२
१३. वा० रा० ७।९०।२१
१४. वा० रा० ७।१०८।१०
१५. वा० रा० ४।४०।२२
१६. वा० रा० ४।४१।११
१७. वा० रा० ४।४१।१०
१८. वा० रा० १।६।२२
१९. वा० रा० ४।४०।२९

हैहयदेश[1] (इसकी राजधानी माहिष्मती थी),[2] आदि छोटे-छोटे देशों का नाम आया है।

अस्तु, वाल्मीकि रामायण में सम्पूर्ण भारत के राज्यों का विवरण प्रस्तुत किया गया है, जो राजनीतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

---

१. वा० रा० १।७०।२७
२. वा० रा० ७।३१।७

तृतीय अध्याय

रामायण कालीन शासन व्यवस्था

रामायण में राजतन्त्र शासन था । यह राजतन्त्र सप्ताङ्ग प्रणाली पर आधारित था । राजा राज्य का मूल था । रामायण में शासन व्यवस्था वैदिक कालीन शासन व्यवस्था का विकसित रूप प्रतीत होती है । वैदिक काल में साम्राज्य, वैराज्य, भौज्य, राज्य, पारमेष्ठ्य, महाराज्य एवं अधिराज्य शासन पद्धतियों का प्रचलन था । रामायण में केवल राजतन्त्रात्मकशासन पद्धति ही प्रचलित थी । प्रस्तुत अध्याय में रामायण में उल्लिखित राजतन्त्र शासन के राजा, अमात्य, कोष, एवं दण्ड राज्याङ्गों पर विचार किया गया है ।

राजा—

'राजन्' शब्द राज् (शासन करना) से कनिन् प्रत्यय से बना है । इस प्रकार राजा का अर्थ शासन करने वाला या शासक होता है । भारतीय राजनीतिक विचारधारा से 'प्रकृति रंजनात्' राजा, अर्थात् प्रजा के रंजन करने के कारण इसे राजा कहा गया है । जैसा कि रघुवंश महाकाव्य[१] और महाभारत[२] में निर्दिष्ट है । वाल्मीकि रामायण में राजा का लोकरञ्जन-कर्ता के रूप में वर्णन है ।

---

१. राजा प्रकृतिरञ्जनात् । रघुवंश महाकाव्यं ४।१२

२. रञ्जिताश्च प्रजास्सर्वा तेनराजेनि शब्द्यते । महाभारत, शान्तिपर्व

राजा की उत्पत्ति—

प्राचीन भारतीय साहित्य में राजा की उत्पत्ति विषयक अनेक कथायें प्रचलित हैं। ऐतरेय ब्राह्मण में उल्लेख है कि देवताओं और असुरों में युद्ध हुआ। देवता पराजित हो गये। देवों ने विचार विमर्श करके निष्कर्ष निकाला कि उनकी पराजय का कारण राजा का न होना है। उन्होंने राजा चुनने का विचार किया। इसमें सभी ने सहमति प्रकट की।[1]

वाल्मीकि रामयण में भी राजा की उत्पत्ति विषयक कथा का उल्लेख है। इसमें उल्लेख है कि पहले मानवीय प्रजा बिना राजा के थी। प्रजाजन ब्रह्मा के पास गये और किसी को राजा बनाने के लिये प्रार्थना की। ब्रह्मा ने सब लोकपालों के तेज के अंश से एक पुरुष उत्पन्न किया और उसका नाम क्षुप रखा। ब्रह्मा ने क्षप को प्रजा का आधिपत्य दिया और उसे राजा बनाया।[2]

वस्तुत: राजा की उत्पत्ति समाज में उत्पन्न होने वाली अराजकता के कारण हुई होगी, जैसा कि रामायण के उल्लेख से स्पष्ट हैं कि राजा रहित राज्य में योगक्षेम नहीं होता, स्त्री एवं सम्पत्ति सुरक्षित नहीं रहती और सर्वत्र अशान्ति का वातावरण रहता है आदि।[3]

रामायण में राजा का पद—

रामायण के अनुसार राजपद के लिये तीन बातों का ध्यान दिया जाता था—(१) राजा वंशानुगत होता था। (२) राजपद के लिये ज्येष्ठ पुत्र ही अधिकारी होता था। (३) राजपद योग्य व्यक्ति को ही प्राप्त होता था।

---

१. ऐतरेय ब्राह्मण १।१४

२. वा० रा० ७।७६।३७, ३६, ४२, ४३

३. वा० रा० २।६७।६ आदि

(१) राजा की वंशानुगत परम्परा—

राजा की वंशानुगत परम्परा वैदिक काल से ही प्रारम्भ हो गई थी। यद्यपि वैदिक काल में राजा के निर्वाचन के कुछ उल्लेख हैं।[1] लेकिन इसके साथ-साथ वैदिक काल में राजपद के आनुवंशिक होने के भी उदाहरण मिलते हैं। तृत्सुओं में चार पीढ़ी से भी अधिक समय से पुत्र ही पिता के राजसिंहासन पर बैठते चले आ रहे थे। संजयों के राजा दृष्ट ऋतु पौसायन की कथा में १० पीढ़ी से प्राप्त राज्य का उल्लेख है और राज्याभिषेक के समय की घोषणा में भी नये राजा को राजा का पुत्र कहा गया है।[2]

रामायण में राजपद की आनुवंशिकता दृढ़ हो गई।[3] फिर भी उत्तराधिकारी की नियुक्ति के लिये मन्त्रियों एवं पौरजनपद का समर्थन या प्रजा की सहमति लेने की आवश्यकता का अनुभव होता था। राजा दशरथ ने राम को राजा बनाने की इच्छा से मन्त्रियों एवं पौरजानपद लोगों का समर्थन लिया था।[4] राजा दशरथ के प्रस्ताव का ब्राह्मण, सेनापति और पुरवासियों ने समर्थन किया था और राम को राजा बनाने के लिये अपनी स्वीकृति प्रदान की थी।[5]

इसी प्रकार भरत ने भी राम से पुरोहित, नागरिकों और नैगमों आदि के समक्ष देने राजा बनने की प्रार्थना की थी।[6] राजा नृग ने अपने पुत्र को राजपद देने के लिये मन्त्री एवं सभासदों से विनय की थी।[7] सुग्रीव को भी राजपदारूढ़ होने में मन्त्रियों की

१. अथर्व० ३।४।२
२. उद्धृत, प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृष्ठ ५८, ५९
३. वा० रा० २।७९।५, ४।६।३ एवं २।७९।७
४. वही २।२।१५, १६
५. वही २।२।२१, २२
६. वही २।१०६।२५, २६
७. वही ७।५४।८

सहमति प्राप्त थी।[1] इस प्रकार रामायण काल में राजपद आनुवंशिक होने के साथ ही उसके लिये मन्त्रियों एवं पौरजानपद या सभा के सदस्यों का समर्थन भी अपेक्षित था।

राजा की जाति—

यहाँ वंशानुगतक्रम में राजा की जाति के विषय में विचार विमर्श करना उचित है। रामायण कालीन समाज की वर्ण व्यवस्था पर आधारित था।[2] सभी वर्णों के कार्य बँटे हुए थे।[3] ब्राह्मण धार्मिक कार्यों का अनुष्ठान करते थे, अध्ययनशील थे, प्रतिग्रह (दान लेने में) संयत थे। और जितेन्द्रिय थे।[4] वे यज्ञ करते और कराते थे। क्षत्रियों का कर्त्तव्य आर्तजनों की रक्षा करना था।[5] वैश्य कृषि और पशुपालन करते थे।[6] और शूद्रों का कार्य अन्य तीनों वर्णों की सेवा करना था।[7]

स्पष्ट है कि आर्तजनों की रक्षा करने वाला क्षत्रिय ही राजपद के योग्य था। रामायण में आर्य राजा क्षत्रिय कहे गये हैं। राम को क्षत्रिय कुलोत्पन्न कहा गया है।[8]

रामायण में वानर राजाओं की जाति का स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं है। सुग्रीव के राज्याभिषेक के समय पर ब्राह्मणों ने उसे अभिषिक्त किया था और वे ब्राह्मण इस अवसर पर भोजन, वस्त्र और रत्नादि से सम्मानित किए गए थे।[9] अतः वानर राजा

---

१. वा० रा० ४।६।२०
२. वही १।१।६३
३. वही १।६।१७, १६
४. वही १।६।१३
५. वही ३।१०।३
६. वही २।६७।१६
७. वही १।६।१६
८. वही ४।१७।२५
९. वही ४।२६।२८

भी क्षत्रियोचित गुणों से युक्त रहे होंगे। क्योंकि ये राजा भी अपनी प्रजा की रक्षा करने में समर्थ थे।

राक्षस राजाओं या रावण की जाति के विषय में रामायण में उल्लेख है कि रावण ऋषि पुलस्त्य का प्रपौत्र और ब्रह्मर्षि विश्रवा का पुत्र था।[1] ऋषि पुलस्त्य को द्विज कहा गया है।[2] अतः राक्षस राजा ब्राह्मण जाति के थे। रामायण में एक अन्य कथा के अनुसार राक्षस नामकरण रक्षा करने के कारण पड़ा।[3] अतः रक्षा कर्म में दक्ष होने के कारण राक्षस राजा भी राजोचित गुणों से युक्त थे।

रामायण में अन्य जाति के राजाओं का भी उल्लेख है। शृङ्गवेरपुर का राजा निषादराज गुह जाति का था। लेकिन समस्त जातियों के राजाओं के लिए राज्य के कल्याण करने की योग्यता रखना और प्रजापालन करना अनिवार्य था।[4]

(२) राजपद के लिये ज्येष्ठपुत्र का अधिकार—

रामायण के अनुसार राजपद के लिए राजा का ज्येष्ठ पुत्र ही अधिकारी होता था। कैकयी का यह कथन, कि ज्येष्ठ पुत्र ही इक्ष्वाकु वंश में राजा होता आया है, 'इस मत की पुष्टि करता है।[5] इस सन्दर्भ में भरत का भी यही कथन था।[6] भरत ने राम से कहा था कि बड़े भाई के होते हुए छोटा भाई शासनाधिकारी नहीं हो सकता।[7] वशिष्ठ ने भी इक्ष्वाकुवंश में ज्येष्ठ पुत्र को राजा बनाने की बात का समर्थन किया था।[8]

---

१. वा० रा० ७।२।२४ एवं ७।३।१ आदि
२. वही ७।२।२७
३. वही ७।४।१३
४. वही २।२।४६
५. वही २।८।१४
६. वही२।७३।२० एवं २।७३।२२
७. वही २।१०१।२
८. वही २।११०।३२

आपत्तिकालीन स्थिति में अराजकता से बचने के लिए ज्येष्ठ पुत्र की अनुपस्थिति में किसी अन्य पुत्र को राजा बनाने के लिए विचार किया जाता था। राम के वन गमन पर भरत के राज्याभिषेक का निर्णय लिया गया था।[१] ज्येष्ठ पुत्र के अयोग्य होने पर वह राजपद के अधिकार से वंचित रहता था। राजा सगर का पुत्र 'असमंज' मूर्खता के कारण राज्य से निष्कासित कर दिया गया था।[२]

वानरों में भी ज्येष्ठ पुत्र ही राज्याधिकारी होता था। बालि अपने पिता का ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण राज्यारूढ़ किया गया था।[३]

ज्येष्ठ भ्राता की मृत्यु पर छोटा भाई राज्याधिकारी होता था। बालि की मृत्यु पर सुग्रीव को राजा बनाया गया था।

राक्षसों में भी ज्येष्ठ पुत्र को राजा बनाने की परम्परा थी। रावण अपने पिता का ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण राजा बनाया गया था।

राज्याधिकार ज्येष्ठ पुत्र तक ही सीमित न था। सुधन्वा को जीतने के बाद नया राज्य प्राप्त होने पर राजा जनक ने अपने छोटे भाई कुशध्वज को सांकाश्या का राजा बनाया था।[४] उत्तरकाण्ड में भी यही बात स्पष्ट होती है कि केवल ज्येष्ठ पुत्र ही राज्याधिकारी नहीं होता था, अपितु उसके कनिष्ठ भ्राता और पुत्र भी राजपद पर अभिषिक्त होते थे। राम ने अपने सभी भाइयों और उनके पुत्रों में राज्य का विभाजन कर दिया था।[५]

---

१. वही २।६७।८
२. वही २।३६।१६, १९ आदि
३. वही ४।६।१, २
४. वा० रा० १।७०।२ आदि
५. वही ७।१०१, १०२, १०७

(३) योग्य व्यक्ति राजपद का अधिकारी—

राजपद की प्राप्ति के लिए अन्तिम एवं महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि उत्तराधिकारी योग्य एवं गुणवान् हो। रामायणानुसार योग्यपात्र ही राजपद पाने का अधिकारी होता था।' न चैव राज्यं विगुणायदेयं' की भावना सर्वत्र व्याप्त थी। राजा का ज्येष्ठ पुत्र भी यदि अयोग्य और गुणहीन होता था तो राजपद के लिए न तो उसका नाम ही प्रस्तावित किया जाता था और न उसे प्रजा का समर्थन ही प्राप्त होता था। राजा दशरथ ने राजपद के लिए राम का नाम उनके गुणों और उनकी योग्यता के कारण ही प्रस्तावित किया था।[१] प्रजाजनों ने भी राम की योग्यता पर भली-भाँति विचार करके ही राजा दशरथ के प्रस्ताव का एक मत होकर समर्थन किया था।[२] अजितेन्द्रिय राजपद के अयोग्य माना जाता था।[३]

राजपद के लिए प्रजापालन की क्षमता रखना और जितेन्द्रिय होना आवश्यक था।[४] राम के अनुसार 'राजा' धर्म, अर्थ और काम को समयानुसार करने की योग्यता रखने वाला हो।[५] नारद की दृष्टि में राजा को समुद्र, हिमालय, विष्णु, चन्द्र, प्रलयाग्नि, पृथ्वी और धर्म के समान क्रमशः गम्भीर, धैर्यवान्, पराक्रमी, सुन्दर, प्रबल, क्षमाशील और स्थिर गुणों से युक्त होना चाहिए।[६] इस प्रकार रामायण में राजपद के लिए योग्यपात्र ही अधिकारी कहा गया है।

---

१. वही २।१।३४, २।२।११ एवं २।२।१२
२. वही २।२।२० आदि
३. वही २।२।६
४. वही २।२।४६
५. वही ४।३८, २२, २३
६. वही १।१।१७, १८

राजा का व्यक्तित्व—

रामायण में राजा को चतुर्मुखी व्यक्तित्व से युक्त कहा गया है। वह अत्यन्त कान्तिवान्, बुद्धिमान् और सम्पूर्ण विद्याओं का ज्ञाता, शक्तिवान् विजेता और नैतिक गुणों का आगार था। रामायणानुसार राजा के व्यक्तित्व को चार रूपों में स्पष्ट किया जा सकता है—

(१) रूपवान्—वाल्मीकि ने राजा को शारीरिक सौन्दर्य की दृष्टि से अत्यन्त आकर्षक बताया है। राजा राम सौन्दर्य की दृष्टि से अनुपम कहे गये हैं। वे विशाल कन्धों वाले, महाबाहु, सुन्दरग्रीवा, विशालवक्ष, सुशिर, सुललाट और स्निग्ध वर्ण वाले कहे गए हैं।[१] वानर राजा भी दर्शनीय थे।[२] सुग्रीव द्युतिमान् और कान्तिमान् था।[३] राक्षस राजा रावण भी परम तेजस्वी और पूर्ण चन्द्रमा के समान मुख मण्डल वाला कहा गया है।[४]

(२) बुद्धिमान् एवं विद्वान्—रामायण में सभी राजा बुद्धिमान् एवं विद्वान कहे गये हैं। राजा राम वेद वेदांग तत्वज्ञ, सर्वशास्त्र-तत्त्वज्ञ[५], ज्ञान सम्पन्न[६], स्थिरप्रज्ञ, अप्रमादी और स्वदोष-परदोषविद्[७] एवं पुरुषान्तर कोविद थे।[८] राजाबलि भी विशदज्ञानवान[९] और कार्यों के संचालन में चतुर था।[१०] सुग्रीव को भी ज्ञानवान् और मतिमान् कहा गया हैं।[११] इसी प्रकार राक्षस राजा

---

१. वा० रा० १।१।६, १०, ११
२. वही ४।५।६
३. वही ३।७२।१४
४. वही ५।४६।६, ८
५. वही १।१।१४, १५
६. वही १।१।१२
७. वही २।१।२४
८. वही २।१।२५
९. वही ४।१८।६१
१०. वही ४।२।२३
११. वही ३।७२।१२, १३

भी बुद्धिमत्ता और विद्वत्ता में बढ़े-चढ़े थे।

(३) वीर—रामायण में सभी राजा सुविक्रम वाले कहे गये हैं। राजा राम महावीर्यवान् सुविक्रमी[1] विष्णु के सदृश पराक्रमी,[2] और वीर[3] थे। राजाबालि शत्रुनिषूदन,[4] महाबली,[5] इन्द्र-तुल्पराक्रम सम्पन्न[6] आदि वीरतापूर्ण शब्दों से विभूषित था। सुग्रीव भी वीर, महापराक्रमी और महाबली के रूप में वर्णित है।[7] राजा रावण समितिञ्जय,[8] अजेय, समर में शूर,[9] कहा गया है।

(४) नीतिज्ञ—रामायण में आर्य राजा नैतिक गुणों के आगार और श्रेष्ठ चरित्र वाले कहे गये हैं। वे केवल धर्म में ही आस्था रखने वाले थे।[10] वे सत्य, दान, तप, त्याग, मैत्री, शौच, आर्जव, गरयुषा, क्षमा, दमन, त्याग, सत्यभाषण, धार्मिकता, कृतज्ञता, और प्राणियों के प्रति प्रेम आदि गुणों से युक्त थे।[11] राजा दशरथ धर्म वत्सल[12] और धर्मज्ञ[13] कहे गए हैं। राम धर्मज्ञ, सत्यसंघ, साधु[14],

---

१. वही १।१।८, १०
२. वही १।१।१८
३. वही १।१।२४
४. वही ४।६।१
५. वही ४।६।८
६. वही ४।१६।१३
७. वही ३।७२।१३, १४
८. वही ६।१२।१
९. वही ३।३२।६
१०. वा० रा० ३।१६।२०
११. वही २।१२।३०, ३३
१२. वही ४।४।६
१३. वही १।८।१
१४. वही १।१।१२, १५

क्षमाशील, धैर्यवान्, जितेन्द्रिय[१], कृतज्ञ, मृदु, स्थिरचित्त, अनुसूयक, प्रियवादी, सत्यवादी, स्नेही, शीलवान् आदि नैतिक गुणों से युक्त थे।[२] वानर राजा भी धर्मात्मा थे।[३] सुग्रीव को सत्यसंघ, विनीत और धृतिमान् कहा गया है।[४] राक्षस राजा अवश्य ही नैतिकगुणों से रहित थे और वे धर्म को मूल से नष्ट करने वाले थे।[५] रामायण में राक्षस राजा यज्ञध्वंशक, क्रूर, ब्रह्महत्या करने वाले, दुराचारी, कर्कश, दयाशून्य और प्रजाओं का अहित करने वाले कहे गये हैं।[६]

अनेन प्रकारेण रामायण में वर्णित राजाओं का व्यक्तित्व गौरवपूर्ण था। राक्षस राजाओं को छोड़कर अन्य राजाओं का चरित्र अनुकरणीय है।

राजकुमारों की शिक्षा—

राजाओं की योग्यता और उनका चतुर्मुखी व्यक्तित्व उनकी प्रारम्भिक शिक्षा पर आधारित था। रामायण में राजकुमारों की शिक्षा का विशेष ध्यान दिया गया है। इससे स्पष्ट है कि उस समय राजकुमारों की शिक्षा का विशेष प्रबन्ध था। राजकुमारों को वेद, तत्त्वज्ञान, वीरता, राजनीति आदि का अध्ययन कराया जाता था। उन्हें शासन संचालन शस्त्र विद्या और युद्ध कौशल की शिक्षा प्रायोगिक रूप से दी जाती थी। वे धनुर्विद्या, रथ संचालन हस्थिविद्या और शासन के संचालन में निष्णात होते थे।

राजा दशरथ के चारों राजकुमार अपनी प्रारम्भिक अवस्था

---

१. वही २।२।३१
२. वही २।२।२८ आदि
३. वही ४।३।२१
४. वही ३।७२।१३
५. वही ३।३२।१२
६. वही ३।३२।२०, २१

में ही वेदाध्ययन में निरत रहते थे।[1] वे अस्त्र विद्या, हस्थिविद्या और धनुर्विद्या के निपुण थे।[2] वे सभी राजकुमार सर्वज्ञ और दूरदर्शी थे।[3] राजनीतिशास्त्र के विशारद सुधन्वा इन राजकुमारों के उपाध्याय थे।[4]

राम अनेक विद्याओं में विशारद थे। वे नित्य अस्त्र-शस्त्रों का अभ्यास करते थे।[5] वे हस्थि, अस्त्र और बाण विद्या में अद्वितीय,[6] सभी अस्त्रों के चलाने में निपुण[7], धर्मज्ञ,[8] सांगोपांग वेदों के ज्ञाता,[9] धर्म और अर्थ नीति के ज्ञाता,[10] लोकाचार में विशारद,[11] विनम्रता, दया, अक्रोध, अनुसूया, दीनानुकम्पा, पवित्रता, प्रजानुराग, त्याग आदि नैतिक गुणों को हृदयंगम करने में कुशल,[12] शास्त्रों के मर्मज्ञ,[13] शिल्प विद्या में विशेषज्ञ,[14] सैन्यव्यूह की रचना में निपुण,[15] संगीत विशारद,[16] धर्म, काम, अर्थ के तत्वज्ञ,[17] और

---

१. वा० रा० १।१८।३५
२. वही १।१८।२६, २७, ३६
३. वही १।१८।३४
४. वही २।१००, १४
५. वा० रा० २।१।१२
६. वही १।१८।२६, २।१।२८ एवं २।१।२०
७. वही २।२।३३
८. वही २।१।१५
९. वही १।१।१४ एवं २।१।२०
१०. वही २।१।२२
११. वही २।१।२२
१२. वही २।१।१४ आदि
१३. वही २।१।२७
१४. वही २।१।२८
१५. वही २।१।२९
१६. वही २।२।३९
१७. वही २।१।२२

अन्य समस्त विद्याओं में दीक्षित थे।[१] वे शासन संचालन के सभी नियमों के ज्ञाता थे। वे मन्त्र को गुप्त रखने की क्षमता वाले,[२] प्रजापालक, तत्त्वज्ञ,[३] दुष्टों पर शासन करने में दक्ष,[४] और धनोपार्जन के उपायों एवं उसके सद्व्यय के ज्ञाता थे।[५]

आर्य राजकुमारों की भाँति वानर राजकुमार भी शिक्षित होते थे। अंगद को गुणी और शिक्षित कहा गया है।[६] रामायण में वानर राजाओं को भी मेधावी,[७] धर्मज्ञ,[८] नीतिज्ञ,[९] मतिमान और विद्वान् कहा गया है। राजाबालि विशद ज्ञान वाला था।[१०] बालि के अनुसार राजा को नैतिक ज्ञान होना आवश्यक है। उसके अनुसार राजा को नीतिज्ञ और शिक्षित होना चाहिये।[११]

वानर राजकुमारों को राजनीति की शिक्षा प्रयोगात्मक रूप से दी जाती थी। अंगद को सेनापतियों के सान्निध्य में रखा गया था ताकि वह राजनीतिक विचारों और शासन संचालन की नीतियों को प्राप्त करे।[१२] वानर राजाओं की शासन व्यवस्था और युद्ध नीतियों से स्पष्ट हो जाता है कि वे राजनीति विद्या में पारंगत थे।

---

१. वही १।१।१५ एवं २।२।३४
२. वही २।१।२३
३. वही २।२।४४
४. वही २।१।२६
५. वही २।१।२६
६. वही ४।१८।५१
७. वही ४।२।२३
८. वही ४।२।३१
९. वही ४। सर्ग १७
१०. वही ४।१८।६१
११. वही ४।१७।२६, ३३
१२. वही ४।४१।५

शास्त्रों और राजनीति के ज्ञान के अतिरिक्त वानर राजकुमार विभिन्न आयुधों को चलाने में भी दीक्षित होते थे। अंगद परिघ और परशु चलाने में तथा मुष्टि-युद्ध करने में कुशल था।[१] वानर-राजकुमारों को शिलाओं और वृक्षों आदि से युद्ध करने के लिए शिक्षा दी जाती थी। सुग्रीव वृक्ष और पत्थरों से युद्ध करता था।[२] वालि और सुग्रीव बाहु युद्ध, मुष्टि युद्ध, द्वन्द्वयुद्ध तथा शिलायुद्ध में दक्ष थे।[३] वानर राजकुमारों को इच्छानुसार रूप धारण करने की भी शिक्षा दी थी। सुग्रीव को कामरूपी कहा गया है।[४]

राक्षस राजकुमार भी भिन्न-भिन्न प्रकार की शिक्षा प्राप्त करते थे। राक्षस राजा वेद वेदांग के ज्ञाता, राजनीति के पण्डित, शस्त्र-अस्त्र और धनुर्विद्या तथा रथसंचालन में पारंगत थे। लंका में वेदाध्ययन के लिये शालायें थीं।[५] उनमें राक्षस राजकुमारों को शिक्षा दी जाती थी। रावण उच्च शिक्षा की प्राप्ति के कारण ही वाक्यकोविद था।[६] विभीषण की वृहस्पति के तुल्य मति[७] उसकी बुद्धि की प्रखरता एवं ज्ञानार्जन के कारण ही कही गई है।

शास्त्रों की शिक्षा के अतिरिक्त अस्त्र-शस्त्र विद्या, धनुर्विद्या और रथ संचालन आदि में राक्षस राजकुमार दक्षता प्राप्त करते थे। इन्द्रजीत अस्त्र विद्या में पारंगत था।[८] वह वाण विद्या,[९] शूल, मुद्गर, भुशुण्ड, गदा, खड्ग, परशु आदि के चलाने में दक्ष

---

१. वा० रा० ६।९९।१३, ६।९९।१९ आदि
२. वही ६।९७।११, १२
३. वही ४।१६।२८
४. वही ३।७२।१८
५. वही ६।१०।१६
६. वही ३।३१।३९
७. वही ६।१५।१
८. वही १।४५।५
९. वही ६।८८।१७, १९

था।[1] वह रथ संचालन में प्रवीण था। युद्धभूमि में सारथि की मृत्यु के उपरान्त उसने स्वयं ही युद्ध करने के साथ साथ रथ संचालन भी अद्भुत ढंग से किया था।[2] रावण धनुर्विद्या में पारंगत था।[3] वह अनेक प्रकार के अस्त्र चलाने में दक्ष था।[4]

राक्षस राजकुमारों को राजनीतिशास्त्र में परिपक्व कराया जाता होगा, क्योंकि राक्षस राजा राजनीति के अच्छे ज्ञाता थे। वे राजनीति के सामादि चारों अङ्गों और षड्गुणों के ज्ञाता थे। जैसाकि रामायण के उल्लेखों से स्पष्ट है, वे मन्त्रविद् भी होते थे। रावण ने उत्तम, मध्यम और अधम मन्त्रों में विषय में विवेचन किया है।[5]

राक्षस राजकुमार छल कपट विद्या को भी सीखते थे। वे माया और छल कपट करने में निष्णात होते थे। इन्द्रजीत युद्ध में माया से शत्रु को मोहित करने की क्षमता रखता था।[6] इस प्रकार विविध प्रकार की शिक्षा प्राप्त करके भी राक्षस राजा आचरण से हीन होने के कारण और मायावी होने के कारण आदर्श एवं अनुकरणीय न बन सके।

रामायण में शिक्षा के क्षेत्र में राजनीति के ज्ञान का विशेष महत्त्व निर्दिष्ट है। राजनीति का ज्ञान सभी वर्ग के राजकुमारों को विशेष रूप से कराया जाता था। वे साम, दाम, भेद और दण्ड इन चारों नीतियों के ज्ञाता होते थे। उन्हें छः युक्तियों—सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रय का ज्ञान कराया जाता था। इसका उल्लेख रामायण में अनेक स्थलों पर किया गया है।[7]

---

१. वा० रा० ६।६१।६०
२. वही ६।९०।४४
३. वही ६ सर्ग ९७, १०० एवं ६।१०५।३, ६।१०९।२३
४. वही ६।१००।४० आदि
५. वही ६।६।११
६. वही ६।४४।३९; ५१
७. वही ३।७२।८, ६।९।८, ६।१३।७

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि रामायणानुसार राजकुमारों को व्यावहारिक, धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक शिक्षा दी जाती थी। उन्हें अस्त्र-शस्त्र विद्या और राजकार्यों के संचालन में विशेष योग्यता प्राप्त कराई जाती थी। ये राजकुमार शिक्षा प्राप्त करके नीतिवान्, विनयी, सदाचारी, पराक्रमी और देशकालज्ञ बनते थे।[1] इस प्रकार वे प्रजा द्वारा अनुकरणीय बनते थे।[2]

राजकुमार का विवाह—

शिक्षा समाप्ति के पश्चात् राजकुमार का विवाह होता था। राजकुमार के विवाह के लिये 'राजा' मन्त्रियों, उपाध्यायों और बान्धवों से परामर्श लेता था।[3] राजकुमार का विवाह 'राजा' विना मन्त्रियों की सलाह से नहीं कर सकता था।[4]

राजा का निर्वाचन—

वंशपरम्परा, ज्येष्ठता, योग्यता और शिक्षा के आधार पर राजकुमार राजपद की प्राप्ति के योग्य बनता था। राजा के वृद्ध होने पर और उसके द्वारा राजपद के भार को वहन करने की असमर्थता प्रकट करने पर अथवा राजा की मृत्यु के उपरान्त योग्य राजकुमार का राजपद के लिये निर्वाचन होता था। वृद्ध होने पर राजा दशरथ ने राम को मन्त्रियों के परामर्श से युवराज पद पर अभिषिक्त करने का निश्चय किया था।[5] रामायण में युवराज या राजा के निर्वाचन की विधि इस प्रकार से वर्णित है—

नये राजा के लिये राजकुमार का नाम पुराने राजा द्वारा प्रस्तावित किया जाता था। राजा दशरथ ने वृद्ध होने के कारण

---

१. वा० रा० ४।१८।८
२. वही २।४५।१
३. वही १।१८।३८, ३९
४. वही १।९८-१६, १७
५. वही २।१।३३, ४१

राज्य के कार्यों को वहन करने में अपनी असमर्थता प्रकट करके[1] सम्पूर्ण पुरवासियों के समक्ष[2] तथा अन्य राजाओं के समक्ष[3] सर्वगुणसम्पन्न अपने ज्येष्ठ पुत्र का नाम राजपद के लिये प्रस्तावित किया था।[4] राजा दशरथ ने इस बात को भी स्पष्ट किया था कि यदि उनका प्रस्ताव उचित न हो, तो अन्य विचार भी प्रस्तुत किया जा सकता है।[5] इसी प्रकार राजा नृग ने भी राजपद के लिये अपने पुत्र 'वसु' का नाम पुरोहित, मन्त्रियों और नैगमों के समक्ष प्रस्तावित किया था।[6]

राजपद हेतु प्रस्ताव के अनन्तर उसके लिये समर्थन प्राप्त किया जाता था।[7] राजपद के लिये प्रस्तावित व्यक्ति के गुण, योग्यता आदि के विषय में सम्यक् विचार करके एवं परस्पर परामर्श करके ब्राह्मण, विशिष्टजन और पौरजानपद एकमत होकर राजा के प्रस्ताव का समर्थन करते थे।[8] राजा दशरथ के प्रस्ताव के सम्बन्ध में परस्पर विचार विमर्श करके ही प्रजाजनों ने एकमत होकर उसका समर्थन किया था एवं राजकुमार राम को युवराजपद पर अभिषिक्त कराने की अनुमति प्रदान की थी।[9]

इसी प्रकार बालि[10] और सुग्रीव[11] ने भी राजसिंहासन की प्राप्ति के लिये मन्त्रियों का समर्थन प्राप्त किया था।

---

१. वा० रा० २।२।८
२. वही २।२।१
३. वही २।२।३
४. वही २।२।११, १२
५. वही २।२।१६
६. वही ७।५४।५, ८
७. वही २।२।१५
८. वही २।२।१९, २०
९. वा० रा० २।२।२१
१०. वही ४।९।२
११. वही ४।९।२०

R. SK S. LIBRARY
Acc No........... 5852
Call No.................

रामायण में राजा और युवराज के निर्वाचन की विधि समान है। राम को युवराजपद पर निर्वाचित करने के लिये ही योजना बनाई गई थी। रामायण में राजा के निर्वाचन के साथ ही साथ युवराज के निर्वाचन का भी उल्लेख है। यदि राजा के पुत्र नहीं होता था, तो ऐसी स्थिति में उसका छोटा भाई ही युवराज पद पर अभिषिक्त कर दिया जाता था। राम के राज्याधिकारी होने पर, राम के पुत्र की अनुपस्थिति में राम ने अपने छोटे भ्राता भरत को युवराज पद पर अभिषिक्त कराया था।[1] सुग्रीव के राज्याधिरूढ होने पर एवं उसके कोई पुत्र न होने के कारण उसने अपने भतीजे अंगद को युवराज पद पर अभिषिक्त कराया था।[2]

युवराज राज्य के कार्यों के संचालन में राजा की सहायता करता था। वह राजा द्वारा राजपद के त्याग देने के पश्चात् राजपद को ग्रहण करता था।[3]

राज्याभिषेकोत्सव—

प्रजातन्त्रात्मक पद्धति से राजपद के लिये निर्वाचन के पश्चात् उत्तराधिकारी का राज्याभिषेक होता था। रामायण में राम, सुग्रीव, विभीषण, शत्रुघ्न तथा राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न के पुत्रों के राज्याभिषेक का उल्लेख है। कृति में सर्वप्रथम राम के यौवराज्याभिषेक की तैयारी का वर्णन है।[4] किष्किधाकाण्ड में राजपद पर सुग्रीव के और युवराज पद पर अङ्गद के अभिषेक का उल्लेख है।[5] लङ्काविजयोपरान्त विभीषण के राज्याभिषेक के वर्णन[6] के अनन्तर अयोध्या लौटने पर राम के राज्याभिषेक का

---

१. वा० रा० ६।१३१।८६
२. वही ४।२६।३७
३. वही ४।६।३
४. वही २ सर्ग ३, ४, ५, १४, १५
५. वही ४।२६।३५, ३६, ३७
६. वही ६।११३।१६

वर्णन किया गया है।[1] अन्त में उत्तरकाण्ड में शत्रुघ्न के राज्याभिषेक के वर्णन[2] के अनन्तर राम आदि चारों भाइयों के पुत्रों के राज्याभिषेक[3] तथा युवराज अङ्गद के राज्याभिषेक का संकेत मिलता है।[4]

रामायण में राम और सुग्रीव के राज्याभिषेक का ही विस्तार से वर्णन किया गया है। अन्य का वर्णन संक्षेप में ही है या केवल संकेत मात्र किया गया है।

रामायण में राज्याभिषेकोत्सव की विधि कौसल, किष्किन्धा और लङ्का में लगभग समान रूप से वर्णित है। यह उत्सव राजप्रासाद में सम्पन्न होता था।[5] राज्याभिषेक शुभ मुहूर्त में किया जाता था।[6] इस अवसर पर अभिषेकोत्सव की विभिन्न तैयारियाँ की जाती थी।[7] महोत्सव की सम्पन्नता के लिये सुवर्ण, रत्न, समस्त औषधियाँ, श्वेतपुष्प की मालायें, लावा, मधु, घी, नवीन-वस्त्र, रथ, समस्त आयुध, चतुरङ्गणी सेना, शुभलक्षण सम्पन्न हाथी, दो चामर, श्वेतध्वजा, श्वेतछत्र, सुवर्ण के सौ कलश, स्वर्ण जटित शृङ्ग वाले वृषभ, व्याघ्र चर्म आदि एकत्रित किये जाते थे।[8]

इस अवसर पर सम्पूर्ण नगर और अन्तःपुर सज्जित होता था। अन्तःपुर और नगर के सम्पूर्ण द्वारों का चन्दन, मालाओं और

---

१. वा० रा० ६।१३१।६२, ६३
२. वही ७।६३।१० से १५
३. वही ७।१०१।११, ७।१०२।१०, ७।१०७।१७, ७।१०८।९
४. वही ७।१०८।२४
५. वही २।३।१६, २।१५।१४, १५, ४।२६।३०, ६ सर्ग ११५, १३१
६. वही २।४।२१
७. वही २।३।४
८. वही २।३।८ से ११, ४।२६।२३ से २८

सुगन्धित पुष्प धूप से पूजन किया जाता था।[1] ब्राह्मण भोज की सामग्री, प्रशस्त अन्न और दही दूध से निर्मित पदार्थ तैयार किये जाते थे।[2] ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन करने की अपेक्षा की जाती थी।[3] मार्गों पर पुष्प बिखेरे जाते थे।[4] पताकायें फहराई जाती थी।[5] राजमार्ग पर छिड़काव होता था और प्रत्येक घर बन्दनवार और पुष्पमालाओं से सज्जित किया जाता था।[6] इस अवसर पर नर्तक और गणिकायें अलङ्कृत होकर राजभवन में बुलवाई जाती थीं।[7] ये नट नर्तक और गायक अपनी कला से लोगों को प्रसन्न करते थे।[8] देवमन्दिर और चौराहों पर दक्षिणा और भोजन की सामग्री वितरण के लिये पहुँचाई जाती थी।[9] मार्गों पर प्रकाश की व्यवस्था की जाती थी।[10] योधागणों को सुन्दर वस्त्र धारण करके महोत्सव में उपस्थित होने के लिये आज्ञा दी जाती थी।[11] इस प्रकार इस अवसर पर उपर्युक्त कार्यों तथा अन्य अपेक्षित कार्यों को सम्पन्न किया जाता था।[12]

उत्तराधिकारी के लिए उपदेश—

राज्याभिषेकोत्सव सम्बन्धी उपर्युक्त कार्यों के सम्पन्न हो जाने

१. वा० रा० २।३।१३
२. वही २।३।१४
३. वही २।३।१६
४. वही २।१४।२७
५. वही २।७।३, ६
६. वही २।५।१८
७. वही २।३,१८
८. वही २।६।१४
९. वही २।३।१८
१०. वही २।६।१८
११. वही २।३।२०, २१
१२. वही २।३।२२

पर राजा द्वारा उत्तराधिकारी को राजभवन में बुलवाया जाता था।[१] राजसभा में अन्य समस्त राजाओं के समक्ष[२] पूर्व राजा द्वारा उत्तराधिकारी को युवराज पद प्राप्त करने की सूचना दी जाती थी[३] और उसे यथोचित उपदेश भी दिया जाता था। उत्तराधिकारी को युवराज पद प्राप्त करने पर विनम्र और जितेन्द्रिय बने रहने की शिक्षा दी जाती थी।[४] उसे काम, क्रोध आदि से उत्पन्न व्यसनों को त्यागने के लिये प्रेरणा दी जाती थी।[५] उत्तराधिकारी को राज्य सम्बन्धी समस्त वृत्तान्त एवं अन्य राज्यों से सम्बन्धित घटनाओं को गुप्तचरों द्वारा जानने के लिये सचेत किया जाता था।[६] उसे यह निर्देश दिया जाता था कि मन्त्रियों एवं प्रजाजनों को प्रसन्न रखें तथा अन्नागारों और आयुधागारों को क्रमशः अन्न और शस्त्रों के संचय से परिपूर्ण करें।[७] इस प्रकार सभा में उत्तराधिकारी को प्रजारञ्जन के लिये तथा उपर्युक्त निर्दिष्ट बातों पर आचरण करने के लिये प्रेरित किया जाता था।[८]

राम के यौवराज्याभिषेकोत्सव पर राजा दशरथ ने राम को उपर्युक्त करणीय बातों की ओर ध्यान आकर्षित कराते हुये उपदेश दिया था। इसी प्रकार का उपदेश अपनी मृत्यु के समय राजा बालि ने राजापद पर अभिषिक्त होने वाले सुग्रीव और युवराज पद पर अभिषिक्त होने वाले अङ्गद को दिया था। बालि ने सुग्रीव

---

१. वा० रा० २।३।२२
२. वही २।३।२४, २५, २६
३. वही २।३।४०
४. वही २।३।४२
५. वही २।३।४२
६. वही २।३।४३
७. वही २।३।४३, ४४
८. वही २।३।४४, ४५

को कर्तव्य करने का उादेश दिया था[1] एवं अङ्गद को देशकालानुसार कार्य करने एवं इन्द्रियों पर संयम रखने के लिये सचेत किया था।[2]

इस उत्सव पर उत्तराधिकारी को नियमानुसार व्रत उपवास करने के लिये निर्देश दिया जाता था।[3] राजपुरोहित यह कार्य सम्पन्न कराता था।[4] उत्तराधिकारी सपत्नीक उपवास करता था[5] तथा देवताओं की प्रीति के लिये यज्ञ करता था।[6] सुग्रीव के राज्याभिषेकोत्सव पर मन्त्र जानने वाले ब्राह्मणों ने यज्ञ का कार्य सम्पन्न किया था।[7]

इस उत्सव पर प्रजाजनों में उत्साह एवं प्रसन्नता का वातावरण रहता था।[8] सभी प्रजाजन इस महोत्सव को देखने के लिए उत्सुक रहते थे।[9] नगर के बाहर के जनपद निवासी भी इस उत्सव को देखने के लिये नगर में एकत्रित होते थे।[10]

इस अवसर पर अभिषेक से सम्बन्धित समस्त वस्तुयें—भद्रपीठ,[11] जलयुक्त स्वर्णकलश,[12] शहद, दही, घी, खीलें, कुश, दूध, सुन्दरी कन्यायें, मत्त वारण,[13] चार अश्वों का रथ, असि,

---

१. वा॰ रा॰ ४।२२।१४
२. वही ४।२२।१६, २२
३. वही २।४।२३
४. वही २।५।४
५. वही २।५।११
६. वही २।६।२
७. वही ४।२६।२६
८. वही २।५।१७
९. वही २।५।२०
१०. वही २।६।२५
११. वही २।१४।३४, २।१५।४
१२. वही २।१५।४
१३. वही २।१४।३५, ३६

श्रेष्ठधनुष, पालकी, उज्ज्वल वस्त्र, शुभ्रचँमर, स्वर्णजटित शृङ्ग-युक्त वृषभ, सिंह, अश्व, सिंहासन, वाघाम्बर, समिधा, अग्नि, वाद्ययन्त्र, अलङ्कृतवेश्यायें, आचार्य, ब्राह्मण, गौ, हिरण, पक्षी,[1] पवित्र नदियों एवं चारों समुद्रों का जल[2] वन्दीजन सूत, मागध आदि उपस्थित रहते थे।[3] इस अवसर पर ब्राह्मण, सेनापति, नैगम एवं अन्य राजागण भी उपस्थित रहते थे।[4]

इस समय उत्तराधिकारी के लिए सम्पूर्ण राज्य हस्तान्तरित किया जाता था। राम ने पुर, पर्वत, वन, नगर ग्राम आदि से युक्त सम्पूर्ण राष्ट्र को भरत के लिए हस्तान्तरित किया था।[5] इसी प्रकार राम के वन से लौटने पर भरत ने भी कोष, कोष्ठागार, पुर, सेना आदि सहित सम्पूर्ण राष्ट्र राम को ग्रहण करने के लिए कहा था।[6] बालि ने भी वानरों का सम्पूर्ण राज्य सुग्रीव को सौंपा था।[7]

उत्तराधिकारी अभिषेक के पूर्व मित्रों एवं सभी दर्शनार्थियों और प्रजाजनों का यथोचित सम्मान करता था[8] एवं प्रजाजनों से प्रीतिपूर्वक बातचीत करके उन्हें सन्तुष्ट करता था।[9]

राज्याभिषेक के समय उत्तराधिकारी स्नानादि करके, मालायें धारण करके, सुन्दर वस्त्र धारण करता था[10] एवं आभूषणों से

१. वा० रा० २।१४।३६ से ४०; २।१५।५ से १२
२. वही २।१५।५, ६; ६।१३१।५३ आदि
३. वही २।१५।१२
४. वही २।१५।२४
५. वही २।३७।५५, ५६
६. वही ६।१३०।५५, ५६
७. वही ४।२२।५
८. वही २।१८।२७
९. वही ४।२६।२१
१०. वही ६।१३१।१५

सुसज्जित किया जाता था।[1]

राज्याभिषेकोत्सव उत्तराधिकारी की रथ यात्रा से प्रारम्भ होता था।[2] रथ में स्थित उसके ऊपर शुभ्र छत्र लगाया जाता था और चमर डुलाये जाते थे[3]। रथ के साथ जनसमुदाय जय जयकार करता हुआ चलता था।[4] रथ के आगे चन्दन और अगर से अनुलिप्त सैनिक हाथों में खड्ग और धनुष लिए हुए चलते थे।[5] रथ के पीछे अश्वों और हाथियों पर सवार एवं पैदल सहस्रों लोग चलते थे।[6] साथ ही वाद्यों का नाद होता था और बन्दीजन स्तुति करते हुए चलते थे।[7] मार्ग में मंगल कामनाएँ करती हुई स्त्रियाँ उत्तराधिकारी के ऊपर पुष्पवर्षा करतीं थीं।[8] शकुन के लिए मार्ग में स्थान-स्थान पर दही, अक्षत, हवि, लाजा, धूप, अगर, चन्दन रखा रहता था[9] एवं आशीर्वादात्मक शब्द सुनाये जाते थे।[10]

इस प्रकार रथ यात्रा नगर में होती हुई राजभवन तक समाप्त होती थी।[11] तदन्तर उत्तराधिकारी राजमहल में प्रवेश करता था।[12] वहाँ उसे रत्नजटित पीठ पर मन्त्रोच्चारणपूर्वक पूर्वाभिमुख

---

१. वा० रा० ६।१३१।१६
२. वही २।१६।२८; ६।१३१।२० आदि
३. वही २।१६।३२, ६।१३१।२८
४. वही २।१६।३३; ६।१३१।३५
५. वही २।१६।३५
६. वही २।१६।३४
७. वही २।१६।३६; ६।१३१, ३३,३७
८. वही २।१६।३७,३८
९. वही १।१७।६
१०. वही २।१७।७
११. वही २।१७।१७; ६।१३१।४३
१२. वही ६।१३१।४५

बैठाया जाता था[१] और सुगन्धित जल से ऋत्विक् ब्राह्मणों द्वारा, कन्याओं द्वारा, मन्त्रियों द्वारा तदनन्तर सैनिकों द्वारा और अन्त में नैगमों द्वारा उसका अभिषेक होता था।[२] अभिषेक शास्त्रोक्त विधि पूर्वक होता था।[३] सम्पूर्ण औषधियों के रसों से भी उसका अभिषेक कराया जाता था एवं उसे राजमुकुट धारण कराया जाता था।[४] अभिषेक के अनन्तर राजा को अनेक भेटें दी जाती थीं।[५] अन्त में अभिषिक्त राजा श्रेष्ठ ब्राह्मणों और मित्रों आदि को दक्षिणा और उपहार देकर प्रसन्न करता था।[६] इस प्रकार राज्याभिषेकोत्सव सम्पन्न होता था। यह राजनीतिक कृत्य रामायण में मांगलिक संस्कार के रूप में वर्णित है।

राजा की उपाधि एवं राजचिह्न—

रामायण काल में राज्य छोटे-छोटे थे। इस काल में राजा के लिए केवल 'राजा'[७] एवं 'महाराजा'[८] उपाधियों का ही प्रयोग किया गया है।

राजलिङ्ग—

रामायण में वर्णित राज्याभिषेकोत्सव से स्पष्ट है कि उस समय राजा के लिए विभिन्न राजचिह्न होते थे। राजचिह्नों में राजसिंहासन, राजछत्र, चँमर, रत्नजटित मुकुट, राजदण्ड एवं

---

१. वा० रा० ४।२६।३१; ६।११५।१५; ६।१३१।६०
२. वही ४।२६।३४; ६।१३१।६३
३. वही ४।२६।३३
४. वही ६।१३१।६४ आदि
५. वही ६।१३१।६६ आदि
६. वही ६।१३१।७०, ७१, ७३
७. वही १।७।२१; १।७२।२०; २।२।२
८. वही २।१४।४२, ५१; २।१८।१५; २।५७।३२

पीठिका प्रमुख थे। इनमें सिंहासन छत्र एवं चँमर का विशेष महत्त्व था।[1]

राजा की प्रतिज्ञा—

राजपद आनुवंशिक हो जाने से रामायण में राजा की प्रतिज्ञा का उल्लेख नहीं है। वैदिक साहित्य में राज्याभिषेकोत्सव के समय राजा को प्रतिज्ञा का उल्लेख मिलता है।[2] रामायण में राजा की प्रतिज्ञा का उल्लेख न होते हुए भी राजा धर्मानुसार प्रजा का पालन करने के लिए बाध्य था।[3] राजा दशरथ ने धर्मानुसार राज्य का पालन किया था।[4]

राज्याभिषेकोत्सव से सम्बन्धित वैदिक यज्ञादि की परम्परा भी इस समय लुप्त हो चुकी थी; तथापि राज्याधिरूढ़ होने के पश्चात् राम ने पौण्डरीक, अश्वमेध, वाजपेय तथा अन्य विविध यज्ञ किए थे।[5] राजा दशरथ ने भी अपने राज्यकाल में अनेक यज्ञ किए थे।[6] राजा दशरथ राजसूय और अश्वमेध यज्ञों के कर्ता कहे गये हैं।[7]

राजा पर नियन्त्रण—

रामायणानुसार राजा निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी नहीं हो सकता था। उस पर कई प्रकार से नियन्त्रण था। एक तो वह धर्म से प्रतिबद्ध था,[8] दूसरे उस पर पुरोरित, मंत्री, जनता, नियम, आचार, विचार आदि नियन्त्रण करते थे एवं उचित मार्ग निर्देशन

---

१. वा० रा० ४।२६।२३, ३०; ६।१३१।६०, ६५
२. ऐतरेय ब्राह्मण ८।३।१५
३. वा० रा० २।१००।४६
४. वही २।२।२३
५. वही ६।१३१।६०
६. वही १।६।२
७. वही २।१००।६
८. वही २।१४।२४

करते थे।[१] यदि राजा धर्म का उल्लंघन करता था और अपनी प्रजा को कष्ट देता था, तो उसे पदच्युत कर दिया जाता था। राजा सगर ने अपने ज्येष्ठ पुत्र असमञ्ज को दुष्टता के कारण देश से निष्कासित कर दिया था।[२]

धमशास्त्र की नीतियों का विभीषण द्वारा ज्ञान कराने पर राजा रावण भी हनुमान् को मृत्युदण्ड देने से रुक गया था।[३] राजा दशरथ द्वारा राम को दिया गया बनवास भी प्रजा ने निर्भीकता से अनौचित्यपूर्ण बतलाया था।[४] राजा दशरथ को भय था कि उनकी प्रजा इस कार्य को अनुचित कहकर विरोध करेगी कि वे अपनी पत्नी के भोगानन्द में पुत्र को त्याग रहे हैं।[५]

राजा रावण को निरंकुशता से बचने के लिए उपर्युक्त बन्धन थे, लेकिन वह निरंकुश था। उसने मारीच को अपने अभीष्ट की प्राप्ति के लिए अपनी बात को बलपूर्वक मनवाने के लिए विवश किया था।[६] राजा रावण मन्त्रियों, भाइयों आदि सभी से सलाह लेता था, लेकिन स्वार्थ के कारण उचित सलाह का निरादर करता था। यह उसकी निरंकुशता थी।

वस्तुत: रामायण में राजा पर नियन्त्रण के लिए उचित शिक्षा एवं अच्छे संस्कारों के आधान के निरूपण के साथ-साथ पुरोहित एवं मन्त्रियों, सभा एवं प्रजाजनों, धर्म, लोक एवं परलोक के भय आदि की मर्यादाओं का वर्णन है। यह नियन्त्रण उसे अनाचरण से बचाने के लिए पर्याप्त थे।

---

१. वा० रा० ३।४१।६, ७; ५ सर्ग ५२
२. वही २।३६।२३
३. वही ५ सर्ग ५२
४. वही २।३३।१६ आदि
५. वही २।१२।६४ से ६६, ७६, ८३, ८४
६. वही ३।४०।८, ६

राजा की दिनचर्या—

बाल्मीकि-रामायण में राजा की दिनचर्या का उल्लेख है। यह आदर्श कही जा सकती है। रामायण में राजा के कार्यों का वर्णन सम्पूर्ण दिन के काल विभाजन के अनुसार वर्णित है।

राजा प्रातःकाल संस्तुतियों, गीतों, मृदङ्गादि वाद्यों के शब्दों तथा सुन्दरियों के आभरणों की ध्वनियों आदि से जगाया जाता था।[१] जागने के पश्चात् राजा नित्य कृत्य स्नानादि से पवित्र होता था।[२] इस समय उसके लिए प्राशनीय (भोजन) की सामग्री भी उपस्थित रहती थी।[३] अतः वह प्रातःकाल का भोजन भी यथासमय करता होगा। राक्षस राजा प्रातः उठकर सुरापान करते थे।[४]

राजा प्रातःकाल में हवन करता था[५]। तत्पश्चात् देवालय में जा कर देवताओं, पितरों और ब्राह्मणों की यथाविधि अर्चना करता था।[६] इस प्रकार नित्य नैमित्तिक कर्मों एवं देवादि पूजन से निवृत्त होकर राजा बाह्य कक्ष में सभाभवन में प्रवेश करता था, जहाँ पर मन्त्री, पुरोहित, अन्य अधीन राजागण एवं उसके भ्रातागण पूर्व से ही उसकी प्रतीक्षा में उपस्थित रहते थे।[७] इसी समय नैगम, वृद्धजन एवं कुलीनजन भी सभा में उपस्थित होते थे। सभा में राजा ऋषियों से धार्मिक एवं प्राचीन वृत्तान्तों या कथाओं को सुनता था।[८] राजा सभा में न्याय का कार्य भी करता था। वह कार्यार्थियों

---

१. वा० रा० २।१४।४५, ४६; २।६५।१ आदि। वा० रा० २।८८।८, ६; ५।१८।३ एवं वा० रा० ७।३७।२
२. वही २।६५।६; ७।३७।१३
३. वही २।६५।६
४. वही ५।१८।१३
५. वही ७।३।१३
६. वही ७।३७।१४
७. वही ७।३७।१४ से १७
८. वही ७।३७ के पश्चात् प्रक्षिप्त सर्ग

को बुलवाता था और पुरोहित तथा मन्त्रियों के समक्ष पौर कार्य करता था।[1] इस समय धर्म और कर्तव्य सम्बन्धी चर्चायें भी होती थीं।[2] रामायण में राजा द्वारा प्रत्येक दिन पौर कार्य देखने पर बल दिया गया है।[3]

राजा दिन के पूर्व भाग में धर्मकार्य एवं न्याय कार्य करता था[4] एवं धार्मिक कथाओं को सुनाता था। तत्पश्चात् अपराह्न समय में प्रजाजनों के दुःख सुख आदि के विषय में राजा जानकारी प्राप्त करता था।[5] वह अपराह्न समय अन्तःपुर में भी व्यतीत करता था।[6]

राजा सायंकालीन वेला में उपवन में विनोदार्थ जाता था।[7] राजा के आहारार्थ वहाँ मान्स एवं विविध फल लाये जाते थे।[8] उपवन में राजा के मनोरञ्जनार्थ नृत्य गीत आदि भी प्रस्तुत किये जाते थे।[9] सन्ध्या के समय में राजा विधिवत् सन्ध्योपासना करता था।[10]

रात्रि के प्रथम प्रहर में राजा विविध प्रकार की कथाओं को सुनता था एवं यह समय वह हास्यकारों के मध्य बिताता था।[11]

---

१. वा० रा० ७।५३।५, ६ एवं ७।६०।२ आदि
२. वही ७ सर्ग ५३, ५४, ५५ आदि
३. वही ७।५३।६
४. वही ७।४२।२६
५. वही ७।४१।२, १७
६. वही ७।४२।२६
७. वही ७।४२।१
८. वही ७।४२।१६
९. वही ७।४२।२० आदि
१०. वही ७।३६।६३
११. वही ७।४३।१

इसी समय में राजा प्रसंगवश अपने विषय में प्रजाजनों के विचारों को जानने के लिये लोगों के समक्ष उत्सुकता व्यक्त करता था।[१] विशेष घटना घटित हो जाने पर[२] राजा अपने बन्धुओं सहित इस समय में विचार विमर्श करके तद्विषयक निर्णय भी लेता था।[३] रात्रि में राजा नृत्य, सङ्गीत और खेल का भी आनन्द लेता था।[४] रात्रि के शेष भाग में राजा विश्राम करता था।[५] रामायणानुसार राजा की उपर्युक्त रूप से ही दिनचर्या थी।

राजा के कर्तव्य—

रामायण में राजाओं को कर्तव्य पालन के लिये विषेश निर्देश हैं। 'यथा राजा तथा प्रजा' का भाव उस समय सर्वत्र व्याप्त था।[६] रामायण में राजाओं के कर्तव्यों का विवेचन अनेक स्थलों पर है। मुख्य रूप से राजा दशरथ द्वारा यौवराज्याभिषेक के समय राम को दिया गया उपदेश,[७] राम का भरत के प्रति निर्देश,[८] राम के प्रति वालि के धर्मयुक्त परुष वचन,[९] सूर्पनखा का रावण के प्रति आक्रोश[१०] और रावण को मारीच द्वारा सचेत करने के स्थल[११] स्पष्ट रूप से राजाओं को उनके कर्तव्य का ज्ञान कराने के लिये उल्लेखनीय हैं।

---

१. वा० रा० ७।४३।४
२. वही ७।४३।१८
३. वही ७।४४।१
४. वही ५।४।२६
५. वही ७।३६।६३
६. वही ७।४३।१६, २।१०६।६
७. वही २।३।४२ आदि
८. वही २ सर्ग १००
९. वही ४।१७।१३
१०. वही ३।३३
११. वही ३ सर्ग ३१ एवं ३७

रामायण में वर्णित राजा के कर्तव्य राज्य के सप्ताङ्गों से सम्बन्धित हैं। राजा का अपने प्रति कर्तव्य-राजोचित आचरण करना, राष्ट्र के प्रति कर्तव्य—राष्ट्र की बाह्य और आन्तरिक विघ्न बाधाओं से रक्षा करना, प्रजा के प्रति कर्तव्य, उसकी सुरक्षा एवं उसका हित करते हुए अनुरञ्जन करना, अमात्यों के प्रति कर्तव्य—उनकी गतिविधियों पर ध्यान देना एवं शासन के कार्यों में उनकी मन्त्रणा लेना, बल या सेना के प्रति कर्तव्य—उसकी यथोचित्त व्यवस्था करना एवं अपराधानुसार दण्ड का विधान करना, सुदृढ़ दुर्ग का निर्माण कराना, कोष को समृद्ध करना एवं सुहृद् के प्रति कर्तव्य—उसके साथ मैत्रीपूर्ण वार्ता को रखते हुए उससे राज्य के स्थायित्व एवं वृद्धि में सहायता लेना था।

इस प्रकार राजा शासन की समस्त व्यवस्था का निरीक्षण करता था और राज्य के योगक्षेम के लिये कर्तव्यों का पालन कराता था।

राजा का अपने प्रति कर्तव्य—

पाप कर्मों के दुष्परिणाम से राजागण अवगत रहते थे।[1] अतः उन्हें जितेन्द्रिय बनने के लिये एवं काम क्रोध से उत्पन्न व्यसनों का त्याग करने के लिये सचेत किया जाता था।[2] भोगों में आसक्ति का त्याग,[3] सर्वत्र जागरूक रहना,[4] चंचलता एवं असावधानी का परित्याग करना[5] एवं शम, दम, क्षमा, धर्म, धृति, सत्य, पराक्रम आदि गुणों को अपने में धारण करना राजा को अपेक्षित था।[6]

---

१. वा० रा० २।१२।८०
२. वही २।३।४२
३. वही ३।३३।२, ३
४. वही ३।३३।४
५. वही ३।३३।७
६. वही ४।१७।१७

नास्तिकता, असत्यभाषण, क्रोध, प्रमाद, दीर्घसूत्रता और आलस्य का परित्याग करना,[1] स्वेच्छाचारिता एवं निरंकुशता से दूर रहना,[2] राजदोषों-क्रोधज और कामज दोषों से सदैव बचना[3] आदि राजा के अपने प्रति कर्तव्य थे। राजा के राज्याधिकार की अहं भावना से रहित होना पड़ता था।[4] अपने को सामान्य मनुष्य मान लेना ही राजा का आदर्श था। पाप से दूर रहना,[5] निद्रा में लिप्त न रहना और समय पर जागना,[6] शठता, गर्व और प्रभुता से दूर रहना[7] भी राजा के लिए अपेक्षित था।

इस प्रकार किसी भी कार्य में प्रमाद न करना एवं अपने को संयमित रखना,[8] ये राजा के अपने प्रति प्रमुख कर्तव्य थे। कार्यों के प्रति असावधान रहने वाले एवं स्वयं कार्यों को न करने वाले राजा कार्यों को ही नहीं अपितु राज्य को भी नष्ट करने वाले कहे गये हैं।[9]

राजा के प्रजा के प्रति कर्तव्य—

राजा के स्वयं के प्रति कर्तव्य, शील, सदाचरण, जागरूकता आदि उसे प्रजा के प्रति कर्तव्य परायण बनने के लिए प्रेरित करते थे। इसी कारण वह प्रजा के प्रति कर्तव्य से च्युत होने के प्रमाद से बचने में समर्थ होता था।

---

१. वा० रा० २।१००।६६
२. वही ३।३३।२
३. वही २।१००।६८, ६९, ७०
४. वही ७।४४।१९
५. वही ४।१७।२०
६. वही २।१००।१६, १८
७. वही ३।३३।१५
८. वही ३।३३।२०
९. वही ३।३३।४

रामायणानुसार राजा के प्रजा के प्रति मुख्य कर्तव्य प्रजा की यथाशक्ति सावधानीपूर्वक रक्षा करना,[१] सदैव प्रजा के हित की कामना करना[२] एवं प्रजा रंजन करना[३] थे। प्रजानुरंजन करते हुए पृथ्वी का पालन राजा द्वारा करणीय था, जो उसके हित में था। यही उसके मित्र वर्ग को प्रसन्नता प्रदान करने वाला और उसे स्वर्ग की प्राप्ति का प्रदायक था।[४]

रामायण में राजा को चारों वर्णों के लिए अपने-अपने कार्यों में नियुक्त करने एवं उन वर्णों के हितार्थ कार्य करने के निर्देश हैं।[५] राजा द्वारा अपनी प्रजा की दैहिक, दैविक तथा भौतिक तापों से रक्षा करणीय थी।[६] उसका कर्तव्य था कि वह प्रजा को धर्म में लगाये।[७] यत्नपूर्वक सचेत रहकर अपनी प्रजा की रक्षा अपने प्राणों के समान करने वाले राजा ब्रह्मलोक में सम्मान प्राप्त करने वाले कहे गये हैं।[८] ऐसे राजा प्रजा के प्रिय बनते थे।[९] राजा को प्रतिदिन पौर कार्य करना आवश्यक था।[१०] कार्यार्थियों के प्रति न्याय न करने वाले राजा को पाप का भागी कहा गया है।[११] राजा

१. वा० रा० २।२।७
२. वही १।१।२०
३. वही २।३।४०; २।३।४३
४. वही २।३।४५, २।१००।७७
५. वही १।१।६३, १।६।१६, ५।३५।११, ६।१३१।१००
६. वही १।१।६० आदि, २।१००।४५, ४६
७. वही ६।१३१।१०१
८. वही ३।६।१२, १३
९. वही २।२।४६
१०. वही ७।५३।६
११. वही ७।५३।६, ७।५३।२५

अपने प्रति प्रजा के विचारों को जानने के लिए उत्सुक रहता था,[1] जिससे कि वह अपने प्रति प्रजा में व्याप्त अपवादों का निराकरण कर सके और प्रजा की इच्छानुसार उनका अनुरंजन कर सके। प्रजा के संतोष, कल्याण एवं सुख के लिए अपनी प्रिय वस्तु का परित्याग करना राजा का कर्तव्य था। राम ने प्रजा में व्याप्त अपवाद के कारण उनके संतोष के लिए अपनी प्रिय पत्नी सीता का परित्याग कर दिया था।[2] राजा सगर को भी जनकल्याणार्थ अपने पुत्र असमंज का देश से निष्कासन करना पड़ा था।[3] राजा को प्रजा की रक्षार्थ अपने अत्यन्त प्रिय पुत्र को भी समर्पित कर देना पड़ता था। विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षार्थ राजा दशरथ ने इच्छा न होने पर भी अपने प्रिय पुत्र राम को समर्पित किया था।[4]

राजा प्रजा की रक्षार्थ धर्मबन्धन से आबद्ध था[5] एवं धर्म के वश में था।[6] धर्म के द्वारा प्रजा की रक्षा करना ही उसका कर्तव्य था।[7] वह धर्म की वृद्धि की इच्छा से धर्म के विपरीत आचरण करने वाले को रोकता था।[8] उस समय धर्म से तात्पर्य सत्य आदि नैतिक गुणों से था।[9]

रामायण के अनुसार प्रजा पर आगत विपत्ति का कारण राजा का धर्म या कर्तव्यपरायणता के प्रति उदासीनता का भाव कहा गया है।[10] अंग देश में दुर्भिक्ष का कारण वहाँ के राजा रोमपाद

---

१. वा० रा० ७।५३।४
२. वही ७।४५।१८
३. वही २।३६।२३
४. वही १।२२।३
५. वही १।२१।७, २।१४।२४
६. वही ४।१८।३७
७. वही २।२।२५
८. वही ४।१८।६, १०, ११
९. 'आहुः सत्यं हि परमं धर्मं धर्मविदो जनाः। वा० रा० २।१४।३
१०. वही ७ सर्ग ७३, ७४

को माना गया था।[1] देश की विपत्ति का उत्तरदायी राजा ही मान्य था।

प्रजा की आय के छठे भाग को प्राप्त करने के कारण राजा प्रजा की रक्षा करने के लिए बाध्य था।[2] न केवल नगर के लोगों की अपितु अपने राष्ट्र से सम्बन्धित वनों में रहने वाले तपस्वियों की रक्षा करना भी राजा का कर्तव्य था क्योंकि वह उनसे भी उनकी तपस्या का चौथा भाग प्राप्त करता था।[3] प्रजा की आय का छठवाँ भाग 'कर' के रूप में ग्रहण कर प्रजा की रक्षा करने में असमर्थ राजा महा-अधर्मी कहा गया है।[4] रामायण में राजा को प्रजा की रक्षा पुत्रवत् करने के निर्देश दिये गये हैं।[5] राजा द्वारा प्रजा की रक्षा राजवृत्ति द्वारा करने का भी निर्देश है।[6]

निष्कर्षतः रामायणानुसार मनसा, वाचा, कर्मणा तथा धर्मानुसार प्राणों और पुत्र के समान प्रजा की रक्षा करना एवं प्रजा की नैतिक तथा भौतिक उन्नति करना राजा का कर्तव्य था।[7]

राज्य, अमात्य एवं अन्य अधिकारियों के प्रति राजा के कर्तव्य—

राजा के राज्य के प्रति सुरक्षात्मक कर्तव्य थे। राजा के समस्त कार्य राजा के द्वारा न्यायपूर्वक करणीय थे।[8] राज्य की सुरक्षा एवं उसकी व्यवस्था करके ही वह राज्य के बाहर जा सकता था। राजा भगीरथ (गंगावतरण के लिए) जब तपस्या हेतु गये थे, तो वे

---

१. वा० रा० १।६।१०, ३।३७।६, ७
२. वही ७।७४।३१
३. वही ३।६।१४
४. वही ३।६।११
५. वही ३।६।११
६. वही १।५२।७
७. वही ३।६।१२
८. वही ६।१२।३०

राज्य का प्रबन्ध मन्त्रियों को सौंप गये थे।[1] राजा राम शम्बूक की खोज के लिए जाने से पूर्व राज्य की व्यवस्था का प्रबन्ध करने के लिए भरत और लक्ष्मण को निर्देश दे गये थे।[2]

राजा का राज्य के प्रति यह भी कर्तव्य था कि वह राज्य सम्बन्धी वृत्तान्तों को जाने एवं अन्य राज्यों में घटित घटनाओं से भी अवगत हो[3] और तदनुसार कार्य करे।

अमात्यों के प्रति राजा के विभिन्न कर्तव्य थे। वह श्रेष्ठ मन्त्रियों की नियुक्ति करता था।[4] राज्य के प्रत्येक कार्य में मन्त्रियों के साथ परामर्श करना राजा का कर्तव्य था।[5] राजा को युद्ध एवं शासन के कार्यों में मन्त्रियों से मन्त्रणा करना आवश्यक था।[6] राजकार्यों का संचालन उसे मन्त्रियों की सहायता से करणीय था।[7]

राजा का कर्तव्य था कि वह केवल मन्त्रियों पर ही शासन न छोड़े, अपितु शासन के प्रति व्यक्तिगत ध्यान दे।[8] इसके अतिरिक्त मन्त्रियों को प्रसन्न रखना भी राजा का कर्त्तव्य था।[9]

मन्त्रियों के अतिरिक्त राजा के कर्तव्य अन्य अधिकारियों से भी सम्बन्धित थे। स्वामिभक्त सेनापति की नियुक्ति करना,[10] बुद्धिमान दूतों का चयन करना,[11] विभिन्न पदाधिकारियों के विषय

---

१. वा० रा० १।४२।१२
२. वही ७।७५।९
३. वही २।३।४३
४. वही २।१००।१६
५. वही २।२।१, २।१००।१९
६. वही ६।२।१८, ६।१२।२८
७. वही २।११५।२२
८. वही ४।२९।५ आदि
९. वही २।३।४३
१०. वही २।१००।३१
११. वही २।१००।३६

में जानकारी प्राप्त करते रहना[1] शत्रुओं के प्रति सचेत रहना,[2] अधिकारियों के प्रति प्रेम का वर्ताव करना एवं उनका अपमान न करना[3] आदि अधिकारियों से सम्बन्धित राजा के कर्तव्य थे।

राजा के अन्य राज्यांगों से सम्बन्धित कर्तव्य—

रामायण में राजा के दण्ड, कोष और मित्र राज्यांगों से सम्बन्धित कर्तव्यों का भी उल्लेख है। रामायण में राजा को दण्ड विधान के प्रति सचेत रहने का निर्देश है।[4] वह दण्डधारी था।[5] पापी को दण्ड न देने से वह स्वयं पाप का भागी कहा गया हैं।[6] अपराधी को दण्ड देने वाला राजा स्वर्गाधिकारी कहा गया है।[7] राज्य में दण्ड की व्यवस्था को बनाए रखना,[8] दुष्टों के प्रति दण्ड का प्रयोग करना,[9] अनपराधी को दण्ड न देना,[10] एवं दण्ड देने में स्वेच्छाचारी न होना[11] आदि दण्ड से सम्बन्धित राजा के कर्तव्य थे।

न्याय सम्बन्धी राजा के कर्तव्य बड़े महत्त्वपूर्ण थे। राजा न्यायपालिका का प्रधान था।[12] उससे यह अपेक्षा थी कि वह

---

१. वा० रा० २।१००।३७
२. वही २।१००।३८
३. वही २।१००।२८, ३५
४. वही २।१००।७१, ७।७६।१०
५. वही ३।१।१७
६. वही ४।१८।३४, ७।७६।६
७. वही ४।१८।३२
८. वही ७।१७।३०
९. वही ४।२१।१५, १६
१०. वही ४।१७।१७, २७, ७।७६।८
११. वही ४।१७।३२, ३३
१२. वही ३।१।१७

प्रतिदिन न्यायालय में उपस्थित होकर प्रजा के प्रति उचित न्याय करे।[1] प्रजा को राजा से दान, दया, सम्मान एवं न्याय की अपेक्षा रहती थी।[2]

उचित दण्ड एवं न्याय की व्यवस्था करने के अतिरिक्त राजा को अपने कोष को समृद्ध रखना अपेक्षित था। उसे राज्य की आय को व्यय से अधिक रखना[3] एवं धन, धान्य, आयुध, जल यन्त्र आदि आवश्यक वस्तुओं के आगारों को परिपूर्ण रखना[4] अपेक्षित था। रामायण में राजा को अन्नागारों और आयुधागारों को परिपूर्ण रखने के लिए निर्देश हैं।[5]

राजा को प्रजा का धन अनियमानुसार लेने का अधिकार नहीं था।[6] उसे राज्य की समुचित व्यवस्था रखने के लिए आय व्यय का लेखा रखना पड़ता था।[7] राज्य की आय का सही रूप से व्यय करना राजा का कर्तव्य था। वह राज्य की आय को अपात्रों में व्यय नहीं कर सकता था।[8] उचित कार्यों एवं उचित पात्रों में ही धन का व्यय करना राजा का कर्तव्य था।[9] राजा प्रजा के धन को अपने मनोरञ्जन के लिए व्यय नहीं कर सकता था।[10] वह किसी भी व्यक्ति से लालचवश भेंट के रूप में कुछ भी वस्तु

---

१. वा० रा० २।१००।५८, ७।५३।६
२. वही ३।१।१७, ४।१७।१७
३. वही २।१००।५५
४. वही २।३।४४, २।१००।५४
५. वही २।३।४४
६. वही २।१००।२६
७. वही २।१।२६
८. वही २।१००।५५
९. वही २।१००।५६
१०. वही २।१००।५५

स्वीकार नहीं करता था।[1] राजा का यह कर्तव्य सराहनीय था क्योंकि उक्त भावना राज्य में भ्रष्टता को रोकने के लिए आवश्यक थी। इस प्रकार राजा के न्याय, दण्ड एवं आय और व्यय सम्बन्धी कर्तव्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थे।

राजा के 'वल' और 'युद्ध' सम्बन्धी भी अनेक कर्तव्य थे। सेना को वेतन और भोजन से सन्तुष्ट रखना,[2] उन्हें उपहार से प्रसन्न करना,[3] और भली प्रकार निश्चयपूर्वक तथा समयानुसार युद्ध का प्रारम्भ करना[4] तथा सुहृद् को वचनबद्ध होकर सहायता करना[5] एवं अपनी विजय तथा राज्य के कल्याणार्थ मित्र से सहायता लेना[6] आदि राजा के सेना, युद्ध और सुहृद् से सम्बन्धित कर्तव्य थे।

उपर्युक्त कर्तव्यों के अतिरिक्त राजा के लोक कल्याणार्थ सामाजिक एवं धार्मिक कर्तव्य भी थे। राज्य में मार्गों की व्यवस्था करना,[7] प्रकाश की सुविधा देना,[8] व्यापार की वृद्धि करना,[9] कृषि एवं पशुपालन की ओर ध्यान देना,[10] सिंचाई की सुविधा प्रदान करना,[11] प्रजा के मनोरंजनार्थ साधन उपलब्ध कराना[12]

---

१. वा० रा० ७।७६।३५
२. वही २।१००।३३
३. वही २।१२५।६, ९
४. वही ६।१३।७, ६।३५।८
५. वही ४ सर्ग ७, ८
६. वही ६ सर्ग १९
७. वही १।५।७, २।६।१७, २।१७।४, ८५
८. वही २।६।१८
९. वही १।५।१४
१०. वही २।१००।४८
११. वही २।१००।४६
१२. वही १।५।१२, १८

एवं प्रजा के धार्मिक भाव को जाग्रत करने के लिए तथा उनके नैतिक उत्थान के लिए धार्मिक यज्ञों का अनुष्ठान कराना[१] आदि भी राजा के महत्त्वपूर्ण कर्तव्य थे।

निष्कर्षतः रामायणानुसार राजा का कर्तव्य अपने चरित्र की रक्षा के साथ साथ स्वजन और प्रजाजनों की रक्षा करना था एवं एवं धर्म की रक्षा करते हुये[२] प्रजा को किसी प्रकार कष्ट न पहुँचाना था।[३]

रामायण में राजा को कर्तव्य पालन के लिये सचेत करते हुये उल्लिखित है कि जो राजा कर्तव्य का यथावत् पालन नहीं करता है वह राज्यच्युत होने के कारण तुच्छता को प्राप्त करता है।[४]

स्पष्ट है कि रामायण में राष्ट्र की चतुर्मुखी समृद्धि हेतु एवं उसके स्थायित्व के लिये राजा के कर्तव्यों का विस्तृत वर्णन किया गया है। रामायणानुसार राजा भोगों को भोगने की ही मूर्ति नहीं था, अपितु वह प्रजा की सुरक्षा, सम्पन्नता, सुख औरसुविधा एवं अनुरंजन का मूल आधार था। 'राजा' प्रजा की नैतिक एवं भौतिक उन्नति करने का उत्तरदायी था।

राजा के अधिकार—

रामायण में राजा के कर्तव्यों के साथ साथ उसके अधिकारों का भी उल्लेख है। उसे युवराज का चुनाव करने,[५] मन्त्रियों की नियुक्ति करने,[६] राजाज्ञा का उल्लंघन करने पर मन्त्रियों को

---

१. वा० रा० १।६।२, २।१००।६ एवं ६।१३१।६०
२. वही ५।३५।७
३. वही ७।८३।२०
४. वही ३।३३।१७
५. वही २।१।४१
६. वही २।१००।१६

दण्डित करने,[1] सेनापति को नियुक्त करने,[2] न्याय और दण्ड के विषय में प्रधान बनने,[3] युद्ध की घोषणा करने और राजसुख का यथोचित उपभोग करने[4] आदि का अधिकार था।

राजा के लिए सुख-सुविधाओं और मनोरञ्जन के साधन—

राजा राज्य के प्रति पूर्ण रूप से उत्तरदायी था एवं राज्य के प्रति उसके विशद कर्तव्य थे, अतः राज्य के द्वारा उसे उन कर्तव्यों की पूर्ति के उपलक्ष में सुख सुविधायें भी प्राप्त थीं।

रामायणानुसार राजा को राजधानी में वैभवपूर्ण राजप्रासाद उपलब्ध था। उस प्रासाद में विशाल अट्टालिकायें,[5] उद्यान एवं आमोद प्रमोद के स्थल भी थे। राजाओं के भवन 'प्रासाद' या 'विमान' कहे जाते थे। ये विशाल एवं उन्नत थे।[6] प्रासाद में कई प्राङ्गण[7] एवं अन्तःपुर होते थे।[8] प्रासाद का वाह्य कक्ष न्यायालय या राजसभा के लिये था।[9] मध्यम कक्ष में राजा अपने भाइयों एवं मन्त्रियों के साथ विचार विमर्श करता था।[10] इसमें उत्सव आदि भी सम्पन्न होते थे।[11] प्रासाद के अन्तिम कक्ष में या अन्तःपुर

---

१. वा० रा० ३।४०।६
२. वही २।१००।३१
३. वही ३।१।२७
४. वही ७।७४।३२
५. वही २।१५।३१, ४।३३।१४, ५।६।४३
६. वही ५।७।२, ५
७. वही २।१७।२०, २१, ४।३३।१८
८. वही ५।७।२
९. वही ७।३७।१४
१०. वही ७ सर्ग ४४
११. वही २।३।१६

में रानियाँ रहती थी[1] एवं राजा भी निवास करता था।[2] इसी कक्ष से संलग्न राजा के मनोरंजनार्थ आनन्दोद्यान या प्रमदवन होता था। इसमें राजा और रानी या प्रासाद की महिलायें भी विचरण करती थीं। इन राजभवनों में अनेक चित्र विचित्र लतागृह, चित्रशालायें, क्रीड़ागृह, रतिगृह और रम्यविश्रामगृह होते थे।[3] राजभवन में हवन के लिये वेदियाँ भी होती थी।[4]

राजभवन सम्पत्ति एवं विलासिता की सामग्री से युक्त होते थे।[5] इनका उपभोग केवल राजा ही सपरिवार करता था। राजप्रासाद अत्यन्त समृद्ध एवं हाथीदाँत, स्वर्ण, स्फटिक, वैदूर्य आदि मणियों से अलंकृत थे।[6] राजा के बैठने के लिये राजभवन में स्वर्णजटित सिंहासन भी उपलब्ध था।[7]

राजा को अपने वैभव एवं पद के अनुरूप वस्त्राभूषण उपलब्ध थे। उसे सुविधा के लिये हाथी, अश्व एवं रथादि प्राप्त थे।[8] उसे उत्तम भोज्य पदार्थों का सुख उपलब्ध था।[9] राजा के राजभवन में उसकी सुख-सुविधा के लिये द्वारपाल, प्रतिहारी एवं अनेक सेवक उपलब्ध थे।[10] राजभवन में राजा की सुरक्षार्थ पहरा रहता

---

१. वा० रा० ४।३३।१८, २१
२. वही ४ सर्ग ३३
३. वही ५।६, ३६, ३७
४. वही ५।६।१२
५. वही ५ सर्ग ७
६. वही २।१५।३२, ५।४।२६, ५।६।४, १४, ५।७।६, ४ सर्ग ३३
७. वही ४।३४।३
८. वही ५।४।२६, २७; ५।६।६
९. वही ५।६।४२, ७।४२।१६
१०. वही ४।३३।२३, ७।३७।१२

था।[1] इस प्रकार राजा को राज्य की ओर से सुख सुविधा एवं भोगविलास की समस्त सामग्री उपलब्ध था। राजा अपने सुख के लिये अनेक रानियाँ भी रखते थे।[2]

रामायण में राजा के मनोरञ्जनार्थ मृगया, जलक्रीड़ा, सङ्गीत, नृत्य, वाद्य आदि का उल्लेख है[3] एवं हास्यकारों द्वारा राजा के मनोविनोद एवं उसके लिये अन्तःपुर में समस्त सुख सामग्री का भी वर्णन है।[4] रामायणानुसार तत्कालीन राजाओं के मनोविनोद का प्रमुखसाधन मृगया था। दशरथ, रावण, राम, इल आदि नरेश रामायण में शिकार खेलते हुये वर्णित हैं।[5] राजाओं के मनोविनोद का दूसरा साधन सङ्गीत, नृत्य आदि था। राजा राम हास्यकारों से घिरे रहते थे।[6] वन्दीजनों द्वारा किया गया यशगान भी राजाओं का मनोरञ्जन करता था। राजाओं के मनोरञ्जन के लिये उनकी स्तुति और वंशावली का वर्णन करने वाले सूत एवं मागध आदि थे।[7] उद्यान और क्रीड़ागृह आदि भी राजा के मनोरञ्जनार्थ थे।

राजा का वेतन—

राजा को सुखोपभोग के लिये निर्धारित वेतन प्राप्त होता था। वह प्रजा की आय के छठवें भाग को प्राप्त करता था[8] एवं उसका अपने सुख के लिये तथा प्रजारञ्जनार्थ उपयोग करता था।

---

१. वा० रा० ४।३३।१६, ५।४।२८, ३४; ५।६।३
२. वही २।१०३।३, ४।२०।२०, ४।३४।३६, ५।६।६
३. वही ४।३३।२४, ५।६।४२, ४३
४. वही ५।६।१२, ७।४३।१
५. वही २।४९।१५, २।६३।२०, २१, ७।१२।३, ७।८७।८
६. वही ७।४३।२
७. वही २।१४।४५, ४६, २।८८।८, ९; २।६५।१ आदि, ५।१८।३
८. वही ३।६।११, १४; ७।७४।३१

इस प्रकार राज्य के प्रति कर्तव्यपालन एवं प्रजा के हित और रक्षा हेतु राजा को उपयुक्त सुविधायें राज्य की ओर से प्राप्त थीं।

राजा की दिग्विजय—

राजसिंहासन पर आरूढ़ होने पर राजा दिग्विजय प्रारम्भ करता था। रावण ने राजसिंहासन पर आसीन होने के अनन्तर लोकों को जीतना प्रारम्भ कर दिया था।[१] राम ने अश्वमेध यज्ञ करके विजय का अश्व छोड़ा था।[२] राजा सगर ने भी अश्वमेध यज्ञ का अश्व विजयार्थ छोड़ा था[३]। इस प्रकार रामायण में राजा की दिग्विजय के उल्लेख मिलते हैं।

राजा की निरंकुशता—

जैसा कि पूर्व में उल्लेख है कि रामायणानुसार तत्कालीन राजतन्त्र सम्वैधानिक थे। राज्य के संचालन में राजा के साथ साथ प्रजा का भी हाथ था, अत: राजा स्वेच्छाचारी नहीं हो पाता था। तथापि अपवाद के रूप में राजा रावण अपने व्यवहार में निरंकुश था। वह मन्त्रियों से सलाह लेता था, लेकिन उन मन्त्रियों के विचार ही उसे मान्य थे, जो उसका विरोध नहीं करते थे। जो भी मन्त्री विरोध करता था, वह उसे दोषी ठहराता था। मारीच द्वारा उचित सलाह पाने पर भी रावण ने उसे दोषी कहा एवं अपनी बात मनवाने को विवश किया था।[४] इसी प्रकार सत्य एवं उचित बात कहने पर शुक और सारन को भी रावण का अपमान सहना पड़ा था।[५] विभीषण की रावण के मत में सहमति न होने पर उसे

१. वा० रा० ७ सर्ग १३ आदि
२. वही ७ सर्ग ९२ आदि
३. वही १ सर्ग २९
४. वही ३।४०।९, २६, २७
५. वही ६।२९।३ आदि

भी रावण द्वारा अपमानित होना पड़ा था।[1] इस प्रकार रामायण में राजा की निरंकुशता भी दृष्टव्य है।

राजा का देवत्व—

वैदिक साहित्य में राजा के देवत्व की भावना नहीं थी। डा० अलतेकर ने लिखा है कि 'राजा के देवत्व की भावना, जो ईसा की प्रथम शताब्दी में सर्वमान्य थी, वैदिक काल में वर्तमान न थी। उस काल में राजा का पद पूर्णतः लौकिक था'[2]। रामायणानुसार राजा में देवत्व मान्य हो गया था। रामायण में उल्लेख है कि राजा पृथ्वी पर देवता स्वरूप हैं।[3] वह पंचदेवताओं के रूप को धारण करने वाला है।[4] वह देवताओं के अंश से उद्भूत[5] एवं उनसे भी श्रेष्ठ कहा गया है।[6]

राजा के दोष—

रामायण में राजपद वंशानुगत[7] हो जाने से तथा राजा को देवांशों से उद्भूत,[8] देवतावत्[9] एवं देवों से भी श्रेष्ठतर मान लेने से[10] राजागण अपने को प्रजा से बहुत बड़ा मानने लगे थे। वे सामान्य प्रजा से ही नहीं, अपितु मन्त्रियों से भी अनपेक्षित सम्मान

---

१. वा० रा० ६।१६।१५
२. प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृ ६४
३. वही ४।१८।४४
४. वही ३।४०।१२
५. वही ७।७६।४२ आदि
६. वही २।६७।३५
७. वा० रा० २।७६।५, ४।६।३
८. वही ६।७६।४२ आदि; ३।४०।१२
९. वही ४।१८।४४
१०. वही २।६७।३५

प्राप्त करने की अपेक्षा करने लगे थे। वे अपने को देवतत्त्व कहकर[१] अपनी महत्ता को प्रकट करते हुये अपनी आज्ञा का बलपूर्वक पालन कराने के लिये मन्त्रियों को विवश करते थे।[२] राजा शब्द का आश्रय लेकर वे अपने को पूज्य एवं सम्माननीय घोषित करते थे।[३] इस प्रकार वे अपनी आज्ञा को अनुलङ्घनीय बताते थे।[४] उपर्युक्त प्रवृत्ति राक्षस राजा रावण में दृष्टिगोचर होती है।

वस्तुतः रामायण में राजागण समय-समय पर राजदोषों से अवगत कराये गये हैं। उन्हें इन दोषों से बचने के लिये निर्देश एवं उचित मन्त्रणा दी जाती थी। राम को राजा दशरथ द्वारा,[५] भरत को राम द्वारा[६] सुग्रीव को हनुमान् द्वारा[७] तथा राजा रावण को मारीच द्वारा[८] राजधर्म का पालन करने की प्रेरणा दी गई थी।

राजा का अधिकार परित्याग—

रामायण में चतुराश्रम व्यवस्था का उल्लेख है।[९] राजा भी क्षत्रिय धर्म का पालन करके वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करता था और तपस्या हेतु वन में जाता था।[१०] वृद्ध होने पर राजा स्वयं राजपद से अवकाश ग्रहण करने की इच्छा करता था।[११] राजा दशरथ ने वृद्ध होने पर अपने अधिकार को त्यागने की इच्छा व्यक्त की थी।[१२] इसी प्रकार राज्याधिकार से अवकाश प्राप्त करके

---

१. वा० रा० ३।४०।१२; ४।१८।४४
२. वही ३।४०।१०
३. वही ३।४०।१३
४. वही ३।४०।९
५. वही २।३।४२ आदि
६. वही २।१००
७. वही ४।२९।५ आदि
८. वही ३ सर्ग ३७, ४१
९. वही २।१०६।२२
१०. वही २।२३।२६
११. वही २।२।८
१२. वही २।२।८

अंशुमान ने भी हिमालय पर तपस्या के लिये जाकर वानप्रस्थ आश्रम का पालन किया था।[1] राजा नृग ने अपने पुत्र वसु को राज्याधिकार देकर राजपद से अवकाश ग्रहण किया था।[2]

इस प्रकार राजा राज्याधिकार एवं सुखोपभोग की इच्छा से राज्य से अपने जीवन के अन्त तक आसक्त नहीं रहता था, अपितु प्रजापालन के कर्तव्य को पूर्ण करके राजपद से स्वयं ही अवकाश ग्रहण करता था। यह तत्कालीन राजा का आदर्श था।

रामायण में राजा का महत्त्व—

शुक्रनीति में राजा राज्य रूपी वृक्ष का मूल कहा गया है।[3] मानव धर्मशास्त्र के अनुसार धर्म की स्थापना के निमित्त ही राजपद का निर्माण हुआ था।[4] भीष्म ने राजा की आवश्यकता एवं उसका महत्त्व समाज की सुस्थिति एवं उत्कर्ष के लिये मान्य किया है।[5]

वाल्मीकि ने राजा के महत्त्व और उसकी आवश्यकता पर व्यापक प्रकाश डाला है। रामायण में राजा से रहित राज्य में अराजकता की स्थिति से उत्पन्न अभिशापों का वर्णन है।[6] कृति में निर्दिष्ट है कि राजा के बिना राज्य का विनाश हो जाता है।[7] रामायणानुसार राजधर्म सत्यस्वरूप है, जिस पर ही समस्त लोक आधारित है।[8]

रामायण में राजा प्रजा के सर्वस्व के रूप में वर्णित है। उसे

१. वा० रा० २।४२।३
२. वही ७।५४।८, १८
३. शुक्रनीतिसार ५।१२
४. मनु का राजधर्म, पृ० २०
५. भीष्म का राजधर्म पृ० ३१
६. वही २।६७।८ आदि
७. वही २।६७।८
८. वही २।१०६।१०

प्रजा का माता पिता, हितैषी,[१] धर्म, जीवन और कल्याण को देने वाला[२] कहा गया है। वह राष्ट्र के सत्य एवं धर्म का प्रभव स्थान, सत्य और धर्म का प्रवर्तक एवं कुलीनोचित कुलाचार के प्रवर्तक के रूप में वर्णित है।[३] इसीलिये राजा को देवता के समान,[४] सभी अवस्थाओं में पूज्य तथा सम्माननीय[५] कहा गया है भलीभाँति कर्तव्य पालन करने वाला राजा यम, कुबेर, इन्द्र और वरुण से भी श्रेष्ठतर कहा गया है।[६] इस प्रकार रामायण काल में राजा का महत्त्व बहुत अधिक बढ़ गया था।

राम एक आदर्श राजा—

राजा राम रामायण में एक आदर्श राजा के रूप में वर्णित हैं। चतुर्मुखी व्यक्तिव से युक्त राजा राम पूर्ण पुरुष थे। वे पूर्ण स्वस्थ, शक्ति सम्पन्न, तेजस्वी, धृतिमान्, धर्मशील एवं धर्मरक्षक, सत्यसन्ध, संयमी, विनम्र सचरित्र, सत्यप्रतिज्ञ, कृतज्ञ, विद्वान्, बुद्धिमान्, प्रियवादी, शीलसम्पन्न एवं सर्वज्ञ थे।[७]

राजा राम प्रजातन्त्र के समर्थक थे। उनकी दृष्टि में प्रजा के समस्त प्राणी समान थे। उनकी प्रेरणा से प्रेरित होकर समस्तवर्ण अपने अपने कर्तव्य पालन में तत्पर रहते थे।[८] वे सभी के प्रति न्याय करते थे तथा प्रतिदिन स्वयं पौरकार्य देखते थे।[९] वे सदैव प्रजा के पालन एवं प्रजा के हित में तत्पर रहते थे।[१०] वे अपने प्रति प्रजा

---

१. वा० रा० २।६७।३४
२. वही ४।१८।४३
३. वही २।६७।३४
४. वही ४।१८।४४
५. वही ३।४०।१३
६. वही २।६७।३५
७. वही १।१।८, ६-१४ एवं २।२।२६, ३१, ३५
८. वही १।१।६३ एवं ७।१३१।१००
६. वही ७।५३।५, ६
१०. वही १।१।१२, २० एवं २।२।४६

के विचारों को जानने के लिये उत्सुक थे।[१] राजा राम प्रजा के सुख, संतोष और अनुरञ्जन के लिये अपने हित या प्रिय का परित्याग करने में संकोच नहीं करते थे।[२] नाटककार भवभूति कृत उत्तररामचरित में उल्लिखित राम का यह कथन, "लोकरञ्जन के लिए अपना समस्त सुख और अपनी प्रिया सीता का परित्याग करने में मुझे कोई कष्ट नहीं है,"[३] वाल्मीकि-रामायण के तत्सम्बन्धि उल्लेखों की पुष्टिमात्र है। रामायण के अनुसार राम अपनी प्रजा एवं मन्त्रियों आदि को प्रसन्न रखना अपना परम धर्म मानते थे।[४]

राजा राम राजदोषों से अवगत थे।[५] अतः वे उनसे दूर रहते थे। उन्होंने भरत को भी राजदोषों से दूर रहने के लिये प्रेरणा प्रदान की थी।[६] वे राज्याधिकार से उत्पन्न अहंकार आदि विकारों से रहित थे। वे अपने को राज्य का अधिकारी नहीं मानते थे। वे राज्य का अधिकारी अपने भ्राताओं एवं प्रजाजनों को बताते हुए[७] श्रेष्ठ आदर्श उपस्थित करते थे। राजा होते हुए वे अपने को सामान्य मनुष्य की कोटि में रखते थे।[८]

राजा राम प्रजा पर आगत विपत्ति के लिये अपने को उत्तरदायी मानकर उसके निवारणार्थ पूर्णतः प्रयास करते थे।[९] वे इस बात से अवगत थे कि प्रजा राजा के समान आचरण करती है।[१०] अतएव

---

१. वा० रा० ७।४३।४
२. वही ७।४५।१६
३. उत्तररामचरितम् १।१२
४. वही १।१।८८
५. वही २।१००।६८
६. वही २।१००।६८ आदि
७. वही २।४।४४ एवं ७।४४।१९
८. वही ६।१२०।१२
९. वही ७ सर्ग ७५, ७६
१०. वही २।१०९।९

वे प्रजा के समक्ष अपने आदर्श उपस्थित करते थे। इस प्रकार राजा राम रामायण में एक आदर्श राजा के रूप में वर्णित हैं। वे प्रजा द्वारा अनुकरणीय[1] एवं प्रजा के प्रिय थे।[2] आज भी उनके आदर्श अनुकरणीय हैं।

राम-राज्य का आदर्श—

आदर्श राजा राम का राज्य भी आदर्श था। रामराज्य की सम्पूर्ण प्रजा दैहिक, दैविक एवं भौतिक संतापों—रोग, दुर्भिक्ष, चौरभय, अग्निभय, शोक आदि से रहित थी।[3] सम्पूर्ण प्रजाजन सन्तुष्ट, धर्मपरायण एवं कर्तव्यनिष्ठ थे।[4] प्रजाजनों में परस्पर हिंसात्मक प्रवृत्ति एवं द्वेष का भाव न था।[5] सम्पूर्ण राष्ट्र धन-धान्य से समृद्ध था।[6] सम्पूर्ण प्रजा लालच से रहित होकर अपने कर्तव्यों में अनुरत थी।[7] प्रजाजन झूठ आदि अवगुणों से रहित एवं सम्पूर्ण सद्गुणों से सम्पन्न थे।[8]

इस प्रकार राम राज्य में समस्त प्रजा समस्त व्याधियों से मुक्त, सब प्रकार से समृद्ध, समस्त अच्छे लक्षणों से सम्पन्न, अवगुणों से रहित एवं धर्म कार्य में अनुरक्त थी। आदर्श राजा के आदर्शों के अनुकरण से प्रजा भी आदर्श थी। आधुनिक समाज द्वारा तत्कालीन राज्यादर्श अनुकरणीय हैं।

मन्त्री—

रामायण में मन्त्री राजा के सलाहकार एवं मन्त्रकार के रूप

---

१. वा० रा० २।४५।१
२. वही २।२।३३, ४५, ४६
३. वही १।१।८६, ९० एवं ६।१३१।९४, ९५
४. वही १।१।८८, ९१ एवं ६।१३१।९६
५. वही ६।१३१।९६
६. वही १।१।९१
७. वही ६।१३१।१००
८. वही ६।१३१।१०१

में वर्णित हैं।[1] रामायण में योग्य मन्त्रियों की उचित मन्त्रणा राजा की विजय का मूल कही गई है।[2] राज्य के स्थायित्व में, शासन के कार्यों के संचालन में, राजा के निर्वाचन एवं अभिषेक में तथा युद्ध और शान्ति सम्बन्धी विषयों में राजा के लिए मन्त्रियों की मन्त्रणा एवं सहायता अपेक्षित थी। मन्त्रिपरिषद् राजा की सहायतार्थ मुख्य संस्था थी। शासन सम्बन्धी प्रत्येक कार्य में राजा को मन्त्रियों से मन्त्रणा लेना आवश्यक एवं राज्य के हित में था।[3]

रामायणानुसार मन्त्री राजा का सबसे बड़ा सहायक था। मन्त्रियों की स्थिति राजा के पदासीन होने के पहले भी रहती थी। राजा राज्य का प्रधान अवश्य था, लेकिन राजनीतिक जीवन की सफलता मन्त्रियों के ऊपर निर्भर थी। राजपुरोहित, जो कि मन्त्री ही होता था, राज्य के सभी कार्यों में अपना प्रमुख हाथ रखता था। राजा भी उसकी आज्ञा का उल्लङ्घन नहीं कर सकता था। राजपुरोहित प्रधानमन्त्री था एवं उसका स्थान राजा के बाद का ही था। राजा यद्यपि राजनीति का प्रधान था, लेकिन राजनीतिक जीवन की सफलता मन्त्रियों के ऊपर निर्भर थी।

मन्त्रियों की जाति—

रामायण में वर्णित मन्त्रिमण्डल से स्पष्ट होता है कि उसमें दो वर्ग हैं—एक अमात्य वर्ग और दूसरा मन्त्रिवर्ग। रामायण में कहीं कहीं इन दोनों को ही मन्त्री कहा गया है। लेकिन इनके कर्म एवं पद से इनमें भेद स्पष्ट है। राजा दशरथ के धृष्टि, जयन्त आदि आठ अमात्य थे।[4] यह क्षत्रिय जाति के रहे होंगे, क्योंकि इन्हें

१. वा० रा० २।१००।१७
२. वही २।१००।१७
३. वही ३।३७।२३
४. वही १।७।३

दृढ़विक्रम, शूर, वीर आदि क्षत्रियोचित गुणों से सम्पन्न कहा गया है।[1] राजा दशरथ के मन्त्रीगण वसिष्ठ, वामदेव, जावालि आदि ऋषि ब्राह्मण थे।[2]

राजा रावण के मन्त्री भी क्षत्रिय वर्ण के रहे होंगे या ब्राह्मण होने पर भी कर्म से क्षत्रिय रहे होंगे। राजा रावण की दिग्विजय में उसके मन्त्री उसके साथ युद्ध में संलग्न रहते थे।[3] राजा कार्तिवीर्य के मन्त्रियों ने भी रावण के सेनापतियों के साथ युद्ध किया था, अतः उनकी जाति भी क्षत्रिय रही होगी।[4] वानर राजाओं के मन्त्री भी क्षत्रियोचित गुणों से युक्त थे। हनुमान्, जो कि सुग्रीव के मन्त्री थे, युद्ध में शूरकर्मा थे।[5]

इस प्रकार रामायण में वर्णित मन्त्रिमण्डल का एक वर्ग, जो शासन के संचालन में सहायक होने के साथ साथ युद्ध में रुचि रखता था एवं राजा को मन्त्रणा भी देता था, विशेष रूप से अमात्य वर्ग था। यह क्षत्रिय वर्ण का रहा होगा। मन्त्रिमण्डल का दूसरा वर्ग, जो राजा को केवल मन्त्रणा देने का ही कार्य करता था, ब्राह्मण जाति का होगा।

मन्त्रियों की नियुक्ति—

रामायणानुसार मन्त्रियों की नियुक्ति राजा द्वारा होती थी। मन्त्रियों का आधार उनकी विश्वासपात्रता, धैर्य, विद्वत्ता, सचरित्रता, कुलीनता आदि गुण थे।[6] वे वंशपरम्परा एवं श्रेष्ठता के आधार पर नियुक्त किये जाते थे।[7] इस प्रकार मन्त्रीगण वंश-

---

१. वा० रा० १।७।५, १५; १।६७।१०; २।१००।१५
२. वही २।६७।२, ३
३. वही ७।१४।१ आदि
४. वही ७।३२।२६, ३२
५. वही ४।३।२७ एवं ५ सर्ग ४५-४७
६. वही २।१००।१६
७. वही २।१००।२७

परम्परा से नियुक्त किये जाते थे और उनकी नियुक्ति के लिये योग्यता अनिवार्य थी।

मन्त्रियों की संख्या—

रामायण में मन्त्रियों की संख्या की सीमा का उल्लेख नहीं है। राजा दशरथ के अमात्यों की संख्या इसमें आठ उल्लिखित है—धृष्टि, जयन्त, विजय, सिद्धार्थ, अर्थसाधक, अशोक, मन्त्रपाल और सुमन्त्र।[1] राजा राम के भी यही आठ सचिव कहे गये हैं।[2] राम के दो अमात्यों का नाम दशरथ के दो अमात्यों से भिन्न बताया गया है। राम के मन्त्रिमण्डल में राजा दशरथ के दो मन्त्रियों—अर्थसाधक और मन्त्रपाल के स्थान पर राष्ट्रवर्धन और धर्मपाल थे।

राजा दशरथ और राम के मन्त्रिमण्डल में उपर्युक्त अमात्यों के अतिरिक्त वसिष्ठ, वामदेव, मार्कण्डेय, मौद्गल्य, कात्यायन, कश्यप, गौतम और जावालि भी शामिल थे।[3] राम के मन्त्रिमण्डल में वसिष्ठ आदि ब्राह्मणों के अतिरिक्त नारद भी सम्मिलित थे।[4] इनमें वसिष्ठ का पद राजपुरोहित का था।[5]

रामायण में रावण के मन्त्रियों की संख्या का निश्चित उल्लेख नहीं है। रावण की दिग्विजय में उसके साथ मारीच, प्रहस्त, महापार्श्व, महोदर, अकम्पन, निकुम्भ, शुक, सारण, संह्लाद, धूमकेतु आदि अमात्यगण थे।[6] रावण के चार मन्त्री-दुर्धर, प्रहस्त, महापार्श्व और निकुम्भ परामर्श देने में निपुण एवं मन्त्रज्ञ कहे गये हैं।[7]

---

१. वा० रा० १।७।३
२. वही ७ सर्ग ५६ के आगे अधिक पाठ सर्ग ३ श्लोक २६
३. वही १।७।४ एवं २।६७।३
४. वही ७।७४।३, ४
५. वही २।६७।४
६. वही ७।२७।२७-३१
७. वही ५।४६।११

रामायण में वानर राजाओं के मन्त्रियों की संख्या का भी निर्धारण नहीं किया गया है। सुग्रीव के राज्याभिषेकोत्सव पर उनके मन्त्री—गव, गवाक्ष, शरभ, गन्धमादक, मेन्द, द्विविद, हनुमान् और जाम्बवान उपस्थित थे।[१]

अतः स्पष्ट है कि रामायण में मन्त्रियों की संख्या का निर्धारण नहीं है।

मन्त्रियों के प्रकार—

रामायण में मन्त्रियों के लिए मन्त्री, अमात्य एवं सचिव का प्रयोग है। उक्त शब्दों का प्रयोग अनेक स्थलों पर एक ही अर्थ में हुआ है। सुमन्त्र के लिये अमात्य,[२] मन्त्री[३] तथा सचिव[४] तथा हनुमान् के लिये सचिव[५] या अमात्य तथा मन्त्री[६] शब्दों का प्रयोग हुआ है। रावण के मन्त्री उसकी दिग्विजय में उसके साथी रहे थे। ये सचिव,[७] अमात्य[८] तथा मन्त्री[९] कहे गये हैं। इसके अतिरिक्त मन्त्रियों को राजकर्तारः भी कहा गया है।[१०]

राजा दशरथ की मन्त्रिपरिषद् के वर्णन में मन्त्री (सलाहकार) तथा अमात्य या सचिव (कार्यकारिणी के पदाधिकारी) का भेद स्पष्ट है तथापि अमात्य या सचिव कभी कभी मन्त्री भी कहे गये

१. वा० रा० ४।२६।३४
२. वही १।७।१, २, ३
३. वही १।८।४
४. वही १।८।२१
५. वही ४।२।१२; ४।३।२३, २७
६. वही ४।३२।६
७. वही ७।१४।१ एवं ७।२१।४६
८. वही ७।१४।१६
९. वही ७।१४।४
१०. वही २।६७।२

हैं।[१] राजा दशरथ के मन्त्रिमण्डल के अमात्य और मन्त्री दो वर्ग थे। राम ने भरत से कहा था कि वे अमात्य और मन्त्रियों से मन्त्रणा लें।[२] इससे स्पष्ट है कि उनके मन्त्रिमण्डल में स्पष्टतः दो वर्ग होंगे।

राजा दशरथ की मन्त्रिपरिषद् में एक वर्ग में धृष्टि, जयन्त आदि आठ अमात्य थे।[३] ये अमात्यगण सचिव कहलाते थे। ये पदाधिकारी थे तथा अपने विभाग के मुख्य होते थे। विशेष राजकार्यों में इनकी सलाह लेना राजा के लिये अपेक्षित था। मन्त्रिमण्डल के दूसरे समूह में वसिष्ठ, वामदेव तथा अन्य मन्त्री थे। ये ऋत्विक् भी थे।[४] ये कार्य के पहले राजा को मन्त्रणा देते थे। ये ब्राह्मण थे।[५] ये राजकर्तारः ऋषि थे।[६] ये गुरुजन पुरोहित थे और वेदपारग थे।[७] इनकी मण्डली वृद्ध (बृहत्) सभा कहलाती थी। ये अपने ज्ञान, पवित्रता, नैतिकता, धार्मिकता, अनुभव आदि गुणों से राज्य एवं राजा के कल्याण में महत्त्वपूर्ण योग देते थे। ये राष्ट्र के कार्यों को करने वाले राजा के सलाहकार एवं उपदेशक थे।[८] इनमें पुरोहित वसिष्ठ का स्थान प्रथम था।[९] ये आपत्ति के समय में राज्य के आवश्यक कार्यों के प्रणेता थे तथा राजाओं को मन्त्रणा देते थे।[१०]

---

१ वा० रा० १।८।४
२. वही २।११२।१७
३. वही १।७।२, ३ एवं ७।२१।३१
४. वही १।७।४
५. वही २।६८।१
६. वही १।७।४ एवं २।६७।२
७. वही १।८।५
८. वही १।२१।७
९. वही २।६७।४ एवं २।११५।१०
१०. वही २ सर्ग ६७ आदि

ये मन्त्रीगण आवश्यकता के समय राजा के पास उपस्थित होते थे या राजा द्वारा बुलाये जाते थे। ये केवल मन्त्रणा देने वाले थे।[1] जबकि अमात्यों के पास अधिकार एवं पद थे। ये राज्य के विभिन्न विभागों के अध्यक्ष थे। ये अमात्य कार्यों में निर्णय के अनन्तर कार्यवाही प्रारम्भ करते थे। राजा दशरथ ने वसिष्ठ आदि मन्त्रियों से मन्त्रणा लेकर अमात्यों को यज्ञ की तैयारी करने की आज्ञा दी थी।[2]

मन्त्रियों के लिये भृत्य शब्द का भी प्रयोग रामायण में है। मन्त्री हनुमान् द्वारा लङ्का में साहसपूर्ण कार्य किये जाने पर राम ने उन्हें सर्वोत्तम भृत्य की कोटि में रखा था।[3]

निष्कर्षतः रामायण में मन्त्रियों के लिये अमात्य या सचिव और मन्त्री शब्दों का प्रयोग होता है। मन्त्री और अमात्य के भेद से प्रतीत होता है कि मन्त्री केवल मन्त्रणा करने का कार्य करते थे, जो आधुनिक उच्चस्तरीय (केबिनेट) मन्त्री के रूप में होंगे। अमात्य राज्यमन्त्री जैसे होंगे।

योग्यता के आधार पर मन्त्रियों के भेद—

रामायण में मन्त्रियों को उनकी योग्यता के आधार पर तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है। ये मुख्य या पुरुषोत्तम, मध्यम तथा अधम या जघन्य कहे गये हैं।[4]

पुरोहित—

राजकर्मों के संचालन में पुरोहित का महत्त्व वैदिक काल से ही रहा है। रामायण काल में भी पुरोहित की स्थिति राजकार्यों में

---

१. वा० रा० १।८।६
२. वही १।८।१३, १४
३. वही ६।१।६
४. वही २।१००।२६, २७ एवं ६।१।७, ८, ९

महत्त्वपूर्ण थी। ये राजपुरोहित था।[१] यह ब्राह्मण वर्ण का होता था।[२] इसका पद परम्परागत था। यह मन्त्रियों में प्रधान होता था एवं इसे राज्य में श्रेष्ठ पद प्राप्त था।[३] राजा भी इसका सम्मान करता था।[४] राजपुरोहित राजकीय यज्ञ, हवन एवं अन्य धार्मिक कार्यों को सम्पन्न कराता था।[५] वह राजनीतिक विषयों में भी परामर्श देता था।[६]

कोसल राज्य में राजपुरोहित वसिष्ठ की स्थिति अत्यन्त उच्च एवं महत्त्वपूर्ण थी। वसिष्ठ राजपुरोहित, ऋत्विक एवं उपाध्याय थे।[७] वे राज्य के महत्त्वपूर्ण कार्यों में राजा को मन्त्रणा देते थे। पुरोहित की मन्त्रणा के बिना राजा कोई कार्य नहीं करता था। पुरोहित की आज्ञा राजा के लिए पालनीय थी।[८] पुरोहित अन्य मन्त्रियों एवं अमात्यों को राज्य के कार्यों को सम्पन्न कराने के लिये आदेश देता था।[९] वह राजघराने से सम्बन्धित सभी धार्मिक कार्यों को सम्पन्न कराता था। राजा के यज्ञ विधान में,[१०] राजकुमार के जन्म, विवाह एवं यौवराज्याभिषेक में[११] एवं मृत्यु संस्कार में भी पुरोहित की सहायता अपेक्षित थी।

कोसल राज्य से सम्बन्धित राजनीतिक कार्यों के संचालन में पुरोहित वसिष्ठ का स्थान प्रधान मन्त्री का था। वे राजा की

---

१. वा० रा० २।६७।४
२. वही १।१३।५
३. वही १।१६।१६; २।३७।१५; २।६७।४; २।११५।१०
४. वही १।१३।२; २।१००।६०
५. वही १।७।४; १।१३।२, ३
६. वही २ सर्ग ६७, ६८
७. वही १।७।४; १।८।१४; २।१००।१०
८. वही १।८।१४
९. वही १।१०।६; २।६८।५, ६
१०. वही १ सर्ग १३
११. वही २ सर्ग ७६, ७७

अनुपस्थिति में सभा का संचालन करते थे एवं सभापति का पद ग्रहण करते थे ।[1] आपत्तिकाल में शासन का संचालन भी राजपुरोहित के द्वारा होता था।[2] राजपुरोहित की आज्ञा अनुलङ्घनीय थी ।[3] कौसल राज्य में राजपुरोहित वसिष्ठ का बहुत सम्मान था। पुरोहित के आगमन पर समस्त सभासद एवं राजा भी उनके सम्मान में उठ खड़े हो जाते थे। अयोध्या में सम्पूर्ण मन्त्रिपरिषद् राजपुरोहित वसिष्ठ के नेतृत्व में कार्य करती थी। वसिष्ठ प्रधानमन्त्री थे एवं असीमित अधिकारों से युक्त थे। वह उत्तराधिकारी को सिंहासन या राजपद पर आसीन कराने के अधिकारों से युक्त थे।[4] कौसल राज्य में राजपुरोहित वसिष्ठ का महत्त्व इतना बढ़ गया था कि उन्हें इक्ष्वाकु कुल का देवता[5] एवं इक्ष्वाकुकुल की अन्तिम शरण कहा गया है।[6]

अन्य राज्यों में पुरोहित का इतना सम्मान न था। राजा जनक के राज्य में शतानन्द की वह सम्माननीय स्थिति न थी, जैसी कि कौशल में पुरोहित वसिष्ठ की थी। तथापि रामायण काल में धार्मिक एवं राजनीतिक दृष्टि से पुरोहित का महत्त्वपूर्ण स्थान था।

राजकर्तारः—

प्रधान पुरोहित तथा राजकार्यों में सहायक वृद्ध एवं अनुभवी ब्राह्मण मन्त्री "राजकर्तारः" कहलाते थे।[7] रामायण में पुरोहित

---

१. वा० रा० २।८१।११
२. वही २ सर्ग ६७ आदि
३. वही २।५८।३
४. वही २।८२।७
५. वही १।७०।१६
६. वही १।५८।३
७. वा० रा० २।६७।२

वसिष्ठ, मार्कण्डेय, मौद्गल्य, वामदेव, कश्यप, कात्यायन, गौतम तथा जाबालि "राजकर्तारः" कहे गये हैं।[१]

"राजकर्तारः" राजा को बनाने वाले थे।[२] कौसल राज्य में राजा दशरथ की मृत्यु के पश्चात् आपत्ति कालीन स्थिति के उत्पन्न होने पर इन राजकर्ताओं ने अमात्यों के साथ वसिष्ठ के समक्ष अन्य राजा की नियुक्ति के विषय में विचार विमर्श किया था, जिससे राज्य में अराजकता व्याप्त न हो सके तथा राज्य का विनाश न हो।[३] कौसल राज्य में राजा को नियुक्त करने के लिये विचार विमर्श के पश्चात् प्रधान मन्त्री वसिष्ठ ने भरत को इसी हेतु ननिहाल से बुलाया था।[४]

राजा दशरथ के मृत्यु संस्कार के अनन्तर इन्हीं मन्त्रियों या सलाहकारों ने, जो कि राजकर्तारः थे, प्रभुसत्ता को भरत के लिये सौंपना चाहा था।[५] राजकर्तारः अमात्यों एवं पुरवासी लोगों के नाम पर राजा को प्रभुसत्ता प्रदान करते थे।[६]

इस प्रकार राजकर्तारः रामायण में नये राजा को चुनने एवं उसे प्रभुसत्ता प्रदान करने के रूप में वर्णित हैं। रामायणानुसार "राजकर्तारः" राजपुरोहित एवं अन्य ब्राह्मण मन्त्री ही थे।

मन्त्री की योग्यता—

मन्त्री पद के लिये सम्यक् परीक्षित, कुलीन, सम्बन्धित राज्य का निवासी, अधिक आयु प्राप्त, लोकप्रिय एवं चरित्रवान् व्यक्ति ही योग्य कहा गया है।[७]

---

१. वा० रा० २।६७।३, ४
२. वही २।२।१९, २०, २१
३. वही २।६७।४, ८
४. वही २।६८।६, ७
५. वही २।७९।१, ४
६. वही २।७९।४
७. महाभारत शान्ति पर्व १९।८३

रामायण में मन्त्री उपर्युक्त सभी गुणों एवं योग्यताओं की आपूर्ति करता है। कृति में उल्लिखित मन्त्री सभी विषयों में परीक्षित एवं पारंगत कहे गये हैं।[1] वे प्रामाणिक कुलोत्पन्न होते थे।[2] रामायण के अध्ययन से स्पष्ट है कि मन्त्रिगण तत्सम्बन्धित राज्य के ही स्थायी निवासी होते थे। वे राष्ट्रीयता के भाव से युक्त होते थे। आर्य, वानर एवं राक्षस राजाओं के सभी मन्त्री उन्हीं के राज्य के निवासी थे एवं अपने राष्ट्र के प्रति भक्ति भावना से युक्त थे। जहाँ तक आयु का सम्बन्ध है, रामायण में सभी राज्यों के मन्त्रीगण अधिक आयु वाले या वृद्ध कहे गये हैं। राजा दशरथ के मन्त्री वृद्ध थे।[3] राजा रावण भी अपनी राजसभा में अपने कुलीन, शील सम्पन्न एवं वृद्ध मन्त्रियों से घिरा हुआ वर्णित है।[4] सुग्रीव के मन्त्री नल, नील, जाम्बवन्त आदि भी वृद्ध ही थे। निषादराज गुह के मन्त्री भी वृद्ध कहे गये हैं।[5]

रामायणानुसार मन्त्रीगण लोकप्रियता के आधार पर ही नियुक्त किये जाते थे। कृति में मन्त्रीगण लोकप्रिय कहे गये हैं।[6]

मन्त्रियों की इन योग्यताओं की अपेक्षा उनके चरित्र को सर्वोपरि माना गया है। इसीलिये कृति में मन्त्रीगण जितेन्द्रिय, विनयी, ईमानदार, निर्लोभी, पक्षपातरहित आदि चारित्रिक विशेषताओं से युक्त एवं नैतिक गुणों से सम्पन्न कहे गये हैं।[7] इसके अतिरिक्त उन्हें मन्त्रधर,[8] बुद्धिमान्, विक्रमी, देशकालज्ञ,

---

१. वा० रा० १।७।८
२. वही २।१००।१६ एवं ५।४८।६१
३. वही २।१४।४४
४. वही ५।४८।५८, ६१
५. वही २।५०।३३
६. वा० रा० १।७।६, २०
७. वही १।७।५, ७ आदि एवं २।१००।५६
८. वही २।१००।१६

नीतिवान्,[१] सर्वगुणसम्पन्न, मन्त्रज्ञ, राजा के प्रिय एवं हित में संलग्न,[२] कार्यकुशल, नीतिविशारद, बहुश्रुत, धनवान्, शास्त्रज्ञ, पराक्रमी, अप्रमत्त, तेजस्वी, क्षमावान, यशस्वी, प्रसन्नमुख, निर्लोभ, असत्य भाषण न करने वाले, अपनी प्रजा और दूसरे राज्यों की प्रजा के विषय में ज्ञान रखने वाले, व्यवहार कुशल, अपराधानुसार दण्ड देने वाले, न्यायानुसार कोष का वर्धन करने वाले, सेना की व्यवस्था में तत्पर रहने वाले, वीर, उत्साही, राजनीतिज्ञ, प्रजा-जनों की रक्षा करने में तत्पर, सन्धि-विग्रह तत्वज्ञ, मन्त्रसंवरणकर्ता तथा प्रियवादी भी कहा गया है।[३]

मन्त्रियों की प्रमुख योग्यता उनकी निर्लोभता और न्यायप्रियता के गुण थे।[४] रामायणानुसार मन्त्री को प्रिय-अप्रिय, सुख-दुःख, लाभ-हानि, हित-अहित, एवं धर्म, अर्थ, काम की बातों को जानने में समर्थ[५] तथा शत्रु की शक्ति, स्थिति, अवनति और उन्नति को अच्छी प्रकार समझने की योग्यता से युक्त एवं स्वामी के हित में कर्तव्य करने की क्षमता से युक्त होना चाहिये।[६]

इस प्रकार रामायणानुसार सर्वगुण सम्पन्न, सचरित्र तथा सूक्ष्मबुद्धि वाला व्यक्ति ही मन्त्री पद का अधिकारी था तत्कालीन मन्त्री न्यायी एवं राजनीतिक, बुद्धिमान् एवं विद्वान्, शास्त्रविशारद एवं अनुभवी, कर्मठ एवं दूरदर्शी, जनकल्याणकर्ता, राष्ट्रप्रेमी, राजा का हितैषी, योग्यसलाहकार एवं सुयोग्य योद्धा आदि सभी कुछ था।

रामायणकालीन शासन व्यवस्था में मन्त्रियों के पदों का विभाजन रहा होगा एवं शासन सम्बन्धी विभिन्न विभाग इस प्रकार होंगे—

---

१. वा० रा० ४।४४।७
२. वही १।७।१, २
३. वही १।७।५ से १७
४. वही २।१००।५६
५. वही ६।१२।७, ८
६. वही ६।१४।१२

धर्म विभाग –

कौसल राज्य में इस विभाग के प्रधानमन्त्री वशिष्ठ थे।[1] ये धार्मिक कार्यों को सम्पन्न कराने में प्रधान थे।[2] राज्य के धर्म सम्बन्धी सभी कार्य उनके द्वारा सम्पन्न होते थे। संस्कार, यज्ञ, हवन आदि करना या कराना उनके अधिकार में था।[3] इसी प्रकार किष्किंधा में भी यह विभाग होगा। सुग्रीव के अभिषेक पर धार्मिक कार्यों को ब्राह्मणों ने सम्पन्न कराया था।[4] लङ्का में भी धार्मिक कार्यकलाप यज्ञ आदि सम्पन्न होते थे। राजा रावण एवं मेघनाद भी यज्ञ आदि क्रियाकलापों से सम्बन्ध रखते थे। अतः लङ्का में भी धर्म विभाग रहा होगा। यद्यपि राक्षस राजा धर्मानुसार आचरण नहीं करते थे।

रक्षा विभाग—

इसका प्रधान 'सेनापति' था। अयोध्या में धृष्टि, जयन्त या विजय में से कोई इसका अधिकारी होगा। लङ्का में सेनापति प्रहस्त इस विभाग का अध्यक्ष एवं संचालक रहा होगा।[5] इसी प्रकार किष्किन्धा में भी मुख्यबलाध्यक्ष इसका प्रधान होगा।

वित्त विभाग—

यह विभाग कोषाध्यक्ष के अधीन होगा। कौसल में राजा दशरथ के "अर्थसाधक" या "सिद्धार्थ" मन्त्रियों में से कोई इसका प्रधान होगा।

न्याय विभाग—

इस विभाग का अधिकारी न्याय मन्त्री होगा। कौसल राज्य

१. वा० रा० १।१२।१०, २।११५।१०
२. वही १।१३।१, ३३, ३७
३. वही १।८।१० आदि एवं १।१३।५ आदि
४. वही ४।२६।२६
५. वही ६।५८।४

में मन्त्रपाल या धर्मपाल मन्त्रियों में से कोई इसका अधिकारी [प्रभारी] होगा।

गृह एवं विदेश विभाग—

रामायण के अध्ययन से स्पष्ट है कि ये विभाग राजा के अधिकार में होते थे। ये विभाग गुप्तचरों के द्वारा संचालित होते थे। राजा राम ने अपनी प्रजा का समाचार गुप्तचरों से ज्ञात किया था।[1] राम ने भरत से प्रजा एवं कर्मचारियों के विषय में जानकारी लेते रहने के लिये गुप्तचरों की नियुक्ति विषयक प्रश्न किया था।[2]

अपने राज्य के अतिरिक्त अन्य राज्यों के विषय में भी राजागण गुप्तचरों के माध्यम से जानकारी प्राप्त करते थे। राजा दशरथ के मन्त्री गुप्तचरों के माध्यम से ही अपने देश और अन्य देशों के विषय में ज्ञान प्राप्त करते थे।[3] राजा वालि को गुप्तचरों के माध्यम से ही सुग्रीव और राम की मित्रता के विषय में परिज्ञान हुआ था।[4] राजा रावण ने भी शत्रु के बलाबल को जानने के लिये शार्दूल, शुक तथा सारण को गुप्तचर बनाकर राम की सेना में भेजा था।[5] राजा रावण 'चरों' की नियुक्ति में असावधान कहा गया है।

विदेशी राजाओं की गतिविधियों एवं युद्ध के समय उनके साथ सन्धि आदि करने के लिए दूत भी इस विभाग द्वारा नियुक्त किये जाते थे। राजा रावण तथा राम अमात्य के समकक्ष गुप्तचर नियुक्त करते थे। सुग्रीव के सचिव हनुमान् ने लङ्का में दूत का

---

१. वा० रा० ७ सर्ग ४२
२. वही २।१००।३७
३. वही १।७।७
४. वही ४।१५।१६
५. वही ६।२०।१, २; ६।२५।१, ४

कार्य किया था।[1] अंगद ने भी राजदूत का कार्य किया था।[2] इसी प्रकार राम के बलाबल को जानने के लिये एवं राम को पुनः वापिस लौट जाने का सन्देश देकर शुक को रावण ने राम के पास दूत बनाकर भेजा था।[3] स्पष्ट है कि गृह एवं विदेश विभाग का अध्यक्ष राजा होता था एवं इस विभाग का संचालन गुप्तचरों एवं दूतों के माध्यम से होता था।

उपर्युक्त विभागों के अतिरिक्त लोककल्याण आदि अन्य विभाग भी तत्कालीन शासन में रहे होंगे। जैसा कि अयोध्या, लङ्का तथा किष्किन्धा की सभ्यता एवं सांस्कृतिक उन्नति से प्रतीत होता है।

मन्त्रिपरिषद्—

रामायणानुसार मन्त्रिपरिषद् में अमात्य या सचिव तथा ब्राह्मण-मन्त्रियों सहित राजपुरोहित सम्मिलित थे।[4] इस प्रकार मन्त्रिपरिषद् के दो विभाग थे—अमात्य या सचिव और राजपुरोहित एवं द्विजातीय मन्त्री-गण।[5]

अयोध्या में मन्त्रिपरिषद् आठ अमात्य, दो ऋत्विज् तथा छः अन्य मन्त्रियों से मिलकर बनी थी।[6]

राजा देश के शासन का संचालन मन्त्रिपरिषद् की सहायता से करता था। राज्य के सभी महत्त्वपूर्ण मामलों में मन्त्रिपरिषद् से सलाह ली जाती थी। राजा द्वारा मन्त्रिपरिषद् तथा सभा के

---

१. वा० रा० ५।३५।५२
२. वही ६।४१।७६
३. वही ६।२०।६, १०, १८, १६
४. वही १।७।२, ३, ४,
५. वही १।६।१४; २।६७।२, ३, ४
६. वही १।७।१ आदि

समक्ष प्रस्ताव रखा जाता था।[1] मन्त्री एवं सभासद् उस पर विचार करते थे।[2] निर्णयान्तर कार्यवाही हेतु मन्त्रिपरिषद् के राज्यस्तरीय मन्त्रियों या अमात्यगणों को कहा जाता था। वे कार्य सम्पन्न कराते थे।[3] इस प्रकार कार्यों का सम्पादन मन्त्रिपरिषद् के सदस्यों द्वारा होता था। सभा के अतिरिक्त भी राजागण मन्त्रिपरिषद् के सदस्यों को पृथक् बुलाकर उनसे मन्त्रणा लेते थे। सभा की बैठक समाप्त हो जाने पर राजा दशरथ ने मन्त्रिपरिषद् से राम के यौवराज्याभिषेक के विषय में पुनः परामर्श किया था।[4] राम ने भी अश्वमेध यज्ञ करने के लिये तद्विषयक परामर्श वसिष्ठ, वामदेव आदि मन्त्रिपरिषद् के सदस्यों से किया था।[5]

इस प्रकार राज्य के सभी महत्त्व के मामले मन्त्रियों की उपस्थिति में निर्णीत होते थे। राज्य की नीति सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल से निश्चित होती थी। राजा को सलाह देना,[6] राजा की अनुपस्थिति में शासन की सम्यक् व्यवस्था को संभालना,[7] अभिषेक का आयोजन करना,[8] राजा को राज्य सौंपना,[9] राजाओं को समय समय पर सचेत करना[10] आदि मन्त्रिपरिषद् के महत्त्वपूर्ण कर्तव्य थे। इस प्रकार राज्य की नीति का निर्धारण करना, कार्यों के विषय में विचार विमर्श करना एवं राजकार्यों का सम्पादन करना मन्त्रिपरिषद् के सदस्यों का कर्तव्य था।

---

१. वा० रा० २।२।६, १०, १२, १४, १५, १६
२. वही २।२।१६, २०
३. वही १।१०।६; १।१२।१३, १६ एवं २।३।५
४. वही २।४।१
५. वही ७।६१।२, ३
६. वही ६।१४।२२
७. वही १।४२।१२
८. वही ६।१३१।२३, २४
९. वही २।८२।७
१०. वही ३।४१।७; ४ सर्ग २९, ३२

रामायण में मन्त्रिपरिषद् की बैठकें—

रामायण में मन्त्रिपरिषद् की अनेक बैठकों का उल्लेख है, जो निम्नांकित हैं—

सर्वप्रथम बालकाण्ड में राजा दशरथ द्वारा पुत्र प्राप्ति के लिए अश्वमेध यज्ञ करने के हेतु मन्त्रिपरिषद् के सदस्यों—अमात्यों के साथ पुरोहित वसिष्ठ एवं अन्य वामदेव, जावालि आदि का मन्त्रणा करने का उल्लेख हैं।[1]

अयोध्या में मन्त्रिपरिषद् की दूसरी बैठक राम के विवाह के विषय में आमन्त्रित की गई थी। राजा दशरथ ने मिथिला से प्राप्त राजा जनक के दूतों द्वारा सन्देश लाने पर राम के विवाह के विषय में मन्त्रिपरिषद् के सदस्यों से मन्त्रणा ली थी एवं समर्थन प्राप्त किया था।[2]

अयोध्या में अन्य मन्त्रिपरिषद् की बैठक राम के यौवराज्याभिषेक के लिये हुई थी। राजा दशरथ ने राम को युवराज बनाने के विषय में सर्वप्रथम मन्त्रिपरिषद् के सदस्यों—अमात्यगणों से तद्विषयक मन्त्रणा ली थी।[3] तदनन्तर सम्पूर्ण सभा बुलाई गई थी। उसमें राम को युवराज बनाने का पूर्ण समर्थन प्राप्त करके, तदनन्तर अभिषेक आदि कार्यों को सम्पन्न कराने के लिये एवं राज्याभिषेक के समय को निश्चित करने के लिये पुनः राजा दशरथ ने मन्त्रिपरिषद् से मन्त्रणा ली थी।[4]

रामायणानुसार मन्त्रिपरिषद् की एक बैठक समुद्र के किनारे राम, सुग्रीव एवं अन्य वानर मन्त्रियों की उपस्थिति में विभीषण

---

१. वा० रा० १।८।२, ३, ६
२. वही १।६८।१४, १६-१६
३. वही २।१।४१
४. वही २।४।१, २

के आगमन पर हुई थी।[1] इसमें राम ने विभीषण के आगमन पर उसे शरण देने के लिये मन्त्रियों से अपनी अपनी सम्मति देने को कहा था।[2]

लंका में मन्त्रिपरिषद् की बैठक उस समय हुई, जबकि रावण ने राम और उनकी सेना द्वारा समुद्र पार कर लेने एवं सुबेल पर्वत पर पड़ाव डालने के विषय में सुना।[3] इसमें रावण ने राक्षस मन्त्रियों के साथ करणीय बातों पर विचार-विमर्श किया था।[4]

लंका में एक अन्य मन्त्रिपरिषद् की बैठक राम की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई थी। राम ने भी इस मन्त्रिपरिषद् में युद्ध सम्बन्धी करणीय बातों पर विचार विमर्श करके अंगद को लंका में दूत बना कर भेजने का निश्चय किया था।[5]

रामायणानुसार मन्त्रिपरिषद् की बैठक की विशेषतायें—

(१) मन्त्रिपरिषद् में राजा, मन्त्रीगण तथा अमात्य या सचिवगण ही उपस्थित होते थे। मन्त्रिपरिषद् की बैठक राजा की अध्यक्षता में सम्पन्न होती थी।

(२) मन्त्रिपरिषद् शासकीय संस्था थी। इसमें प्रजा के प्रतिनिधियों-पौरजानपद तथा नैगम आदि को सम्मिलित होने का अधिकार नहीं था।

(३) मन्त्रिपरिषद् की बैठक में राजाओं के कार्यकलापों से सम्बन्धित, शासन के अन्य कार्यों से सम्बन्धित तथा युद्ध से सम्बन्धित विषयों पर विचार होता था।

---

१. वा० रा० ६ सर्ग १७
२. वही ६।१७।३३
३. वही ६।३१।१, २, ३
४. वही ६।३१।५
५. वही ६।४१।५८, ५६

(४) मन्त्रिपरिषद् की मन्त्रणा गुप्त रखी जाती थी। वह राजा तथा मन्त्रियों तक ही सीमित रहती थी।

इस प्रकार मन्त्रिपरिषद् राजा तथा राज्य के कार्यों से सम्बन्धित शासकीय संस्था के रूप में रामायण में वर्णित है।

मन्त्रियों का आवास—

रामायण के अध्ययन से स्पष्ट है कि अमात्यों तथा मन्त्रियों के आवास की व्यवस्था राजधानी में ही थी। मन्त्रीगण राजधानी में ही रहकर शासन का संचालन करते थे। रामायण में मन्त्रियों की उपस्थिति सदा मुख्यालय में ही निर्दिष्ट है। राजा भगीरथ तपस्या के हेतु जब राज्य से बाहर गये थे, तब शासन का भार मन्त्रियों को दे गये थे।[१] राजा दशरथ राम के विवाह में मिथिला गये, तो वसिष्ठ आदि ऋत्विजों को साथ ले गये थे।[२] अमात्यगण शासन संचालन के लिये राजधानी में ही रहे थे। भरत ने नन्दीग्राम में मन्त्रियों के साथ शासन किया था।[३] राम के वन से लौटने पर अमात्यों ने उनका स्वागत किया था[४] एवं राज्याभिषेक का प्रबन्ध किया था।[५] हैहयराज के मन्त्रियों की उपस्थिति भी राजधानी में ही उल्लिखित है।[६] राजा द्वारा मन्त्रिपरिषद् की बैठक बुलाये जाने पर राजधानी के अतिरिक्त देश के अन्य भागों से अमात्यों के आगमन का उल्लेख रामायण में नहीं मिलता। मन्त्रीगण राजधानी में ही रहते थे एवं राजा द्वारा सूचित होने पर शीघ्र उपस्थित होते थे, जैसा कि रावण की सभा-

---

१. वा० रा० १।४२।१२
२. वही १।६६।४, ५
३. वही २।११५।२२
४. वही ६।१३०।१०
५. वही ६।१३१।२३, २४ आदि
६. वही ७।३२।२६

समायोजना से स्पष्ट होता है।[१] इसी प्रकार अन्य उल्लेखों से भी स्पष्ट है कि अमात्यगणों का आवास स्थान मुख्यालय या राजधानी में था।

वसिष्ठ आदि ऋत्विक्, जो कि मन्त्री भी थे, नगर के बाहर रहते होंगे। ये ऋषि थे।[२] अतः नगर से दूर इनका निवास स्थान रहा होगा। तथापि ये राजधानी के निकट ही निवास करते होंगे। राम के राज्याभिषेक के समय वसिष्ठ अपने निवास से किञ्चित् मार्ग तय करके ही अयोध्यापुरी में पहुँच गये थे।[३]

मन्त्रिगण कभी कभी राजा के साथ राजधानी से बाहर जाते थे। विश्वामित्र के मन्त्री उनकी यात्रा पर उनके साथ थे।[४] रावण के मन्त्री भी उसकी दिग्विजय में उसके साथ थे।[५] वस्तुतः रामायणकालीन शासन व्यवस्था में मन्त्रियों को राजधानी में रहने की सुविधा थी। कार्यवशात् या राजा के साथ ही उन्हें मुख्यालय छोड़ना पड़ता था।

मन्त्रियों का पहनावा—

सभा के कार्य संचालन के समय मन्त्रिगण श्रेष्ठ वस्त्रों एवं आभूषणों से सुसज्जित रहते थे। इसीलिये वे "सुवाससः" तथा सुवेषाः कहे गये हैं।[६] परिषद् की बैठक में वे सुवर्ण के नाना आभूषणों एवं मणियों को धारण करते थे। इस अवसर पर वे अपने तन को अगर, चन्दन एवं सुगन्धित पुष्प मालाओं से अलङ्कृत करते थे।[७]

---

१. वा० रा० ६।११।१८, १९, २६ आदि
२. वही २।७६।१
३. वही २।१४।२६, २९
४. वही १।५३।७
५. वही ७ सर्ग १४
६. वही १।७।१४
७. वही २।८२।२, ६।११।३१

मन्त्रियों का वेतन—

रामायण कालीन शासन में मन्त्री वेतन भोगी थे। राजा रावण ने अपने मन्त्रियों—शुक और सारण द्वारा मनोनुकूल वचन न सुनकर उनकी निन्दा करते हुए कहा था कि वेतन भोगी मन्त्रियों को अपने स्वामी से प्रतिकूल वचन नहीं कहना चाहिये।[1] इससे स्पष्ट है कि तत्कालीन शासन में मन्त्रियों के वेतन की व्यवस्था थी।

कौसल राज्य के मन्त्रियों के वेतन भोगी होने का रामायण में उल्लेख नहीं है। राम एवं भरत के सम्भाषण से यह तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि सेना के सदस्य वेतनभोगी थे।[2] लेकिन मन्त्रियों और अमात्यों के वेतन प्राप्ति के विषय में उल्लेख नहीं है। तथापि रामायण से स्पष्ट होता है कि कौसल राज्य मन्त्रियों के सम्पूर्ण व्यय को वहन करता था। वसिष्ठ आदि सभी मन्त्रियों को राज्य की ओर से समस्त सुविधायें प्राप्त थीं।

किष्किन्धा राज्य में भी मन्त्री समुदाय वेतन भोगी होगा। रामायण में मन्त्री हनुमान् भृत्य के रूप में वर्णित है।[3] भृत्य वेतन भोगी ही होता होगा। उक्त से स्पष्ट होता है कि रामायणकालीन शासनतन्त्र में मन्त्री वेतन भोगी था, साथ ही उसे राज्य से सभी सुविधायें भी प्राप्त होतीं थीं।

राजा, मन्त्री तथा मन्त्रणा—

रामायण कालीन शासन व्यवस्था में राजा सर्वोच्च सत्ताधारी होते हुए भी राज्य के प्रत्येक कार्य में मन्त्रियों से मन्त्रणा लेता था। राजा केवल अपने पर ही निर्भर नहीं था। मन्त्रियों से मन्त्रणा लेना राजा के हित के लिये एवं उसके स्थायित्व में आवश्यक था।[4] मन्त्रियों की मन्त्रणा राजा की विजय का आधार था।

---

१. वा० रा० ६।२६।५
२. वही १।७।६; २।१००।३३
३. वही ६।१।६
४. वही २।१००।१७

इसी प्रकार राजा के प्रति कर्तव्यों का पूर्णतः पालन करना मन्त्रियों के भी हित में था।[1]

वस्तुतः मन्त्री राजा के साथी या सुहृद् थे।[2] वे शासन के कार्यों का संचालन करने के अतिरिक्त[3] राजा के व्यक्तिगत, धर्म सम्बन्धी, जन्म, विवाह एवं उत्सव सम्बन्धी[4] आदि कार्यों में भी उसके साथी थे। राजा के प्रत्येक कार्यों में मन्त्रीगण राजा के साथ रहते थे एवं कार्यों का सम्पादन करने में पूर्णतः सहयोग देते थे। राजा गुह ने अपने अमात्यों के साथ राम का अभिनन्दन किया था।[5] विश्वामित्र के अमात्य एवं मन्त्रीगण भी उनकी साहसिक यात्रा में उनके साथ थे।[6] रावण की दिग्विजय में उसके अमात्यों ने सहयोग दिया था।[7] वे लंका में राज्य स्थापित करते समय भी राजा रावण के साथ थे।[8] न्याय कार्यों में भी वे राजा के साथ रहते थे।[9]

इस प्रकार मन्त्रीगण राजा के साथी, मित्र एवं सलाहकार थे। यद्यपि वे राज्य शासन के उत्तरदायी थे, तथापि उन्हें राज्यकार्यों को करने के लिये राजा से आदेश लेने की आवश्यकता रहती थी।[10] इसी प्रकार राजा को भी यह अपेक्षित था कि वह मन्त्रियों के स्वतन्त्र विचारों को प्राप्त करे।[11] इस प्रकार मन्त्री और राजा एक दूसरे के सहयोगी थे।

---

१. वा० रा० ३।४१।८
२. वही ३।३८।३३
३. वही १।७।२
४. वही १।८।१३, १४; १।१०।६; १।१२।१३, १४; १।१८।२२; १।६८।१४; २।२।१६, २०; ६।१३१।३६
५. वही २।५०।३३
६. वही १।५१।२१; १।५३।७
७. वही ७ सर्ग १४
८. वही ७ सर्ग ११
९. वही ७ सर्ग ५९के पश्चात् अधिक पाठ सर्ग १ श्लोक ३
१०. वही १।८।१३,१४
११. वही १।८।६; २।२।१४, १५, १६; २।१००।१६, ७२

मन्त्रियों की मन्त्रणा —

रामायण में राजा द्वारा मन्त्रियों की मन्त्रणा लेने का व्यावहारिक ढंग से उल्लेख है। रामायण में राजा के लिये एक साथ सभी मन्त्रियों से मन्त्रणा लेने का नियम ठीक नहीं कहा गया है।[१] सभी मन्त्रियों से एक साथ गुप्त मन्त्रणा करना युक्ति संगत नहीं है। महत्त्वपूर्ण विषयों को गुप्त रखना अनिवार्य होने से सभी मन्त्रियों में से कुछ विशेष मन्त्रियों से ही राजा द्वारा सलाह लेने का उल्लेख रामायण में है। भरत के प्रति राम के कथन से स्पष्ट है कि राजा को तीन या चार मन्त्रियों से मन्त्रणा लेना उचित है।[२] रामायण में निर्देश है कि राजा को किसी विषय में मन्त्रियों से एक साथ तथा अलग अलग मन्त्रणा लेना चाहिये।[३] इस प्रकार रामायण में वर्णित राजा द्वारा मन्त्रियों से मन्त्रणा लेने का ढंग महत्त्वपूर्ण, व्यावहारिक, सार्थक एवं सिद्धिप्रदायक है।

मन्त्रणा के प्रकार—

रामायण में मन्त्रियों की योग्यता के आधार पर उनकी तीन कोटियाँ—उत्तम, मध्यम और अधम का उल्लेख है।[४] मन्त्रियों की इन तीन कोटियों के समान ही उनके मन्त्रों के भी तीन प्रकार कहे गये है।[५] किसी विषय पर शास्त्रानुसार जहाँ एक मत होकर मन्त्रीगण मन्त्रणा करते हैं, वह उत्तम मन्त्रणा कही गई है। जिस विचार का निर्णय करने के लिये मन्त्रीगण अनेक मत होकर अन्त में एक मत हो जाये, वह मध्यम मन्त्र है एवं जिस मन्त्र में सब मन्त्रदाताओं का मत अलग अलग हो, सब एक मत न हों और

---

१. वा० रा० २।१००।१६
२. वही २।१००।७२
३. वही २।१००।७२
४. वही ६।१।७, ८, ६; ६।६।६
५. वही ६।६।११

एक मत होने पर भी जिसमें कल्याण सम्भव न हो, वह अधम मन्त्र है।[१] इस प्रकार रामायण में मन्त्रियों से मन्त्रणा लेने के विविध एवं उचित प्रकारों का उल्लेख है एवं साथ ही साथ कार्य में सफलता की दृष्टि से विभिन्न मन्त्रों का भी उल्लेख किया गया है।

तीर्थ—

रामायण में शासन के विभिन्न विभागों के पदाधिकारियों का उल्लेख है।[२] विभिन्न टीकाकारों ने इन्हें तीर्थ की संज्ञा दी है। वस्तुतः शासन के विभिन्न विभागों के संचालक उच्चपदाधिकारी तीर्थ कहे गये हैं।[3]

रामायणानुसार तत्कालीन शासन अमात्य या मन्त्रियों द्वारा चलाया जाता था। उक्त सभी तीर्थों की सहायता से शासन का संचालन करते थे। राम और भरत की वार्ता में इन तीर्थों का भी उल्लेख है।[४] रामायण में इन पदाधिकारियों के लिये तीर्थ शब्द का प्रयोग नहीं है एवं इन पदाधिकारियों के अलग अलग पदों का स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं है। अठारह पदाधिकारियों के उल्लेख से यह प्रतीत होता है कि उस समय शासन में अठारह विभाग रहे होंगे। और उनके यह उच्चाधिकारी होंगे। रामायण के टीकाकारों (तिलक एवं गोविन्दराज) ने इन अठारह पदाधिकारियों की सूची दी है। ये अठारह पदाधिकारी या तीर्थ इस प्रकार कहे गये हैं—

(१) मन्त्री (२) पुरोहित (३) युवराज (४) सेनापति (५) दौवारिक (६) अन्तर्वंशिक (७) कारागाराधिकृत (८) अर्थ-

---

१. वा० रा० ६।६।१२, १३, १४
२. वही २।१००।३७
३. नीतिवाक्यामृतम्, अध्याय २
४. वही २।१००।३७

संचयकृत (९) कार्यनियोजक (१०) प्राड्विवाक (११) सेनानायक (१२) नगराध्यक्ष (१३) कर्मान्तिक (१४) सभ्य (१५) धर्माध्यक्ष (१६) दण्डपाल (१७) दुर्गपाल (१८) अन्तपाल।

यह अठारह तीर्थ या पदाधिकारी राज्य के विभिन्न विभागों के संचालक थे। राज्य की शासन व्यवस्था को व्यवस्थित करने के लिये, राज्य में शान्ति स्थापित करने के लिये तथा उसके विकास के लिये इन्हें नियुक्त किया जाता था। ये पदाधिकारी अपने कार्यों में प्रमाद न करें, इसके लिये इनके विषय में जानकारी लेते रहने के लिये गुप्तचरों को नियुक्त किया जाता था।[१]

इन तीर्थों या पदाधिकारियों के अतिरिक्त शासन की सहायता के लिये अन्य कर्मचारी राजकीय वैद्य,[२] आचार्य,[३] द्वारपाल,[४] चारण, बन्दी, सूत, मागध,[५] दूत,[६] किंकर[७] तथा सारथी[८] आदि भी नियुक्त किये जाते थे।

रामायण में सभा या परिषद्—

वैदिक काल में शासन सम्बन्धी दो संस्थायें सभा तथा समिति थीं।[९]

रामायण में शासन से सम्बन्धित एक ही संस्था 'सभा' का उल्लेख है। कृति में समिति का उल्लेख शासन की संस्था के रूप

---

१. वा० रा० २।१००।३७
२. वही २।१००।६१ एवं ६।९२।१९
३. वही २।१००।१५
४. वही २।१४।४४
५. वही २।१६।४६
६. वही ५।३४।५२
७. वही ७।४२।१९
८. वही १।६।१; २।१४।३३; ६।९०।४१; ९।१०६।१
९. अथर्ववेद ७।१२।१ तथा ६।८८।३

में नहीं है। इसमें समिति का प्रयोग युद्ध के अर्थ में हुआ है।[१] राम, रावण, इन्द्रजीत, वालि ये 'समितिञ्जय' तथा 'समितिनन्दन' कहे गये हैं। यहाँ समिति का अर्थ युद्ध से है, न कि शासन सम्बन्धी संस्था से।

रामायणानुसार तत्कालीन शासन का संचालन सभा की सहायता से होता था, जैसाकि वैदिक काल में भी होता था। रामायण में सभा के विभिन्न नाम उल्लिखित हैं। कृति में सभा को परिषद्,[२] संसद[३] एवं सभा[४] कहा गया है। तत्कालीन सभा आधुनिक संसद के ही समान थी। रामायण में सभा के तीन रूप सामने आते हैं—

(१) तत्कालीन सभा आधुनिक संसद के समान शासन की सहायतार्थ एक संस्था थी, जिसमें राजा, पुरोहित, मन्त्रीगण, पौरजानपद आदि एकत्रित होकर शासन सम्बन्धी विचार विमर्श करते थे।[५] रामायण में इसी अर्थ में संसद या परिषद् का प्रयोग है।[६]

(२) सभा एक सामाजिक संस्था थी, जहाँ समाज के लोग विभिन्न विषयों पर बात करते थे।[७]

(३) रामायश में 'सभा' का प्रयोग राजा के न्यायालय के लिये भी हुआ है। वहाँ व्यवहारियों का न्याय होता था।[८]

---

१. वा० रा० ६।१२।१,
२. वही २।२।१, ६।१२।१
३. वही ६।११।३०, ३२
४. वही २।३।३६; २।८१।६; २।८२।२; ६।११।२३, २५, २७
५. वही २।२।१, १६, २६; २।६७।२
६. वही २।२।१, ६।११।३०
७. वही २।६७।१२
८. वही ७ सर्ग ५६ के पश्चात् अधिक पाठ सर्ग १ श्लोक ४

वस्तुतः सभा राष्ट्रीय संसद थी। इसमें राज्य सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण मामलों पर विचार किया जाता था। राजा किसी मामले को सभा के समक्ष रखता था। वह सभा के सदस्यों को उस विषय पर विचार करने के लिये कहता था और फिर सभा का समर्थन प्राप्त करता था।[१] निर्णयोपरान्त कार्य की कार्यवाही प्रारम्भ होती थी।

इस प्रकार सभा का राजकीय कार्यों के निर्णय के लिये महत्त्वपूर्ण योग था। सभा तत्कालीन प्रजातन्त्रात्मक शासनपद्धति का द्योतक है।

सभा या परिषद् का गठन—

सभा का गठन दो वर्गों से मिलकर हुआ था। एक वर्ग में राजा, पुरोहित, मन्त्रीगण, अमात्य या सचिव तथा सामन्त राजा आदि राज्याधिकारी थे।[२] दूसरे वर्ग में पौरजानपद,[३] नैगम,[४] तथा राज्य के मुख्य प्रतिनिधि थे, जो प्रजावर्ग का प्रतिनिधित्व करते थे।[५]

पौरजानपद—

पौरजानपद में पुर और जनपद के प्रतिनिधि सम्मिलित होते थे। पौर में पुर या राजधानी के मुख्य जन या प्रतिनिधिगण थे। यह नगरीय संस्था थी। जानपद में राजधानी के अतिरिक्त शेष राष्ट्र की जनता के प्रतिनिधिजन थे। यह जनपदीय संस्था थी। जनपद में जनपद के ग्राम एवं घोष के मुखिया सम्मिलित थे।[६] इस प्रकार

---

१. वा० रा० २।२।१, १२, १५, १६, २०, २१
२. वही २।२।१; १९ एवं २।६७।२, ३, ४
३. वही २।२।१९, २।११।२०
४. वही २।८३।१ एवं ७।७४।२
५. वही २।१११।५, २४
६. वही २।८३।१५

पौरजानपद संस्था में राष्ट्र के नगरीय एवं ग्रामीण लोगों के प्रतिनिधिगण सम्मिलित थे।[1]

नैगम—

यह नगर के निगम या व्यापारी वर्ग के मुख्य लोगों की संगठित संस्था थी।[2]

श्रेणी[3]—

यह नाना जातियों का संघ था।[4]

सभा में वृद्ध एवं अनुभवी लोगों की प्रधानता होती थी।[5] सभा सम्पूर्ण राष्ट्र की प्रतिनिधि संस्था थी। सभा के लोगों की आवाज सम्पूर्ण राष्ट्र के लोगों की आवाज थी।

सभा के सदस्यों की योग्यता—

सभा के सदस्य नियम, रीतिरिवाज, धर्म और ज्ञान की विविध शाखाओं में पारंगत होते थे।[6] सभा में वेद वेदाङ्गों एवं शास्त्रों का ज्ञाता राजा[7] धर्मज्ञपुरोहित एवं वेदपारग द्विजातिगण,[8] मन्त्रज्ञ एवं बुद्धिमान् अमात्यगण,[9] सत्यान्वित धर्म की बात कहने वाले एवं अपने विषयों में ज्ञाता अनुभवी वृद्धजन सम्मिलित होते थे।[10] अतः सभा 'विद्वज्जन सम्पूर्ण' कही गई है।[11]

---

१. वा० रा० २।२।५३, २।१४।४०
२. वही २।१५।२
३. वही २।१११।५, २४
४. वही २।१११।५
५. वही ७ सर्ग ५९ के पश्चात् अधिक पाठ सर्ग ३ श्लोक ३४
६. वही ७ सर्ग ५९ के पश्चात् अधिक पाठ सर्ग १ श्लोक २ आदि
७. वही १।१।१२, १४, १५
८. वही २।८२।४
९. वही १।७।१, २
१०. वही ७ सर्ग ५९ के पश्चात् अधिक पाठ सर्ग ३ श्लोक ३४
११. वही २।८२।३

सभा के सदस्यों के लिये आदरसूचक शब्दों का प्रयोग—

रामायण कालीन सभा में समाज के उच्चस्तरीय एवं सम्मान प्राप्त लोगों का प्रतिनिधित्व था। अत: वे आदरसूचक शब्दों से सम्बोधित होते थे। सभा में सदस्यों के लिये सभासद,[1] सभ्य,[2] आर्यमिश्र,[3] आर्य,[4] आर्यगण[5] आदि आदरसूचक शब्दों का प्रयोग रामायण में किया गया है। सभासद प्रकृति भी कहे गये हैं।[6]

राजा सभा के सदस्यों को भवन्त:[7] भवद्भि:[8] जैसे आदरसूचक शब्दों का प्रयोग करता था।

सभा का सभापति—

रामायणानुसार राजा सभा का सभापति होता था। राजा सभा के सभापति के रूप में सिंहासन या राज-आसन[9] या परमासन[10] पर आसीन होता था। राजा जब न्याय करने के लिये सभा या न्यायालय में उपस्थित होता था, तो वह सभापति या प्रधान न्यायाधिपति के रूप में धर्मासन[11] पर आसीन होता था। राजा की अनुपस्थिति में सभा का सभापति राजपुरोहित होता था।[12]

---

१. वा० रा० २।५।२४, २।८२।१७, ६।११।३१
२. वही ७ सर्ग ५९ के पश्चात् अधिक पाठ सर्ग ३ श्लोक ३५
३. वही २।८२।१९
४. वही २।७९।१६, २।८२।१
५. वही २।८२।१
६. वही २।८२।४, २।१०६।२६
७. वही २।२।१५, २५
८. वही ६।१२।२५
९. वही २।५।२३
१०. वही २।३।३४, ६।११।१७
११. वही ७ सर्ग ५९ के पश्चात् अधिक पाठ सर्ग १ श्लोक १
१२. वही २।६७।४

सभा भवन—

अयोध्या में सभा भवन राजप्रासाद में ही था[१]। किष्किधा में भी सभाभवन राजप्रासाद का ही एक भाग था।[२] लंका में सभाभवन राजप्रासाद से अलग एवं कुछ दूरी पर था। रावण अपने प्रासाद से रथ पर आरूढ़ होकर राजप्रासाद से सभाभवन में उपस्थित होने के लिये गया था।[३] रावण का रथ वैभव सम्पन्न एवं शिक्षित घोड़ों द्वारा सभा भवन की ओर ले जाया गया था।[४]

सभा की बैठक—

रामायणानुसार सभा की बैठक किसी विशेष समस्या या मामले पर विचार विमर्श करने के लिये होती थी। सभा की बैठक राजा के निर्वाचन के समय,[५] राजा के परित्याग के समय,[६] राज्य में आपत्ति कालीन स्थिति के समय,[७] युद्ध के समय[८] तथा न्याय के समय[९] होती थीं। सभा की बैठक राजा द्वारा आमन्त्रित की जाती थी।

रामायण में सभा की विभिन्न बैठकें—

रामायणानुसार अयोध्या, किष्किन्धा और लंका में सभा की अनेक बैठकें सम्पन्न हुई।

अयोध्या में सभा की निम्नलिखित बठकें सम्पन्न हुई, जिनमें राजा या राजपुरोहित, मंत्रीगण, अमात्यगण, सेनापति,

१. वा० रा० २।४।१, ३; २।१०।६, १०; २।११।६
२. वही ४।२६।२४, ४ सर्ग ३३
३. वही ६।११।४
४. वही ६।११।३
५. वही २।२।१
६. वही २।२।८
७. वही २।६७।४
८. वही ६ सर्ग ११
९. वही ७ सर्ग ५९ के पश्चात् अधिक पाठ सर्ग १ आदि

राजकुमार, पौरजानपद, गणवल्लभ, नैगम एवं श्रेणी मुख्य आदि उपस्थित रहते थे। कभी कभी सभा में अन्य देशों के राजाओं की भी उपस्थिति रहती थी।[१]

रामायण में सर्वप्रथम सामान्य जनसभा का उल्लेख वालकाण्ड के चतुर्थ सर्ग में है। इस जन संसद में राम ने मन्त्रियों तथा अपने भ्रातागण और अन्य लोगों के समक्ष लवकुश से रामचरित का गायन सुना था।[२] यह सभा शासन के किसी मामले पर विचारार्थ नहीं हुई थी। अतः यह सामान्य सभा थी।

अयोध्या में सभा की शासन सम्बन्धी प्रथम बैठक राम को युवराज बनाने के लिये एवं स्वयं राजपद से मुक्त होने के लिये राजा दशरथ द्वारा आयोजित की गई थी।[३] यह राजा दशरथ की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई थी। अयोध्या में सभा की अन्य बैठकें राजा दशरथ की मृत्यु के उपरान्त हुई थीं।

राजा दशरथ के मरणोपरान्त अयोध्या में आपत्कालीन स्थिति उत्पन्न होने पर एक सभा राजपुरोहित वसिष्ठ की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई थी। इसमें राज्य को अराजकता की स्थिति से बचाने के लिये विचार किया गया था।[४]

अयोध्या में एक लघु सभा का आयोजन भरत के ननिहाल से लौटने पर तथा राजा दशरथ की अन्त्येष्टि क्रिया के चौदहवें दिन भरत के समक्ष राजकर्ता लोगों की उपस्थिति में हुई थी। जिसमें राजकर्ता लोगों ने भरत से मन्त्रियों एवं पुरवासियों के समक्ष राज्य पद ग्रहण करने के लिये निवेदन किया था। भरत ने उनके प्रस्ताव को अस्वीकार करके राम के राज्याभिषेक के लिये उन्हें वन से

---

१. वा० रा० २।१।४५, ५०; २।८१।१२; २।८२।२३
२. वही १।४।२५, २६
३. वही २।२।१, ८, ९
४. वही २।६७।२, ४ आदि

लोटाने के लिये विचार प्रस्तुत किया था। अन्त में सभी राजकर्ता लोगों ने भरत के मत का समर्थन किया था।[1]

अयोध्या में सभा की अन्य महत्त्वपूर्ण बैठक राजपुरोहित वसिष्ठ के द्वारा आमन्त्रित की गई थी।[2] इसमें भरत को राजा बनाने के लिये कहा गया था।[3] भरत ने स्वयं राजा बनने का प्रस्ताव अस्वीकार किया था तथा राम के समीप वन में जाने का निर्णय लिया था। सभा ने भरत के विचारों का अनुमोदन भी किया था।[4]

सभा की अगली बैठक चित्रकूट में सम्पन्न हुई थी। इसमें भरत के द्वारा पुरोहित, मन्त्रियों, पौरजानपद आदि सभासदों के समक्ष राम के अभिषेक का प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया था। अन्त में राम द्वारा भरत का प्रस्ताव अस्वीकार किये जाने पर पुरवासियों की सहमति से चौदह वर्ष तक भरत द्वारा ही अयोध्या का राज्य करने का निर्णय लिया गया था।[5]

अयोध्या में सभा की अन्य बैठकें रामराज्य में आयोजित की गईं थीं। राम राज्य में प्रथम सभा न्यायसभा थी। इसमें राजा, पुरोहित, मन्त्रीगण, नैगम, सभ्यगण एवं सामन्त राजा न्यायार्थ न्यायालय में उपस्थित थे।[6] राम राज्य में दूसरी सभा की बैठक ब्राह्मण-पुत्र की अकाल मृत्यु पर राजा द्वारा आमन्त्रित की गई थी। इसमें उन्होंने राजपुरोहित तथा अन्य मन्त्रियों एवं भाइयों तथा नैगमों के समक्ष समस्या के समाधान पर विचार किया था।[7]

---

१. वा० रा० २।७९।१, ४, ५, ७, ८, ६, ११, १४
२. वही २।८१।६, ११
३. वही २।८२।४, ७
४. वही २।८२।७, १०, २५
५. वही २।१०४।८, २।१०६।२६, २७ आदि
६. वही ७ सर्ग ५९ के पश्चात् अधिक पाठ सर्ग १ श्लोक २, ३
७. वही ७।७४।२, ३, ५, ६, ८ आदि

किष्किन्धा में परिषद् या सभा की बैठक का संकेत मात्र है। यह लक्ष्मण के किष्किन्धा में प्रवेश करने पर हुई थी। इसमें तारा की उपस्थिति का उल्लेख है। मन्त्रीगण भी उपस्थित रहे होंगे। लक्ष्मण ने तारा से कहा था कि सुग्रीव अपने मन्त्रियों तथा राजसभा के सदस्यों सहित केवल विषय भोगों का ही सेवन कर रहा है।[1] किष्किन्धा की सभा में रानी की उपस्थिति प्रदर्शित है। इससे स्पष्ट है कि स्त्रियाँ राजनीति में भाग लेती होंगी।

लंका में सभा की अनेक बैठकों का उल्लेख रामायण में है। लंका की सभा में राजा, सैनिक, अधिकारी, मन्त्रीगण, राजा के मित्र, उसके सम्बन्धी एवं नगरवासी उपस्थित रहते थे।[2]

लंका में सभा की प्रथम बैठक हनुमान द्वारा लंका विध्वन्स कर देने के पश्चात् हुई। इस सभा में रावण ने लंका के विध्वंस हो जाने के कारण विषम परिस्थिति उत्पन्न होने पर सभासदों के विचारों को जानना चाहा था।[3]

लंका में सभा की दूसरी बैठक विशेष महत्त्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय है। इसमें राजा रावण ने सीता के प्रति अपनी आसक्ति बताते हुये[4] सभासदों से सीता को न लौटाने और रामलक्ष्मण को मारने विषयक उपायों को जानना चाहा था।[5]

लंका में सभा की तीसरी बैठक में रावण ने सभा के सदस्यों को राम के विरोध में उत्तेजित करने का प्रयत्न किया था।[6] सभा

---

१. वा० रा० ४।३३।४३
२. वही ६।६।१, ६।११।२, १८
३. वही ६।६।१, २, ४
४. वही ६।११।१, ६।१२।१२, १३, १५, १६, १७
५. वही ६।१२।२५
६. वही ६।३५।३, ४, ५

में माल्यवान ने युद्धनीति पर प्रकाश डालते हुये राम के साथ सन्धि करने के लिये कहा था। माल्यवान के वचनों का निरादर करके रावण ने लंका की रक्षार्थ सेना को यथास्थान नियुक्त करने का आदेश देकर सभा का विसर्जन किया था।[१]

लंका में राम ने भी सभा का आयोजन करके वानरेन्द्र सुग्रीव, विभीषण, युवराज अंगद, भाई लक्ष्मण और मुख्य वानरों के साथ युद्ध में विजय प्राप्ति के लिये मन्त्रणा की थी।[२]

लंका में समायोजित सभा की वह बैठक भी उल्लेखनीय है, जो कि इन्द्रजीत द्वारा हनुमान् के बन्दी बनाये जाने के समय पर हुई थी। इस परिषद् में भी रावण अपने मन्त्रियों, राक्षसों एवं अन्य हितैषियों के साथ था।[३] इसमें रावण ने मन्त्रियों के माध्यम से हनुमान् से बातचीत प्रारम्भ की थी।[४] इसी सभा में रावण द्वारा हनुमान् के बध का आदेश दिया गया था।[५] विभीषण ने दूत को अवध्य कहकर[६] राजा रावण के उक्त आदेश का विरोध किया। रावण ने विभीषण की सलाह को मानकर तथा दूत को अवध्य मानकर[७] हनुमान् के अङ्ग भङ्ग करने का आदेश दिया था।[८]

उपर्युक्त सभाओं के अतिरिक्त रामायण में राजा नृग की सभा का भी उल्लेख है। इसमें राजा 'नृग' पुरोहित, मन्त्रीगण

---

१. वा० रा० ६।३५।१० आदि, ६।३६।१७, २२
२. वही ६।३७।१, ५ आदि
३. वही ५।४६।११, १२, १३
४. वही ५।४८।६१, ५।५०।४, ५, ६, ७
५. वही ५।५२।१
६. वही ५।५२।२, ५, ६
७. वही ५।५३।२
८. वही ५।५३।३

तथा समस्त नैगमों के साथ उपस्थित थे।[1] इसमें राजा नृग द्वारा अपने पुत्र को राजपद पर अभिषिक्त कराये जाने के विषय में तथा स्वयं शाप के परिणाम को भोगने के लिये विचार व्यक्त किये गये थे।[2]

रामायण में उपर्युक्त रूप से विभिन्न सभाओं के आयोजनों का उल्लेख है। यह सभी सभायें शासन से सम्बन्धित कार्यों के लिये उल्लेखनीय हैं।

रामायण कालीन सभा—एक दृष्टि—

रामायणानुसार सभी राज्यों में सभा की बैठकों की प्रक्रिया लगभग समान थी। तत्कालीन शासन में सभा की बैठक राज्य के कार्यों से सम्बन्धित मामलों तथा समस्याओं पर विचार विमर्श और उसके समाधान के लिये होती थीं।

राजा द्वारा दूतों के माध्यम से[3] सभा के सदस्यों को आमन्त्रित किया जाता था।[4] सभा में राजा, उसके मित्र-राजागण, मन्त्रि-परिषद् के सदस्य, पौरजानपद, सेनापति, युवराज आदि उपस्थित रहते थे।[5]

सभा भवन सुसज्जित होता था।[6] वह स्फटिक पत्थर से निर्मित होता था। उसमें स्वर्ण और रजत के स्तम्भ होते थे। भवन का फर्श सुनहले वस्त्रों से आच्छादित रहता था।[7] सभा भवन भिन्न भिन्न प्रकार के आसनों से सज्जित रहता था।[8]

---

१. वा० रा० ७।५४।५
२. वही ७।५४।८ आदि
३. वही २।८१।११; ६।११।१८
४. वही २।१।४५; २।८१।११; ६।११।१८
५. वही १।१।४५, ५०; २।२।१, १९; २।८२।२४; ६।११।१८, २६
६. वही ६।११।१४
७. वही ६।११।१५
८. वही २।१।४६

सभाध्यक्ष या राजा के लिये उसमें मणियों से जटित सिंहासन रहता था।[१] सिंहासन पर मृगचर्म आच्छादित रहता था।[२]

सर्वप्रथम राजा सभा भवन में जाता था। लंका का सभा भवन राजप्रासाद से दूर था। राजा रावण सब प्रकार से रक्षित एवं सज्जित रथ में सभाभवन में जाता था।[३] मार्ग में राजा के स्वागतार्थ तुरही एवं शङ्ख का शब्द होता था। पुरजन राजा के स्वागतार्थ हाथ जोड़ते थे, स्तुति करते थे एवं आशीर्वाद के शब्द कहते थे।[४]

सर्वप्रथम राजा सभाभवन में प्रविष्ट होता था एवं राजसिंहासन पर आसीन होता था।[५] सभा के समय सभा भवन में सुरक्षा का प्रबन्ध रहता था।[६] विशेष अवसरों पर सभा में विशेष सुरक्षा का प्रबन्ध किया जाता था।[७] राजा के परमासन पर आसीन हो जाने के पश्चात् सभासद् उपस्थित होते थे।[८] वे अपने वाहनों को सभा भवन के द्वार पर छोड़ कर सभा भवन में प्रवेश करते थे।[९] सभासद सभाभवन में प्रवेश करते ही राजा के चरणों में झुकते थे[१०] एवं राजा द्वारा सम्मान प्राप्त करते थे।[११] तदनन्तर वे पद एवं योग्यता के अनुसार पृथक् पृथक् आसनों को ग्रहण करते थे।[१२] वे राजा की ओर मुख करके यथाक्रम में बैठते

---

१. वा० रा० २।१।४८; ६।११।१७
२. वही ६।११।१७
३. वही ६।११।४, ४, ६ आदि
४. वही ६।११।६, १४
५. वही २।१।४८; २।८१।६, १०; ६।११।१५, १६
६. वही ६।११।१६
७. वही ६।१२।२, ३
८. वही २।१।४८; ६।११।२३
९. वही ६।११।२३
१०. वही ६।११।२४
११. वही २।१।५०; ६।११।२४
१२. वही २।८२।२; ६।११।२४, २६

थे।[1] सभासदों को बैठाने की योजना के लिये सेनापति नियुक्त किये जाते थे, जो सभासदों को यथास्थान सभाभवन में बैठाते थे।[2] रावण की सभा में सभासदों को बैठाने के लिये शुक एवं प्रहस्त की नियुक्ति की गई थी।[3]

सभा में राजा एवं समस्त सभासद सुन्दर एवं चमकीले वस्त्रों से सुसज्जित रहते थे।[4] वे नाना आभूषणों से अलङ्कृत एवं अङ्गराग तथा मालाओं से सुशोभित होते थे।[5]

सभासद विद्वान्, निपुण, गुणज्ञ, सर्वज्ञ, स्थिर बुद्धिवाले तथा पण्डित होते थे।[6] सभा विद्वज्जनों से परिपूर्ण एवं शोभायमान होती थी।[7] सभा में कोई सदस्य व्यर्थ की बात नहीं करता था, न ही कोई चिल्लाता था और न ही उच्च स्वर से ही बोलता था।[8] वह तत्कालीन सभा का गौरव था।

सभा की कार्यवाही—

राजा एवं सभी सभासदों के यथायोग्य आसनों पर आसीन हो जाने के पश्चात् राजा या सभाध्यक्ष राजोचित, मधुर, अनुपमेय एवं रस युक्त वाणी से[9] शिष्टता पूर्वक[10] सभासदों को आदरसूचक शब्दों से सम्बोधित करके[11] विधिपूर्वक विचारणीय विषय को सभासदों के समक्ष विचारार्थ प्रस्तुत करता था एवं हितकर सम्मति लेता था।[12]

---

१. वा० रा० २।१।४६; २।८२।२
२. वही ६।११।२६
३. वही ६।११।२६
४. वही २।८२।२; ६।११।३०
५. वही २।८२।२; ६।११।३०
६. वही ६।११।२६; २।८२।१
७. वही २।८२।३
८. वही ६।११।३१
९. वही २।२।३
१०. वही २।८२।४; ६।१२।७ आदि
११. वही २।२।४; ६।१२।२५
१२. वही २।२।८, १२, १४, १५; २।८२।७; ६।६।१६; ६।१२।२५

राजा सभासदों के समक्ष प्रस्ताव प्रस्तुत करते समय अपना मत भी प्रस्तुत करता था।[१] कभी कभी सभा के सदस्य भी सभाध्यक्ष के समक्ष किसी मामले पर शान्तिपूर्ण ढंग से अपना अपना आशय प्रकट करते थे[२] एवं सभाध्यक्ष से समस्या का समाधान करने के लिये अनुरोध करते थे। राजा दशरथ की मृत्यु के पश्चात् सभा के सदस्यों ने सभाध्यक्ष पुरोहित वसिष्ठ से राज्य को अराजकता से बचाने के लिये किसी योग्य व्यक्ति को कौसल राज्य का राजा बनाने के लिये अनुरोध किया था।[३]

राजा द्वारा सभा के समक्ष प्रस्ताव प्रस्तुत किये जाने पर सदस्यों से अनुरोध किया जाता था कि वे भली प्रकार सोच विचार कर एवं एकमत होकर सम्मति दें।[४] राजा द्वारा यह भी कहा जाता था कि यदि उसका प्रस्ताव ठीक न हो, तो अन्य उपाय या प्रस्ताव प्रस्तुत किया जा सकता है।[५]

विचारणीय विषय को प्रस्तुत किये जाने पर[६] सभासद उस विषय पर परस्पर मिलकर विचार प्रस्तुत कराते थे[७] एवं एकमत होकर राजा के प्रस्ताव का समर्थन करते थे।[८] सभासद प्रस्तुत विषय पर पृथक् पृथक् रूप से भी विचार प्रस्तुत करते थे।[९] सभाध्यक्ष द्वारा अनुचित प्रस्ताव प्रस्तुत किये जाने पर भी सभासद अत्यन्त शिष्टतापूर्वक उसका निराकरण या परिहार करके अन्य सुझाव देते थे।[१०] भरत द्वारा अपने लिये राज्याभिषेक का विरोध

१. वा० रा० २।२।१०, १२
२. वही २।६७।४
३. वही २।६७।३८
४. वही २।२।१६; ६।६।४, १२; ६।१२।२०
५. वही २।२।१५, १६
६. वही २ सर्ग २; ६।६।२, ३
७. वही २।२।१९, २०; ६।७।१
८. वही २।२।१९; २०, २१
९. वही ६।८।८, १२, १३, १४
१०. वही २।८२।११, १२; ६।९।७ आदि; ६।१२।२७ आदि

शिष्ट ढंग से किया गया था एवं सभासदों के समक्ष राम के राज्याभिषेक का प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया था।[1] हनुमान् के बध को अनुचित कहकर विभीषण ने शिष्टता से उसका परिहार किया था।[2] कभी कभी रावण की सभा में उसके मत का विरोध उत्तेजित ढंग से भी सभासदों द्वारा किया जाता था।[3]

राजा द्वारा सभासदों के समक्ष अनुचित प्रस्ताव प्रस्तुत किये जाने पर या अनुचित बात पर विचार किये जाने पर सभासदों द्वारा राजा की आलोचना की जाती थी[4] एवं हितकारी तथा अर्थयुक्त करणीय सुझाव प्रस्तुत किये जाते थे।[5]

अयोध्या की सभा में राजा या सभाध्यक्ष के प्रस्तावों का सभासदों द्वारा विरोध किये जाने पर ही सभासदों का उचित मत राजा या सभाध्यक्ष को मान्य होता था राजा दशरथ ने सभासदों से कहा था कि यदि राम के युवराज सम्बन्धी उनका मत सभासदों को मान्य न हो, तो वे अन्य प्रस्ताव प्रस्तुत करें।[6] लंका की सभा में राजा या सभाध्यक्ष प्रस्ताव या विचार को प्रकट करता था तथा अपने मत की पुष्टि उचित या अनुचित रूप से कराने के लिये सभासदों को बाध्य करता था। राजा रावण ने अनेक सभासदों के उचित मत को भी अमान्य कर दिया था।[7] सभासदों द्वारा सहमति प्राप्त न होने पर रावण सभासदों का अनादर भी कर देता था।[8]

रावण द्वारा उन्हीं सभासदों का मत मान्य होता था, जो उसके प्रस्ताव या विचार से सहमत होते थे। उसके द्वारा ऐसे सभासद

---

१. वा० रा० २।८२।११
२. वही ५।५२।२ आदि
३. वही ६।१२।२७
४. वही ६।१२।२६, ३०; ६।१४।१ आदि
५. वही ६।१४।१ आदि
६. वही २।२।१५, १६
७. वही ६ सर्ग १६; ६ सर्ग ३६
८. वही ६।१६।१५

प्रशंसा के पात्र होते थे ।[१] उसकी सभा में विरोध प्रकट करने वाले सभासदों को सभाभवन से बहिर्गमन करना पड़ता था ।[२]

अन्त में प्रस्तुत विषय पर सभी सभासदों द्वारा मत प्रकट किये जाने पर राजा अपनी प्रसन्नता व्यक्त करता हुआ सभासदों का सम्मान करके[३] निर्णय की घोषणा करता था। निर्णयानुसार मन्त्रियों, अमात्य या सचिवगणों को कार्य के सम्पादन करने का आदेश दिया जाता था ।[४] तदुपरान्त सभाध्यक्ष द्वारा सभा का विसर्जन किया जाता था ।[५] सभा विसर्जन के समय राजा सभा के सदस्यों द्वारा 'जय' शब्द से सम्मानित होता था ।[६]

अयोध्या और लंका को सभा– 'समीक्षण'

अयोध्या की सभा एक शक्तिशाली राष्ट्रीय संस्था थी । उसमें सभा के सदस्यों के समक्ष राजा या राजकुमार को झुकना पड़ता था। राजा दशरथ द्वारा सभासदों के प्रति यह कथन 'कि यदि वे राम को युवराज पद के योग्य न समझें, तो किसी अन्य व्यक्ति का नाम प्रस्तावित करें,[७] स्पष्ट करता है कि अयोध्या में सभा विशेषाधिकारों से युक्त थी। इसी प्रकार भरत को भी सभा का समर्थन प्राप्त न होने पर चित्रकूट की सभा में राम के विरोध सम्बन्धी अनशन को तोड़ना पड़ा था ।[८] स्पष्ट है कि अयोध्या की सभा महत्त्वपूर्ण स्थान रखती थी ।

लंका में रावण की सभा विशेष शक्तिशाली न थी। यद्यपि यहाँ भी सभा के सदस्य राजा के अनुचित कार्य या विचार का विरोध करते थे, फिर भी राक्षस राजा रावण सभा के सदस्यों

---

१. वा० रा० ६।१३।६
२. वही ६।१६।१५; ६।३६।१५
३. वही २।३।२, ३
४. वही २।३।३, ४; ६।३६।१७ आदि
५. वही २।४।१; ६।६।२४; ६।३६।२२
६. वही ६।३६।२२
७. वही २।२।१५, १६
८. वही २।१११।२०, २१, २४

को अपनी बात मनवाने के लिये विवश करता था और विरोधी सदस्यों का अपमान करता था।[1]

अयोध्या की सभा की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उसके सभी सभासद किसी कार्य के लिये विधिपूर्वक विचार करके एक मत हो जाते थे।[2] लेकिन लंका में सभा के सभासदों में मतवैभिन्न्य रहता था।

अयोध्या में राजा किसी विषय पर मन्त्रियों से सलाह लेकर तत्पश्चात् विषय को विचारार्थ सभा के समक्ष प्रस्तुत करता था,[3] लेकिन मन्त्रियों से कार्यों के विषय में पूर्व सलाह लिये बिना ही राजा रावण कार्य को विचारार्थ सीधे ही सभा के समक्ष प्रस्तुत करता था।[4]

अयोध्या में 'सभा' मन्त्रिपरिषद् पौरजानपद एवं निगम मुख्य आदि से संगठित थी।[5] लंका में सभा में मन्त्रीगण एवं पुरवासियों की तथा सैनिक अधिकारियों की उपस्थिति रहती थी। लंका की सभा राष्ट्रीय सभा थी।[6]

निष्कर्षतः अयोध्या और लंका की सभा के अधिकारों में कुछ अन्तर अवश्य है। वस्तुतः अयोध्या और लंका की सभा के सदस्य राजा एवं राष्ट्र के हित, लाभ और प्रिय करने के लिये तत्पर रहते थे।[7]

सभा के कर्तव्य—

तत्कालीन शासन में सभा एक राष्ट्रीय संस्था थी; अतः सभा के सदस्यों को सम्पूर्ण राष्ट्र के प्रति उत्तरदायी रहना पड़ता था। शासन सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण कार्यों में भाग लेना एवं उन कार्यों को

---

१. वा० रा० ६।१६।१५; ६ सर्ग ३६

२. वही २।२।१६, २०; २।१११।२०

३. वही २।२।१ आदि

४. वही ६ सर्ग ६; ६ सर्ग १२

५. वही २।२।१६

६. वही ६।११।१८

७. वा० रा० २।२।१६; ६।१२।७

विधिवत् सम्पन्न कराना सभासदों का कर्तव्य था । राजा के निर्वाचन में भाग लेना,[१] राज्याभिषेक सम्पन्न कराना,[२] संकट कालीन स्थिति में राज्य को अराजकता से बचाना,[३] सत्य और धर्मानुसार न्याय कार्यों को सम्पन्न कराना,[४] स्वार्थ, भय आदि के कारण राजा को अनुचित सम्मति न देना,[५] कार्यों को विचार कर एक मत होकर सम्मति देना,[६] राजा और राष्ट्र के हित की सम्मति देना[७] आदि सभा के सदस्यों के कर्तव्य थे ।

सभा के अधिकार—

रामायणानुसार तत्कालीन शासन में सभा को अनेक अधिकार प्राप्त थे । ये निम्नांकित हैं—

(१) तत्कालीन सभा को युवराज का निर्वाचन करने का अधिकार था । सभा के सदस्य अपनी इच्छानुसार युवराज का निर्वाचन कर सकते थे ।[८]

(२) सभा किसी योग्य उत्तराधिकारी या योग्य व्यक्ति को राज्याधिकारी बनाने की अधिकारिणी थी । इसके लिये सभा के सदस्य किसी एक व्यक्ति को अपने अधिकार दे सकते थे । अयोध्या में राजा दशरथ की मृत्यु के उपरान्त सभा के सदस्यों ने पुरोहित वसिष्ठ को अधिकार देकर इक्ष्वाकु कुल के उत्तराधिकारी या किसी योग्य व्यक्ति को कौसल राज्य का अधिकारी बनाने का निवेदन किया था ।[९]

---

१. वा० रा० २।१।४६; २।२।१, १६
२. वही २।१४।६८
३. वही २ सर्ग ६७
४. वही ७ सर्ग ५९ के पश्चात् अधिक पाठ सर्ग ३, श्लोक ३४
५. वही २।२।१८; ६।११।३१
६. वही २।२।१६
७. वही ६।१२।७
८. वही २।२।१५, १६
९. वही २।६७।३८

(३) सभा के सदस्यों को युद्ध एवं न्याय सम्बन्धी कार्यों में राजा को सम्मति देने का एवं तत्सम्बन्धी निर्णय लेने के अधिकार प्राप्त थे।

(४) सभा के सदस्यों को राजा की निरंकुशता एवं स्वच्छन्दता रोकने के लिये भी अधिकार प्राप्त थे।

वस्तुत: सभा राजा की निरंकुशता को रोकने के लिये अंकुश का कार्य करती थी एवं राज्य के कार्यों के प्रति उत्तरदायी थी।

रामायण कालीन सभा की विशेषतायें—

(१) रामायणकालीन सभा राष्ट्रीय संस्था थी। तत्कालीन सभा में शासकीय एवं अशासकीय दोनों प्रकार के वर्गों का प्रतिनिधित्व था। उसमें राजा, मन्त्री, अमात्य या सचिव, युवराज तथा सेनापति के अतिरिक्त पौरजानपद आदि नगर एवं जनपद के प्रतिनिधि तथा सीमान्त राजागण भी उपस्थित रहते थे।[1]

(२) सभा में शासन सम्बन्धी समस्त महत्त्वपूर्ण मामलों—युवराज का निर्वाचन, युद्ध सम्बन्धी निर्णय, राजा का पदत्याग, संकटकालीन स्थिति एवं न्याय आदि पर विचार होता था।[2]

(३) प्रजा पर शासन सभा की सहायता से होता था।

(४) तत्कालीन सभा विद्वानों एवं अनुभवी लोगों की संस्था थी।[3]

(५) सभा में मर्यादा और शिष्टाचार था। सभा के सदस्य राजा की आज्ञा पर बोलते थे।[4] सभासद झूठ नहीं बोल सकते थे। वे उत्तेजित होकर या जोर से या एक साथ भी नहीं बोल सकते थे। वे अलग अलग शान्तिपूर्ण ढंग से अपना मत प्रस्तुत करते थे।[5]

---

१. वा० रा० २।१।४६; २।२।१६
२. वही २।२।१,८; ६।११।१८; २।६७।२; ७ सर्ग ५६ के पश्चात् अधिक पाठ सर्ग १ आदि
३. वही २।८२।१, ३; ६।११।३०
४. वही २।२।१६; ६।६।३०
५. वही ६।११।३१

(६) सभा के निर्णय पर कार्य का सम्पादन मन्त्रिपरिषद् के सदस्यों द्वारा होता था।

(७) सभा की विशेष बैठक होने पर उसमें विशेष सुरक्षा का प्रबन्ध रहता था।[1]

(८) सभा की व्यवस्था के लिये अधिकारीगण नियुक्त रहते थे।[2]

(६) सभा में सभी को बोलने का अधिकार था।

(१०) सभा राष्ट्र के कल्याण की संस्था थी।

रामायण में मन्त्रिपरिषद् और सभा—

रामायण में शासन सम्बन्धी दो संस्थाओं मन्त्रिपरिषद् और सभा का उल्लेख है। ये दोनों संस्थायें कार्य और आकार की दृष्टि से किञ्चित् भिन्नता रखती थी। इनमें निम्नलिखित भेद दृष्टिगोचर होता है—

(१) मन्त्रीपरिषद् के सदस्य शासकीय पदाधिकारी थे। इसमें राजा के अतिरिक्त राजपुरोहित एवं अन्य द्विजादि, मन्त्रीगण तथा अमात्य या सचिव सम्मिलित थे। 'सभा' में उपर्युक्त मन्त्रिपरिषद् के सदस्यों के अतिरिक्त नगर और जनपद के निवासियों के प्रतिनिधि पौरजानपद नैगम आदि भी सम्मिलित थे। ये प्रतिनिधि शासकीय अधिकारी पदाधिकारी नहीं थे। मन्त्रिपरिषद् सभा का एक अङ्ग थी।

(२) मन्त्रिपरिषद् शासकीय संस्था थी, जब कि सभा राष्ट्रीय संस्था थी।

(३) राज्य से सम्बन्धित कार्यों पर विचार विमर्श एवं मन्त्रणा करना दोनों संस्थाओं के सदस्यों का कर्तव्य था। लेकिन कार्य का सम्पादन मन्त्रिपरिषद् के सदस्य—अमात्यों द्वारा ही होता था।

(४) मन्त्रिपरिषद् की मन्त्रणा गुप्त रहती थी, जबकि सभा में स्वतन्त्र रूप से विचार विमर्श होता था।

---

१. वा० रा० ६ सर्ग १२

२. वही ६ सर्ग १२

(५) राजा के निजी कार्य—पुत्रेष्टियज्ञ, राजकुमार का विवाह आदि में मन्त्रणा देना एवं उनका सम्पादन करना मन्त्रिपरिषद् के सदस्यों का कर्त्तव्य था। राजा के निजी कार्यों के लिये मन्त्रि-परिषद् के अतिरिक्त सभा के सदस्यों से सलाह नहीं ली जाती थी। इसका सम्बन्ध युवराज के निर्वाचन, आपत्कालीन स्थिति के निवारण एवं युद्ध तथा न्याय आदि से था।

इस प्रकार मन्त्रिपरिषद् व्यक्तिगत रूप से राजा ने तथा शासन सम्बन्धी कार्यों से सम्बन्धित थी। जबकि सभा केवल शासन के कार्यों से सम्बन्धित थी। यह सम्पूर्ण राष्ट की प्रतिनिधि संस्था थी।

वस्तुत: मन्त्रिपरिषद् तथा सभा राज्य से सम्बन्धित दोनों ही संस्थायें राज्य के प्रति पूर्णा रूपेण उत्तरदायी थीं।

कोश—

राज्य की सुरक्षा, व्यवस्था और उन्नति के लिये धन की आवश्यकता होती है। अत: राज्य के स्थायित्व के लिये वित्त का महत्त्व उल्लेखनीय है। त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) में अर्थ की प्रधानता है। अर्थ को धर्म और काम का मूल माना गया है।[1]

राज्य में धन 'कोश' के नाम से अभिहित है। 'कोश' शब्द राज्य-भण्डार का पर्याय है। रत्न, स्वर्ण, वस्त्र एवं अन्य मुद्रा द्रव्य आदि कोश के अन्तर्गत आते हैं।

रामायणानुसार राजा त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) का समान रूप से प्राप्ति का प्रयत्न करता था।[2] राज्य के हितार्थ अर्थ का संचय करने का रामायण में अनेक स्थलों पर उल्लेख है। राजा दशरथ के अमात्य 'कोश' के संग्रह में सदैव तत्पर रहते थे।[3] राजा लोग

---

१. अर्थशास्त्र १।७
२. वा० रा० १।६।५
३. वही १।७।९

स्वयं अर्थार्जन के उपायों के ज्ञाता होते थे।[१] धर्म, अर्थ और काम के लिये राजा लोग अलग अलग समय का निर्धारण करते थे।[२] रामायण में राजाओं के लिये नित्य प्रति धन की प्राप्ति के उपायों के विषय में चिन्तन करने के निर्देश हैं।[३] धन की महत्ता के कारण ही तत्कालीन राज्यों में राज्य की आय उसके व्यय से अधिक रखी जाती थी।[४] लेकिन यह बात उल्लेखनीय एवं महत्त्वपूर्ण है कि बिना किसी प्रजाजन को सताये ही राजकोश की वृद्धि की जाती थी। प्रजा के किसी भी व्यक्ति से बलात् या पीड़ा देकर धन के संग्रह से कोश की वृद्धि नहीं की जाती थी।[५] रामायण में राष्ट्र के लिये कोश का अत्यधिक महत्त्व बताया गया है। इसीलिये राजाओं से उनके राष्ट्र और मित्र के अतिरिक्त उनके धन या कोश की भी समृद्धि के विषय में प्रश्न किया जाता था।[६]

आय के स्रोत—

कोश की पूर्ति या वृद्धि का साधन आय होती है। रामायणानुसार तत्कालीन शासन तन्त्र में आय के स्रोत निम्नलिखित थे—

(१) प्रजा से प्राप्त 'कर'।[७]
(२) अधीन राजाओं से प्राप्त 'कर'।[८]
(३) मित्र राजाओं से प्राप्त भेंट।[९]
(४) पौरजानपदों या प्रजा से प्राप्त उपहार।[१०]

---

१. वा० रा० २।१।२६
२. वही २।१००।६४
३. वही २।१००।१८
४. वही २।१००।५५
५. वही १।७।११
६. वही २।५०।४२
७. वही २।७५।२४; ३।६।११; ७।७४।३१
८. वही १।५।१४
९. वही २।८२।८; ७।३८।१२
१०. वही २।१५।४६; ७।३९।८

(५) अपराधियों से प्राप्त दण्ड रूप में अर्थ ।[1]
(६) कृषि एवं सिंचाई से प्राप्त कर ।[2]
(७) राज्य की खानों एवं वनों से प्राप्त धन ।[3]

कर लेने की विधि—

रामायण में कर को 'बलि' कहा गया है।[4] तत्कालीन शासन में यह 'वलि' या 'कर' चारों वर्णों से ग्रहण किया जाता है। लेकिन आय का बहुत बड़ा हिस्सा व्यापारी वर्ग से ही प्राप्त होता था।[5] ब्राह्मण और क्षत्रियों से अल्प मात्रा में कर लिया जाता था।[6] वस्तुत: ब्राह्मण 'धर्म' के माध्यम से ही राजा को कर देते थे।[7] क्षत्रिय भी प्रजा एवं राज्य को रक्षा के माध्यम से राज्य को कर देते थे।[8] इसी प्रकार शूद्र भी अपनी आय के अनुसार अथवा राज्य के लिये श्रम करके कर देते थे।[9]

राज्य को कर के रूप में प्रजा की आय का छठवाँ हिस्सा प्राप्त होता था।[10] धार्मिक ब्राह्मण या तपस्वी लोगों से कर के रूप में राजा को उनकी तपस्या का चतुर्थ भाग प्राप्त होता था।[11]

राज्य की आय के रूप में राजा को कृषि का छठवाँ भाग, व्यापारियों आदि की आय का छठवाँ भाग क्रमश: अन्न और

---

१. वा० रा० २।१००।५७, ५८
२. वही २।१००।४६, ४८
३. वही २।३४।५६; २।१००।४६
४. वही १।५।१४; २।७५।२४
५. वही १।५।१४; २।१००।४८
६. वही १।७।११
७. वही ३।६।१४, १५
८. वही ३।१०।३
९. वही २।८२।२०
१०. वही २।७५।२४
११. वही ३।६।१४

मुद्रा के रूप में प्राप्त होता था।[1] लेकिन राजा को भेंट स्वरूप जो आय होती थी वह रत्न, स्वर्ण, रजत, हाथी, अश्व, रथ एवं वस्त्र आदि के माध्यम से प्राप्त होती थी।[2]

राज्य की आय का व्यय –

रामायणानुसार राजागण जैसे आय के उपायों के ज्ञाता थे, उसी प्रकार वे धन को सम्यक् रूप से व्यय करने के कार्य में भी दक्ष होते थे।[3] राज्य की आय से प्राप्त धन अच्छे कार्यों के लिये व्यय किया जाता था। असत्कार्यों में धन का व्यय करने का राजा को अधिकार नहीं था।[4] तत्कालीन शासन में आय से प्राप्त धन को निम्नलिखित कार्यों के लिये व्यय किया जाता था—

(१) प्रजा की रक्षा के लिये।[5]

(२) राष्ट्र की रक्षार्थ आयुधों आदि के संग्रह एवं युद्ध के लिये।[6]

(३) आपत्तिकालीन समय या अकाल के समय में अन्न आदि की व्यवस्था के लिये।[7]

(४) राज्य के कर्मचारियों को भोजन एवं वेतन-व्यवस्था के लिये।[8]

(५) देवता, पितर, ब्राह्मण, अभ्यागत, योधाओं एवं मित्रगणों के लिये।[9]

---

१. वा० रा० २।७०।२०; २।१००।४८
२. वही २।७०।१९, २० आदि २।८२।८; ७।३८।१२; ७।३९।६, १०
३. वही २।१।२६
४. वही २।१००।५५
५. वही २।७५।२४; ३।६।११, १२ एवं ७।७४।३१
६. वही १।५।१०; २।१००।५४
७. वही २।१००।५४
८. वही १।७।६; २।१००।३३
९. वही २।१००।५६

(६) राज्य में सिचाई, मार्गों को व्यवस्था, नगरादि की व्यवस्था एवं सुरक्षा के लिये।[1]

(७) राजा के यज्ञादि धार्मिक कार्यों, प्रासाद, सेवक, परिजनों की सुविधा एवं यथोचित सुखोपभोग के लिये।[2]

इसके अतिरिक्त सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों के लिये तथा प्रजा के अनुरञ्जन और उत्कर्ष के लिये भी राजकीय आय को व्यय किया जाता था।

विशेष –

रामायणानुसार तत्कालीन राजस्व शासन सुव्यवस्थित था। इसकी व्यवस्था के लिये तत्कालीन राज्यों में वित्त विभाग का मन्त्री होता था। कौसल राज्य में सिद्धार्थ और अर्थसाधक में से कोई इस विभाग का मन्त्री होगा। मन्त्री के अतिरिक्त सुविधा के लिये इस विभाग में अनेक कोषाध्यक्ष या धनाध्यक्ष होते थे।[3] इनके माध्यम से राज्य की आय को एकत्रित किया जाता होगा। आय से प्राप्त धन कोषालय में संचित होता था, जो वित्तसंचय या कोशगृह कहलाता था।[4]

तत्कालीन शासन में राज्य की आय का लेखा जोखा रखा जाता था।[5] राज्य की आय अच्छे कार्यों और संस्कारों में व्यय की जाती थी।[6]

अस्तु तत्कालीन राजस्व शासन सुव्यवस्थित एवं प्रजा तथा राज्य के लिये हितकर था।

---

१. वा० रा० १।५।७, ८, १०; २।१००।४६
२. वही १।८; २।१५; ४।६; ४।३३।१४ आदि; ५ सर्ग ६
३. वही १।६९।२, २।३९।१४; ७।९१।२४
४. वही २।३९।१४, १६
५. वही २।१००।५५
६. वही २।१००।५५

न्याय—

समाज कितना भी संस्कृत, उन्नत और समृद्ध क्यों न हो, व्यक्तियों में विकारों की प्रधानता के कारण एवं स्वार्थ लिप्सा के कारण परस्पर किन्ही न किन्ही विषयों पर विवाद हो ही जाता है। उनके विवादों को निपटाने के लिये और उनके अधिकारों की रक्षा के लिये न्याय की आवश्यकता होती है। न्याय से ही राज्य का अस्तित्व निर्भर है। ऐतरेय ब्राह्मण में उल्लेख है कि राजा का स्वयं का अस्तित्व भी विधिपालन का न्याय करने में होता है।[1]

रामायण कालीन शासन धर्म पर आधारित था और धर्म में न्याय की प्रधानता थी।[2] रामायणानुसार अराजक राज्यों में न्याय न होने से मत्स्य न्याय की स्थिति उत्पन्न होती थी। जिससे राज्य का अस्तित्व सम्भव नहीं होता।[3] अस्तु न्याय से ही राजा का और राज्य का अस्तित्व है।

न्याय का आधार "विधि"

मानवीय व्यवहार की व्यवस्था 'विधि' या 'नियम' अथवा 'कानून' के द्वारा होती है। रामायण में 'विधि' के लिये 'धर्म' का प्रयोग है। रामायणानुसार राजा धर्म के द्वारा अपनी प्रजा पर शासन करता था।[4]

रामायण में विधि के स्रोत—

रामायणानुसार विधि के स्रोत कुलधर्म, ज्ञातिधर्म, वेद, शास्त्र, नीतियाँ और तत्कालीन रीति रिवाज थे। रामायण में जातिधर्मों और कुलधर्मों का अनेक स्थलों पर उल्लेख है।[5] 'शास्त्र' भी

---

१. ऐतरेय ब्राह्मण ८।१२

२. वा० रा० ७।५९ के पश्चात् अधिक सर्ग १, श्लोक १३

३. वही २।६७।३१

४. वही १।७।१९; ३।६।१४

५. वा० रा० २।११।३०; २।७३।२३; २।११०।३४

विधि के स्रोत थे।[1] औचित्यपूर्ण नीतियों का उल्लेख भी कृति में स्थल स्थल पर है।[2] ये मुख्य रूप से विधि के रूप में न्याय का आधार थी।

आर्षवाक्य भी विधि का निर्माण करते थे। ब्रह्मा के वाक्य नीति या नियम के अन्तर्गत कहे गए हैं।[3] मनु के वाक्यों को भी पालनीय नियम माना गया है।[4] रामायणानुसार न्याय हेतु विधि के निर्माता शास्त्रज्ञ, वेदज्ञ, व्यवहारज्ञ और नीतिज्ञ लोग होते थे।[5] वस्तुतः आचार, धर्म, वर्णाश्रम व्यवस्था के नियम, व्यक्तिगत एवं पारिवारिक नियम, कुलधर्म, ज्ञातिधर्म, नीतिधर्म और नैतिक नियमों आदि से तत्कालीन न्यायिक विधि का निर्माण होता था। प्रमुख रूप से धार्मिक नियम ही विधि के स्रोत थे।[6]

न्यायालय—

तत्कालीन न्यायिक प्रशासन में न्यायालय सभा कहलाती थी।[7] 'राजा' प्रमुख न्यायाधीश था। वह 'धर्मपाल' या 'दण्डधर' कहलाता था।[8] प्रमुख न्यायाधीश का आसन न्यायसभा में धर्मासन कहलाता था।[9] अन्य न्यायाधीश धर्मपालक कहलाते थे।[10] न्यायकार्य में संलग्न अन्य सदस्य, सभासद या सभ्य कहलाते

---

१. वा० रा० ७ सर्ग ५९ के पश्चात् अधिक पाठ सर्ग २ श्लोक ३३
२. वही ४।१७।३४, ३५; ४।२१।५ आदि; ४।३४।१०
३. वही ४।३४।१०, ११
४. वही ४।१८।३२
५. वही ७ सर्ग ५९ के पश्चात् अधिक पाठ सर्ग १, श्लोक २ एवं सर्ग २ श्लोक ३३
६. वही ८।३।१०
७. वही ७ सर्ग ५९ के पश्चात् अधिक पाठ सर्ग १-४ एवं ३-३४
८. वही ३।१।१७
९. वही ७-५९ के पश्चात् अधिक पाठ सर्ग १, श्लोक १
१०. वही ७ सर्ग ५९ के पश्चात् सर्ग २ श्लोक ३२

थे।[1] न्याय चाहने वाले 'कार्यार्थी' कहलाते थे।[2] न्याय के लिये व्यवहार या मामला कार्य या पौरकार्य के नाम के अभिहित था।[3]

न्याय-सभा का संगठन—

तत्कालीन न्यायसभा राजा, पुरोहित, मन्त्रीगण, व्यवहारज्ञ, धर्मपारग एवं नीतिज्ञ सभ्यगणों तथा ब्राह्मणों, क्षत्रियों, नैगमों और अनुभवी वृद्धों से मिलकर संगठित थी।[4]

न्यायाधीशों की योग्यता और विशेषतायें—

राजा, जो कि प्रधान न्यायाधीश था, सत्य और धर्म में परायण,[5] धर्मज्ञ, बहुश्रुत, विद्वान्[6] और स्थिरप्रज्ञ होता था।[7]

प्रधान न्यायाधीश के अतिरिक्त अन्य न्यायाधीश एवं मन्त्रीगण मन्त्रज्ञ, शास्त्रज्ञ, व्यवहारकुशल, धर्मशास्त्र एवं नीतिशास्त्र के ज्ञाता,[8] ईमानदार, निर्लोभी तथा पक्षपात रहित होते थे।[9] रामायण में न्यायाधीशों की सच्चरित्रता पर विशेष बल दिया गया है।[10]

न्यायालय और न्याय की पद्धति—

रामायणानुसार तत्कालीन शासन में न्यायालय राजसभा का

---

१. वा० रा० ७ सर्ग ५९ के पश्चात् अधिक पाठ सर्ग ३ श्लोक ३३, ३५
२. वही ७।५३।५ एवं ७।५९ के पश्चात् अधिक पाठ सर्ग १, श्लोक ५, ९
३. वही ७।५३।६
४. वही ७।५३।५ एवं ७ सर्ग ५९ के पश्चात् अधिक पाठ सर्ग १ श्लोक २, ३
५. वही १।६।५; २।२।२९
६. वही २।२।३१, ३३ आदि
७. वही २।१।२४
८. वही १।७।५, ८, १९; ७ सर्ग ५९ के पश्चात् अधिक पाठ सर्ग १ श्लोक ३
९. वही १।७।२; २।१००।२७, ५८, ५९
१०. वही २।१००।५७, ५८, ५९

ही एक अङ्ग थी। न्यायालय में राजा को परामर्श देने वाली सभा ही न्याय सभा का रूप धारण करती थी।

न्यायालय या न्यायसभा की बैठक राजभवन में होती थी।[1] न्यायसभा की बैठक प्रतिदिन पूर्वाह्न में होती थी।[2] 'राजा' प्रमुख न्यायाधीश के रूप में सर्वप्रथम न्यायालय में उपस्थित होकर न्यायासन ग्रहण करता था।[3] तदनन्तर पुरोहित तथा अन्य मन्त्रीगण एवं नैगम, नीतिज्ञ, व्यवहारज्ञ तथा धर्मज्ञ सदस्यगण न्यायसभा में प्रवेश करते थे।[4]

न्यायसभा में न्यायाधीशों एवं सदस्यों के आसन-ग्रहण कर लेने के पश्चात् कार्यार्थियों को बुलावा जाता था।[5] कार्यार्थी के न्यायालय में प्रवेश करने पर प्रधान न्यायाधीश उससे कार्य को निर्भयता पूर्वक स्पष्ट करने के लिये आदेश देता था।[6] कार्यार्थी विनम्रता पूर्वक अपने कार्य सम्बन्धी विचार न्यायाधीशों के समक्ष प्रस्तुत करता था।[7] वादी के द्वारा मामला प्रस्तुत किये जाने पर आवश्यकता पड़ने पर प्रतिवादी को द्वारपाल द्वारा बुलवाया जाता था।[8]

प्रतिवादी के न्यायालय में उपस्थित होने पर प्रधान न्यायाधिकारी उससे वादी विषयक प्रश्न करता था।[9] प्रतिवादी न्यायाधीश की आज्ञानुसार तद्विषयक अपने विचार प्रकट करता था।[10]

---

१. वा० रा० ७ सर्ग ५९ के पश्चात् अधिक पाठ सर्ग १ श्लोक १, २
२. वही ७।५३।५; ७ सर्ग ५९ के पश्चात् अधिक पाठ सर्ग १, श्लोक १
३. वही ७।५३।३; ७ सर्ग ५९ के पश्चात् अधिक पाठ सर्ग १, श्लोक १
४. वही ७।५३।५; ७ सर्ग ५९ पश्चात् अधिक पाठ सर्ग १, श्लोक २, ३
५. वही ७ सर्ग ५९ के पश्चात् अधिक पाठ सर्ग १ श्लोक ५, ६
६. वही ,, ,, ,, ,, ,, २, श्लोक १३
७. वही ,, ,, ,, ,, ,, ,, १५, १६
८. वही ,, ,, ,, ,, ,, , ,,
९. वही ,, ,, ,, ,, ,, श्लोक १९
१०. वही ,, ,, ,, ,, ,, श्लोक २७ आदि

वादी और प्रतिवादी के विचारों के प्रस्तुतीकरण के पश्चात् प्रधान न्यायाधिकारी न्याय सभा के सदस्यों से निर्णय के लिये तथा अपराधानुसार दण्ड विधान के लिये सावधानीपूर्वक परामर्श करता था।[1] न्यायाधीशों के द्वारा परस्पर तद्विषयक विचार विमर्श के पश्चात् निर्णयानुसार अपराधी को दण्ड दिया जाता था।[2] अन्त में न्यायसभा की बैठक समाप्त की जाती थी।

न्याय की विशेषतायें—

रामायणकालीन शासन में न्याय की सुचारु व्यवस्था थी। तत्कालीन न्यायप्रणाली की निम्नांकित विशेषतायें थीं—

(१) तत्कालीक शासन में पौरकार्य या न्यायकार्य के लिये प्रतिदिन न्याय सभा की बैठक होती थी।[3] प्रजा के मामलों को सुनना और उनका निपटारा करना राजा का प्रधान कर्तव्य था। प्रजा के प्रति न्याय करने में विलम्ब या प्रमाद करने वाला राजा पाप का भागी एवं नरक का अधिकारी कहा गया है।[4] राजा नृग और राजा निमि को प्रजा के प्रति न्याय में प्रमाद करने के कारण अभिशप्त होना पड़ा था और तदनुसार दुःख भोगना पड़ा था।[5]

(२) उस समय न्याय अविलम्ब होता था। न्यायालय में कार्यार्थियों को शीघ्र प्रवेश पाने का अधिकार प्राप्त था।[6]

(३) उस समय न्याय बिना खर्च के सुलभ था। न्यायालय में न्यायार्थ कार्यार्थी को शुल्क नहीं देना पड़ता था।

---

१. वा० रा० ७ सर्ग ५९ के पश्चात् अधिक पाठ सर्ग २ श्लोक ३०, ३१
२. वही ,, ,, ,, ,, ,, श्लोक ३७
३. वही ७।५३।६
४. वही ७।५३।२५
५. वही ७।५३।१७, १८; ७।५५।१६, १७
६. वही ७ सर्ग ५९ के पश्चात् अधिक पाठ सर्ग १ श्लोक ३०, ३१

(४) उस समय वकीलों की आवश्यकता न थी। धर्मज्ञ एवं व्यवहारज्ञ न्यायाधीशों द्वारा सावधानी पूर्वक मामले की पूर्णतः जाँच करने के पश्चात् ही कार्य विषयक निर्णय दिया जाता था।[1]

(५) तत्कालीन न्याय प्रशासन में स्त्री और पुरुष सभी को न्याय पाने का अधिकार था।[2]

(६) उस समय न्याय की व्यवस्था धर्म, नीति और शास्त्रानुसार थी।[3] न्याय में सत्य और धर्म का विशेष ध्यान रखा जाता था।[4]

(७) शासन में न्याय के प्रति जागरुकता थी।[5] न्याय नीतिपूर्वक होता था। अन्याय पूर्वक व्यवहार ठीक नहीं समझा जाता था। रावण के गुप्तचर 'शुक' के पकड़े जाने पर उसने न्याय की अपेक्षा करते हुए राम से कहा था कि यदि मैं मारा गया, तो आज तक के मेरे अशुभ कर्मों का फल आपको भोगना पड़ेगा।[6]

(८) तत्कालीन न्याय की विशेषता यह थी कि उसमें पक्षपात और लालच को किंचित् मात्र भी स्थान न था।[7] न्यायाधीश अपने अपराधी पुत्र को भी दण्डित करता था।[8] पक्षपातपूर्ण न्याय उचित न समझा जाता था। रामायण में उल्लेख है कि पक्षपातपूर्ण न्याय करने वाले राजा के पुत्र और धनधान्य का विनाश निरपराध के आँसू कर डालते हैं।[9]

---

१. वा० रा० ७ सर्ग ५९ के पश्चात् अधिक पाठ सर्ग २ श्लोक ३०
२. वही ७।५३।५
३. वही ४।१८।३०; ७ सर्ग ५९ के पश्चात् अधिक पाठ सर्ग २ श्लोक ३३
४. वही ,, ,, ,, ,, ३ श्लोक ३४, ३५
५. वही ७।५३।६
६. वही ६।२०।३४, ३५
७. वही १।७।१३; २।७५।५७; २।१००।५८, ५९
८. वही १।७।८
९. वही २।१००।६०

(६) तत्कालीन न्याय पद्धति सरल थी।

(१०) तत्कालीन न्याय में प्रजा के हित का ध्यान रखा जाता था। उस समय न्याय में धर्म और मानवता प्रधान थी एवं न्याय प्रजातान्त्रिक पद्धति पर आधारित था। उस समय शीघ्र एवं कठोर न्याय से राज्य में अपराध कम होते थे। राम के न्यायालय में बहुत कार्यार्थी नहीं आते थे।[1]

निष्कर्षतः तत्कालीन शासन में न्यायपालिका सशक्त थी।

दण्ड—

मानव समाज में शान्ति एवं व्यवस्था बनाये रखने के लिये जो कार्य पद्धति अपनाई जाती है, वह राजनीति में दण्ड के नाम से जानी जाती है। राज्य प्रशासन के लिए दण्ड आवश्यक तथा महत्त्वपूर्ण है। मनु ने दण्ड को प्रजा पर प्रशासन करने वाला एवं राजा माना है।[2] वस्तुतः समाज में दुष्प्रवृत्तियों को एवं अपराध को रोकने में लिये दण्ड की आवश्यकता हुई। शतपथ ब्राह्मण में दण्ड का प्रयोग शक्ति के अर्थ में हैं। उसमें दण्ड को अपराध की निवृत्ति के लिये, धर्म की रक्षा के लिये और धर्म के क्रियान्वयन के लिये आवश्यक कहा गया है तथा उसे राजा से सम्बन्धित कहा गया है।[3] निष्कर्षतः दण्ड का सम्बल, सहायक, पोषक और संवर्धक है। दण्ड अपराध की निवृत्ति के लिये आवश्यक है। यह राज्य में सुरक्षा का साधन है तथा राज्य के स्थायित्व का आधार है।

दण्ड के दो रूप हैं—आन्तरिक तथा बाह्य। राज्य में होने वाले अपराधों को रोकने एवं उनके शमन के लिये प्रयुक्त दण्ड आन्तरिक दण्ड है। किसी राज्य पर अन्य राज्यों द्वारा किये गये आक्रमणों की निवृत्ति के लिये बाह्य दण्ड का आश्रय लिया जाता है।

---

१. वा० रा० वही ७ सर्ग ५९ के पश्चात् अधिक पाठ सर्ग १, श्लोक १९

२. मनुस्मृति ७।७; ८।१४

३. शतपथ ब्राह्मण ५।४।४।७

रामायण में जीवन, सम्पत्ति, धर्म तथा राज्य की रक्षा के लिये दण्ड की आवश्यकता कही गई है।[1] कृति में प्रजा की रक्षा के लिये दण्ड का प्रयोग आवश्यक बताया गया है।[2]

रामायण में उल्लेख है कि शासन व्यवस्था बनाये रखने के लिये दण्ड श्रेष्ठतम साधन है।[3] प्रशासन में कार्यों के सम्पादन में दण्ड का प्रयोग करने वाला राजा सम्मान का पात्र कहा गया है।[4] स्पष्ट है कि रामायण कालीन शासन में राज्य की सम्यक् व्यवस्था के लिये दण्ड अपरिहार्य था।

दण्ड व्यवस्था—

रामायण कालीन शासन धर्म पर आधारित था। धर्म के विरुद्ध आचरण करने वाले को यथाविधि दण्डित किया जाता था।[5] दण्ड धर्मतः दिया जाता था।[6] धर्म की मर्यादा तोड़ने वाले को दण्ड द्वारा नियन्त्रित किया जाता था।[7] रामायण में स्वेच्छाचारियों के निग्रह के लिये दण्ड की व्यवस्था का उल्लेख है।[8]

तत्कालीन शासन में अपराधी को धर्मानुसार एवं शास्त्रानुसार दण्ड देने की व्यवस्था थी।[9] अपराधी को उसके अपराधानुसार दण्ड दिया जाता था। रामायण में अपराधियों को उचित

---

१. वा० रा० २।६७।३२
२. वही ७।७६।८
३. वा० रा० ६।२२।४६
४. वही ६।२१।१६
५. वही ४।१८।११
६. वही ४।१८।६३, ६४, ६५
७. वही ४।१८।२६
८. वही ४।१८।२५
९. वही ४।१८।६; ४।१८।३० एवं वा० रा० ७ सर्ग ५९ के पश्चात् अधिक पाठ सर्ग २ श्लोक ३४

दण्ड देने वाला राजा स्वर्ग का अधिकारी कहा गया है।[1] अकारण किसी को दण्ड नहीं दिया जाता था।[2] अनपराधी शत्रु को भी दण्ड देने का विधान न था।[3] अनुचितरूप से दण्ड देने वाले राजा विनाश को प्राप्त होने वाले कहे गये हैं।[4] लेकिन अपराधी को दण्ड देना आवश्यक था।[5] अपराधी को दण्ड न देने वाला राजा पाप का भागी कहा गया है।[6] राजा मान्धाता को अपराधी के लिये दण्डित न करने पर पाप के फलस्वरूप घोर कष्ट को सहन करना पड़ा था।[7]

दण्ड में पक्षपात नहीं होता था।[8] अपराध करने पर राजा अपने पुत्र को भी दण्ड देता था। असमंज को उसके अपराधानुसार देश से निष्कासित कर दिया गया था।[9] न्यायाधीय या मन्त्री भी अपने अपराधी पुत्र को दण्डित करने में संकोच न करते थे।[10] यद्यपि दण्ड की कठोर व्यवस्था थी,[11] तथापि उग्रता का आश्रय लेकर प्रजा को विक्षुब्ध करने वाला दण्ड नहीं दिया जाता था।[12]

तत्कालीन दण्ड विधान में स्त्रियाँ अवध्य समझी जाती थीं[13] लेकिन अपराध करने पर स्त्रियों को भी कठोर दण्ड की व्यवस्था

---

१. वा० रा० ७।७६।६, १०
२. वही ७।७६।८
३. वही १।७।६
४. वही २।१००।६०
५. वही ४।१८।१७; ४।१८।२२, २४
६. वही ४।१८।३४
७. वही ४।१८।३५
८. वही २।७५।५०
९. वही २।३६।२३
१०. वही १।७।८
११. वही १।७।१
१२. वही २।१००।२८
१३. वही २।७८।२१

थी।[१] तत्कालीन शासन में दण्ड व्यवस्था पर वर्ण व्यवस्था का भी प्रभाव था। ब्राह्मण दोषी होने पर भी दण्ड द्वारा अवध्य था।[२] लेकिन तत्कालीन शासन में ब्राह्मणों में चरित्र था। अयोध्या में रहने वाले ब्राह्मण पवित्र, स्वकर्मनिरत, जितेन्द्रिय, दान और अध्ययन में संलग्न और प्रतिग्रह लेने में संयत कहे गये हैं।[३]

अस्तु तत्कालीन शासन में दण्ड व्यवस्था धर्मतः एवं शास्त्रानुसार थी। अपराधानुसार दण्ड विधान था। अकारण दण्ड नहीं दिया जाता था, लेकिन अपराधी को उचित दण्द देना आवश्यक था।

दण्डधर—

रामायणानुसार राजा दण्डधर था।[४] अपराधियों के लिये दण्ड को धारण करना उसका गुण था।[५] राजा दण्ड विधान में स्वेच्छाचारी न था।[६] कृति में अनपराधी को दण्डित करने वाले इन्द्रिय लोलुप राजा की निन्दा की गई है।[७] रामायण में दण्डधर राजा के लिये नीति, विनय, निग्रह और अनुग्रह में स्वेच्छाचारी न होने के आदेश हैं।[८] लेकिन अपराधी को दण्ड न देने वाले राजा को पापार्जन करने वाला कहा गया है।[९] अतः अपराधी को दण्ड

---

१. वही २।७८।१२
२. वही ७ सर्ग ५६ के पश्चात् अधिक पाठ सर्ग २ श्लोक ३३
३. वा० रा० १।६।१३
४. वही ३।१।१७; ७।७६।५
५. वही ४।१७।१७, २७
६. वही ४।१८।३७
७. वही ४।१७।२५, ३२, २३
८. वही ४।१७।३०
९. वही ४।१८।३४

देना एवं दण्ड के प्रति सावधान रहना दण्डधर का परम कर्तव्य था।[1]

दण्डधर होने के नाते राजा ही तत्कालीन शासन-व्यवस्था में अपराधी को दण्डित करने का आदेश देता था।[2] एवं मन्त्रियों द्वारा दण्ड की व्यवस्था की जाती थी।[3]

अपराधी—

रामायणानुसार धर्माचरण एवं सदाचरण से भ्रष्ट, स्वेच्छाचारी एवं मर्यादा तथा विधि का उलङ्घन करने वाला व्यक्ति अपराधी था।[4]

तत्कालीन समाज में लोगों में ऐसी भावना व्याप्त थी कि अपराधी को राजा द्वारा दण्ड प्राप्त हो जाने पर वह पाप से मुक्त हो जाता है एवं वह पुण्यात्मा होकर स्वर्ग को प्राप्त होता है।[5] रामायण में उल्लेख है कि यदि अपराधी स्वयं ही अपने द्वारा किये गये अपराध या पापकर्मों को राजा के समक्ष स्पष्ट करले और दण्ड चाहे, तो राजा द्वारा उसे दण्डित किया जाये या न किया जाये, दोनों ही स्थितियों में अपराधी पाप से मुक्त हो जाता है।[6] प्रमादवश पाप करने वाले व्यक्ति राजाओं से दण्ड ग्रहण करके प्रायश्चित करते हुए पाप से मुक्त हो जाने वाले एवं दुर्गति को प्राप्त न होने वाले कहे गये हैं।[7]

इस प्रकार तत्कालीन समाज की यह श्रेयस्करी भावना, कि

---

१. वही ७।७६।१०
२. वा० रा० ५।५२।१; ५।५३।५; ७ सर्ग ५९ के पश्चात् अधिक पाठ सर्ग २ श्लोक २६
३. वा० रा० १।७।११; २।१००।५७; ५।५३।६
४. वही १।६।८; २।७५।५०; ४।१८।११; ४।१८।२५, २६
५. वही ४।१८।३३
६. वही ४।१८।३४
७. वही ४।१८।३६;७ सर्ग ५९ के पश्चात् अधिक पाठ सर्ग ३ श्लोक ३९

अपराधी दण्ड प्राप्त करके पाप से मुक्त हो जाता है, ग्राह्य है। यह भावना व्यक्ति को अपराध करने की प्रवृत्ति से रोकती है।

अपराध—

रामायण में निम्नलिखित अपराधों का उल्लेख है—

(१) लोकाचार, धर्म या विधि और मर्यादा का उल्लङ्घन करना।[1]

(२) दूसरों की सम्पत्ति का अपहरण करना या दस्यु कर्म करना।[2]

(३) राजद्रोह करना।[3]

(४) ब्रह्महत्या,[4] गाय को चोट पहुँचाना तथा गोहत्या[5] और जीवहत्या करना।[6]

(५) मित्रद्रोह एवं मित्रघात करना।[7]

(६) गुरुपत्नी-गमन,[8] भाई की पत्नी, सहोदरा भगिनी[9] एवं परपत्नी के साथ व्यभिचार करना।[10]

(७) स्त्री, बालक और वृद्ध की हत्या करना।[11]

(८) युद्ध से पलायन करना।[12]

---

१. वा० रा० २।७५।५२; ४।१८।२४, २६
२. वही ७।७५।४२; २।१००।५८; ४।१७।३४; ५।२८।७
३. वही २।७५।२३; ४।१७।३४
४. वही ४।१७।३४
५. वही २।७५।२१; ४।१७।३४
६. वही ४।१७।३४
७. वही २।७५।४४; ४।१७।३७
८. वही २।७५।४४; ४।१७।३५
९. वही ४।१८।१८, २२, २३
१०. वही २।७५।५२
११. वही २।७५।३६
१२. वही २।७५।२६, ३८

(६) पानी में विष मिलाना एवं विष देकर मारना।[1]

(१०) किसी व्यक्ति की वृत्तिहरण करना।[2]

(११) आग लगाना एवं जुआ खेलना,[3] हिंसा करना,[4] न्यास को न लौटाना,[5] मांस, मदिरा एवं विष बेचना[6] तथा पक्षपात करना।[7]

इनके अतिरिक्त चुगलखोरी करना, झूठ बोलना, नृशंसता, बेईमानी तथा क्रूरता,[8] नास्तिकता, कपट तथा अधर्म करना भी रामायणानुसार अपराध की कोटि में आते थे।[9] उक्त प्रकार की प्रवृत्ति वाले व्यक्ति राजभय से त्रस्त कहे गये हैं।[10]

दण्ड के सिद्धान्त—

रामायण कालीन दण्ड व्यवस्था में दण्ड के सिद्धान्तों-प्रतिकारात्मक, अवरोधक (भय देकर अपराध को रोकना), निरोधक (अपराध की पुनरावृत्ति न होने देना) तथा सुधारात्मक दण्ड के सिद्धान्तों में से केवल प्रतिकारात्मक सिद्धान्त ही प्रचलित था।

दण्ड के प्रकार—

अपराधानुसार धर्मशास्त्रों एवं नीतिग्रन्थों में दण्ड के चार प्रकार कहे गये हैं—

---

१. वा० रा० २।७५।५४
२. वही २।७५।२२, ३६
३. वही २।७५।४०, ४४
४. वही ६।१३१।६६
५. वही ७।५६।११
६. वही २।७५।३७
७. वही २।७५।७
८. वही १।६।८, १४
९. वही २।७५।५०
१०. वही २।७५।५०

(१) धिक् दण्ड
(२) वाक् दण्ड
(३) अर्थ दण्ड
(४) बध दण्ड

रामायण में चारों प्रकार के दण्डों का उल्लेख है। विभीषण को धिक् दण्ड,[1] मारीच और माल्यवान् को वाक् दण्ड,[2] चोरों आदि को अर्थ दण्ड,[3] तथा वालि को मृत्यु दण्ड[4] दिया गया था। रामायण में मृत्युदण्ड का अनेक स्थलों पर उल्लेख है।[5] इसके अतिरिक्त रामायण में बन्धन या जेल,[6] देश से निष्कासन[7] एवं अन्य यातनायें-पीटना,[8] अङ्ग-भङ्ग करना,[9] शरीर के टुकड़े टुकड़े करना,[10] शरीर के विभिन्न अङ्गों को काटना,[11] कलेजा निकालना,[12] गला घोंटना,[13] अग्नि में जलाना[14] आदि अनेक प्रकार के दण्ड उल्लिखित हैं।

रामायण कालीन प्रशासन "एक दृष्टि"—

राज्य के प्रशासन के लिये संविधान और सरकार दोनों की आवश्यकता होती है। शासन संचालन के निश्चित और स्थिर

---

१. वा० रा० ६।१६।१५
२. वही ३।४०।२ आदि; ६।३६।२ आदि
३. वही २।१००।५८, ५६
४. वही ४।१८।२१, २३
५. वही ४।४०।२६; ५।२४।४३; ५।२८।७; ५।५२।१
६. वही ४।५५।१०, ११; ५।२६।१५
७. वही २।३६।२३, २६
८. वही ५।२४।२८; ५।४८।५२, ५३
९. वही ५।५३।३४
१०. वही ५।२४।४४, ४५
११. वही ५।२४।४१
१२. वही ५।२४।३८
१३. वही ५।२४।४२
१४. वही ५।२६।१२

नियम या विधि (मानवीय व्यवहार की व्यवस्था) ही उस देश का संविधान कहलाता है।

रामायण कालीन शासन में वेद, शास्त्र, धर्म एवं नैतिक नियम ही संविधान के रूप में थे।[१]

सरकार कानून बनाने वाली, कानून का पालन कराने वाली एवं कानून तोड़ने वाले को दण्डित करने वाली संस्था है। सरकार व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका में विभक्त होती है।

रामायणानुसार तत्कालीन सरकार—राजा, पुरोहित, मन्त्रियों, अमात्यों, पौरजानपद (पुर और जनपद के प्रतिनिधियों), निगम-मुख्यों, श्रेणी-मुख्यों तथा अन्य पदाधिकारियों से संगठित थी।[२] राम ने भरत से मन्त्रियों, अमात्यों, पुरोहित और सुहृदों के साथ शासन संचालन के लिये कहा था।[३] इनके अतिरिक्त शासन संचालन में पौरजानपद, प्रतिनिधियों, निगम-मुख्यों, श्रेणी-मुख्यों, बलमुख्यों तथा ग्राम, घोष के मुखियों का भी हाथ होता था। कृति में शासन के कार्यों के विचारार्थ एवं कार्यान्वयन के लिये इनकी उपस्थिति दिखाई गई है।[४]

वस्तुतः रामायणानुसार तत्कालीन प्रशासन का भार मुख्य रूप से राजा, मन्त्रियों, अमात्यों, पुरोहित, सेनापति और अन्य पराधिकारियों पर था।[५]

रामायण में व्यवस्थापिका—

सरकार का विधिनिर्माण करना प्रमुख कर्तव्य है। रामायणानुसार

---

१. बा० रा० १।७।६, १७, १६; २।१००।३४; २।१११।५ आदि ३।६।१४
२. वही २।२।१, १६; २।६७।२, ३, ४; २।१००।३७ आदि २।११२।१७
३. वही २।११२।१७
४. वही २।१४।४०; २।१५।२; २।८१।१२; २।८२।२४; ६।१३०।६
५. वही २।१००।३७; २।११२।१७

तत्कालीन शासन में विधि का निर्माण धर्मज्ञ, वेदज्ञ और शास्त्रज्ञ राजाओं तथा मन्त्रियों द्वारा होता था।[1] ऋषिगण भी विधि के निर्माता थे।[2] कुलधर्म, जातिधर्म तथा शास्त्र एवं नैतिकता ही विधि-निर्माण के आधार थे।[3]

रामायण में सरकार द्वारा विधि निर्माण का स्पष्ट उल्लेख नहीं है। यद्यपि विधियों का उल्लेख अनेक स्थलों पर है। जैसे—

[१] अपराधी को धर्मानुसार एवं शास्त्रानुसार दण्ड की व्यवस्था।[4]
[२] स्त्रीवधनिषेध।[5]
[३] पापी को दण्ड मिलना अनिवार्य।[6]
[४] अकारण दण्ड न देना।[7]
[५] पक्षपात न करना,[8] आदि।

अस्तु, रामायणानुसार तत्कालीन शासन में धर्म, नैतिकता, वेद और शास्त्रानुसार विधि का निर्माण होता था। समय समय पर वेदज्ञ तथा शास्त्रज्ञ राजा एवं मन्त्रीगण तथा नीतिज्ञ जन भी विधि का निर्माण करते होंगे।

रामायण में कार्यपालिका—

सरकार का द्वितीय कर्तव्य विधि का पालन कराना है। इसके लिये वह कार्यपालिका का रूप धारण करती है।

---

१ वा० रा० १।६।१; १।७।१८; १।८।१; २।१००।१५, १६; ५।५२।१७; ७ सर्ग ५६ के पश्चात् अधिक पाठ सर्ग ३, श्लोक २१, २२
२. वा० रा० ४।१८।३२; ४।३४।११
३. वही २।७३।२०, २३; २।१००।३४; २।११२।१०; ५।५२।१७
४. वही ४।१८।६, ३०
५. वही २।७८।२१
६. वही ४।१७।१७; ४।१८।२२, २४, २५
७. वही ७।७६।८
८. वही २।७५।५०

रामायणानुसार समस्त वर्णों को विधिपूर्वक अपने कर्तव्यों में लगाना सरकार का परमकर्तव्य था।[1] कार्यपालिका में राजा प्रधान था, जो विधि का पालन कराने में तत्पर रहता था।[2] राजा इस कार्य के लिये मन्त्रियों तथा पदाधिकारियों को नियुक्त करता था।[3]

रामायण में सचिवालय —

रामायण में सचिवों तथा पदाधिकारियों के उल्लेख से उनके विभागों का परिज्ञान होता है।[4] जिनसे सचिवालय ने अपना रूप धारण किया होगा।

सचिवालय में अठारह विभाग, अठारह पदाधिकारियों के अनुसार होंगे।[5] ये पदाधिकारी विषयानुसार वर्गीकृत होंगे। मन्त्री, पुरोहित, युवराज, सेनापति, द्वारपाल, अन्तर्वंशिक, कारागाराधिकृत, अर्थसंचयकृत, कृत्याकृत्य नियोजक, प्राड्विवाक, सेनानायक, नगराध्यक्ष, दण्डपाल, दुर्गपाल, राष्ट्रान्तपाल आदि विभागाध्यक्षों की सहायतार्थ उनके अधीन अन्य कर्मचारी भी होंगे।[6]

कार्यपालिका की छोटी इकाई पौरमुख्य, जानपदमुख्य, श्रेणी-मुख्य और ग्रामघोष के मुखिया थे। इनके माध्यम से नगर और ग्रामों की जनता में विधि प्रशासन का कार्य होता था।[7]

इस प्रकार रामायणानुसार तत्कालीन शासन में प्रधान पदाधिकारियों या सचिवों के द्वारा, जो कि कार्यपालिका के सदस्य थे, राज्य में विधि का पालन कराया जाता था।

---

१. वा० रा० १।१।९३; ४।१८।२६
२. वही ३।१।१७; ४।१८।२६
३. वही २।१००।१६।२६।३१।३७
४. वही २।१००।३७
५. वही २।१००।३७
६. वही २।१००।२६,३१,३२,३६
७. वही २।१४।४०; २।१५।२; २।८३।१५; ६।१३०।६

रामायण में न्यायपालिका—

सरकार का अन्तिम रूप न्यायपालिका का है। रामायण में इस संस्था का भी प्रधान 'राजा' था। वह धर्मपाल या दण्डधर था।[1] कृति में न्यायपालिका के अन्य सदस्य पुरोहित, ऋषि, मन्त्रीगण, अमात्य, नैगम, नीतिज्ञ, धर्मज्ञ, सभ्य और वृद्ध आदि कहे गये हैं।[2] ये शास्त्रज्ञ, नीतिज्ञ, धर्मज्ञ, वेदज्ञ और कुल, जाति, धर्म आदि अनेक विधियों के ज्ञाता होते थे।[3]

रामायण में प्रधान न्यायाधीश या राजा की न्यायसभा सर्वोच्च न्यायालय के रूप में उल्लिखित है। सर्वोच्च न्यायालय के अतिरिक्त न्याय की अन्य संस्थायें, पौरजानपद, नैगम, श्रेणी एवं गण के रूप में होंगी। इनके 'प्रधान' मुख्य न्यायाधीश के रूप में कार्य करते होंगे।[4]

रामायण में न्यायपालिका द्वारा पक्षपातरहित न्याय करने, राज्य में शान्ति एवं सुरक्षा बनाये रखने तथा अपराध की प्रवृत्ति को रोकने का उल्लेख है।[5] रामायण कालीन शासन में न्यायपालिका का मुख्य कर्तव्य प्रजा के कार्यों को देखना तथा उनके झगड़ों का निपटारा करना था।[6]

इस प्रकार सरकार के उपर्युक्त अङ्गों द्वारा रामायण कालीन शासन का संचालन सुचारु एवं सुव्यवस्थित रूप से होता था। तत्कालीन राज्यों का प्रशासन राजधर्म के अनुसार होता था।[7]

---

१. वा० रा० ३।१।१७
२. वही ७ सर्ग ५९ के पश्चात् अधिक पाठ सर्ग १ श्लोक २, ३, ३३; ७ सर्ग ५९ के पश्चात् अधिक पाठ सर्ग ३ श्लोक २६, ३४
३. वही १।७।१७; २।१००।१५, १६; ७ सर्ग ५९ के पश्चात् अधिक पाठ सर्ग ३ श्लोक २१, २२
४. वही २।१४।४०; २।१५।२; २।८१।१२; ६।१३०।६
५. वा० रा० २।७५।५०; २।१००।५८, ५९, ६०; ६।१३१।५०, ५,९६
६. वही ७।५३।४; ६
७. वही १।७।११; ५।५२।६, ७।५९ के पश्चात् अधिक पाठ सर्ग २ श्लोक ३३

केन्द्रीय एवं ग्रामीण प्रशासन —

रामायण में कौसल राज्य की राजाधानी अयोध्या के शासन का ही पूर्ण विवरण मिलता है।[1] किष्किन्धा और लङ्का की शासन व्यवस्था का वर्णन अल्प है।[2] किञ्चित् उल्लेखों से मिथिला राज्य के शासन संचालन का भी अनुमान लगाया जा सकता है।[3] अन्य राज्यों की शासन व्यवस्था के विषय में रामायण में उल्लेख नहीं है।

रामायणानुसार तत्कालीन राज्य दो भागों—पुर या राजधानी या मुख्य नगर और जनपद या राष्ट्र (राजधानी के अतिरिक्त शेष देश) में विभाजित था।[4] जनपद छोटी छोटी राजनीतिक इकाइयों नगर,[5] पट्टन, महाग्राम,[6] ग्राम[7] संवास,[8] घोष[9] में विभाजित था।

प्रजा—

रामायण में प्रजाजन भी पुर और जनपद के अनुसार पौर और जानपद कहलाते थे।[10] सम्पूर्ण राज्य की जनता प्रजा,[11] विश,[12] जन[13] एवं प्रकृति[14] भी कहलाती थी। पौरजानपद सम्पूर्ण

---

१. वा० रा० १ सर्ग ५, ६, ७; २ सर्ग ६७, १००; ७ सर्ग १३१
२. वही ४सर्ग ३३ आदि; ५ सर्ग ३, ४, ६, ७ आदि; ६।६, ६, ११, १२
३. वही १।५०, ६७; ६८, ७०
४. वही १।७।१२; २।२।५३; ७।७३।१७, १८
५. वही २।१।४५; २।५७।४
६. वही ४।४०।२२, २५
७. वही २।४६।३; २।५७।४
८. वही २।४६।३
९. वही २।८३।१५
१०. वही २।४।४६; २।१४।६८; २।१५।४६; २।१११।१६, २०
११. वा० रा० २।५२।४६, ४६
१२. वही १।११।६; २।२।२८; २।१५।२०
१३. वही २।२।५३
१४. वही २।२६।२०

प्रजा के लिये प्रयुक्त होने के अतिरिक्त यह एक संस्था भी थी। यह पुर और जनपद की जनता के प्रतिनिधियों से संगठित थी।[१] यह राज्य के कार्यों के संचालन में भाग लेती थी।

शासन संचालन के अधिकारी—

सम्पूर्ण राज्य के संचालन के लिये राजा, सभा, मन्त्रिपरिषद् और शासनाधिकारी होते थे। राजा शासन संचालन में प्रधान था। वह सभा आदि की सहायता से शासन का संचालन करता था।

रामायणकालीन शासन के सचालन में जनता का हाथ था।[२] पौरजानपद, निगम, श्रेणी, गण आदि संस्थायें थी। इनके प्रतिनिधियों को शासन के संचावन के लिए अधिकार प्राप्त थे। किष्किन्धा और लङ्का में भी ऐसो संस्थायें थीं।[३] किष्किन्धा और लंका में 'गण' राज्य के संचालन में हाथ बँटाते थे। वानर राजा वालि और सुग्रीव तथा राक्षस राजा रावण 'गणेश्वर' कहलाते थे।[४] लेकिन कौसल राज्य की तरह किष्किन्धा और लङ्का राज्यों में श्रेणी और निगम का उल्लेख नहीं है।

वस्तुतः तत्कालीन शासन के संचालन में किसी न किसी संस्था के माध्यम से अथवा प्रत्यक्ष रूप से ही जनता का सक्रिय सहयोग था।[५]

पुर या राजधानी का शासन—

राजधानी राज्य का मुख्य नगर थी। यह नगरी,[६] पुरी,[७] महापुरी,[८]

---

१. वा० रा० २।२।१६; २।१४।४०
२. वही २।१।५०; २।२।१६, ५४; २।२६।१४; २।८१।१२
३. वही ५।४८।५४
४. वही ४।१७।३; ४।२६।२०; ५।४२।२१
५. वही २।१।५०; ६।११।१८, २०
६. वही १।५।६; १।४५।१०; ५।३।३०
७. वही १।५।६, ६, १२; ६।३।२३
८. वही १।५।७

पुरवर,[१] पुरोत्तम,[२] राजधानी[३] एवं दुर्ग[४] भी कहलाती थी। यह सम्पूर्ण राज्य के शासन का केन्द्र या गढ़ थी। इसमें राजा सहित शासन के संचालन सम्बन्धी प्रमुख अधिकारियों के मुख्यालय थे।[५] पुर का शासन राजा की प्रत्यक्षता में होता था। राजा स्वयं प्रतिदिन पौर कार्यों को देखता था।[६] वह पुर के कार्यों एवं पुरवासियों की गतिविधियों[७] तथा कर्मचारियों की गतिविधियों[८] के प्रति सजग रहता था। इसके लिये उसके द्वारा सम्यक् रूपेण 'चरों' की व्यवस्था की जाती थी।[९]

पौरकार्यों में राजा की सहायतार्थ युवराज, मन्त्रीगण, अमात्य, पौरजानपदों के प्रतिनिधि और नैगम आदि रहते थे।[१०] इनका प्रमुख कार्य प्रजा की रक्षा करना, उसके प्रति न्याय करना एवं उचित कर इकट्ठा करना[११] तथा सैनिक कार्यों को देखना और सैनिकों की व्यवस्था करना था।[१२]

पुर की व्यवस्था के लिये नगरपालिका जैसी एक सस्था भी होगी। नगरपालिका का अध्यक्ष युवराज होगा।[१३] युवराज के अतिरिक्त यह संस्था मुख्य रूप से पौर (पुर के प्रतिनिधियों),

---

१. वा० रा० १।६।६
२. वही १।६।७; २।१४।२६
३. वही २।५१।२३
४. वही ६।३।२२
५. वही २।१।५०
६. वही ७।५३।४, ६
७. वही २।१००।३७; ७।४३।४
८. वही २।१००।३७
९. वही १।७।७; ५।४।१४
१०. वही १।७७।२१; २।११२।१७; ७।५३।५; ७ सर्ग ५९ के पश्चात् अधिक पाठ सर्ग १ श्लोक २, ३ आदि
११. वही १।७।१०, ११
१२. वही १।७।९; २।१००।२६, ३३
१३. वही १।७७।२१

श्रेणीमुख्य तथा निगम के प्रधान लोगों से संगठित होगी।[1] यह संस्था नगर की सम्पूर्ण व्यवस्था और विकास के लिये उत्तरदायी होगी।

पुर-प्रशासन 'एक-दृष्टि'—

रामायण में अयोध्या, किष्किन्धा और लङ्का तीनों राजधानियों की व्यवस्था का विशद वर्णन है। संक्षेप में यह इस प्रकार है—

पुर-व्यवस्था—

तत्कालीन शासनाधिकारियों को मुख्य नगर की व्यवस्था या योजना का विशेष ध्यान रहता था। सर्व प्रथम 'पुर' की सुरक्षा की व्यवस्था की जाती थी। राजधानी दुर्गम किलों और खाइयों से युक्त होती थी।[2] उसके परकोटे की दीवारों पर सुरक्षा के लिये तोपों एवं यन्त्रों का प्रबन्ध रहता था।[3] योधागण उसकी रक्षा के लिये नियुक्त रहते थे।

सुरक्षा के अतिरिक्त राजधानी की व्यवस्था दर्शनीय होती थी। नगर में सड़कों की सम्यक् व्यवस्था,[4] बाजारों की व्यवस्था,[5] कमलाकार एवं स्वस्तिकाकार भव्यभवनों की व्यवस्था[6] तथा उद्यानों की व्यवस्था,[7] कूटागारों की व्यवस्था[8] तथा सभा-भवनों की व्यवस्था होती थी।[9]

राजधानी के सौन्दर्य और सम्पन्नता का विशेष ध्यान रखा जाता था।[10]

१. वा० रा० २।१६।१४; २।११२।१७; ६।१३०।६; ७।५३।५
२. वही १।५।१३; ४।३१।१८; ५।२।१४, १६, २६
३. वही १।५।१०; ११; ५।२।२१
४. वही १।५।७, ८; २।६।११
५. वही १।५।१०; २।६।१२; ४।३३।५
६. वही १।५।११; ४।३३।८; आदि; ५।२।१७, १८; ५।४।७
७. वही १।५।१२; ५।२।१३; ५।३।२
८. वही १।५।१५
९. वही २।६।१३
१०. वही १।५।८; १५, १६; २।६।१७

राजधानी में मार्गों को प्रतिदिन स्वच्छ किया जाता था एवं उन पर जल तथा सुगन्धित पदार्थों—अगर और चन्दन के छिड़काव की व्यवस्था थी।[१] नगर में पानी और प्रकाश का भी प्रबन्ध था।[२]

अनुशासन की व्यवस्था—

शासन द्वारा पुर में लोगों में अनुशासन की व्यवस्था के लिये दण्डधर या पुलिस के सिपाही[३] और गुप्तगर[४] नियुक्त रहते थे। अयोध्या में अनुशासन की श्रेष्ठ व्यवस्था के कारण चारों वर्ण अपने अपने कार्यों में संलग्न रहते थे।[५] वहाँ पर प्रजा में परस्पर हिंसा की भावना न थी।[६] कठोर अनुशासन होने के कारण अयोध्या में कोई दस्यु या दुष्कर्म करने वाला व्यक्ति न था।[७]

लोककल्याण के कार्यों की व्यवस्था—

तत्कालीन शासन द्वारा विपत्तियों तथा दुर्भिक्ष से प्रजा की रक्षा का प्रबन्ध किया जाता था।[८] प्रजा के सुख, समृद्धि, संतोष प्रसन्नता, मनोरंजन आदि का भी ध्यान रखा जाता था।[९]

राज्य द्वारा प्रजा की शिक्षा की व्यवस्था,[१०] धार्मिक कार्यों की व्यवस्था,[११] संस्कृति की रक्षा एवं समाज के विकास और

---

१. वा० रा० १।५।८, २४; ४।३३।७
२. वही १।५।१७; २।६।१८; ५।३।५
३. वही ५।४।१६, २०; ६।१३०।८
४. वही १।७।७; २।१००।३७; ५।४।१४; ७।४३।५
५. वही १।१।९३; ६।१३१।१००
६. वही ६।१३१।९६
७. वही १।६।१२; ६।१३१।९५
८. वही १।१।९०; ६।१३१।९५, ९६
९. वही १।१।९१; १।५।१२; १।६।७; २।६७।१५,१६,१७
१०. वही १।६।८, १४; ५।४।१३
११. वही १।६।८

उन्नति की भी व्यवस्था की जाती थी।[1] राज्य द्वारा प्रजा में राजभक्ति की भावना उत्पन्न की जाती थी।[2]

रामायणानुसार राजधानी के प्रशासन से स्पष्ट है कि मुख्य नगर के लिये राजा एवं पदाधिकारियों के अतिरिक्त विभिन्न नगरीय संस्थाओं, पौर, निगम, श्रेणी आदि के प्रतिनिधियों की नगरपालिका होगी, जो नगर की व्यवस्था, प्रजा के अधिकारों की रक्षा, समृद्धि, विकास एवं मनोरंजन के लिये उत्तरदायी होगी।

ग्रामीण प्रशासन—

जैसाकि पूर्वोल्लेख है, रामायणानुसार तत्कालीन राज्य सम्पूर्ण प्रशासन के लिये पुर और जनपद में विभक्त थे।[3] जनपद भी अनेक राजनैतिक इकाईयों में विभक्त था। जनपद में नगर,[4] पट्टन,[5] महाग्राम,[6] ग्राम,[7] सम्वास,[8] घोष[9] आदि सम्मिलित थे। जनपद के प्रान्तीय नगर 'नगर' या 'पट्टन' कहलाते थे। 'ग्राम' प्रशासन की न्यूनतम इकाई थी।

जनपद के शासन के संचालन के लिये जनपद-विभागीय कर्मचारी रहते थे। ये जनपदेश्वर कहलाते थे।[10] जनपद की समस्त जनता के प्रतिनिधि "जानपद श्रेष्ठाः" राजधानी में समय समय पर शासन की सहायतार्थ रहते थे।[11] जनपदेश्वरों के अधीनस्थ

---

१. वा० रा० १।१।८८; १ सर्ग ६; ६।१३१।१००, १०१
२. वही १।६।१६
३. वही १।७।१२; २।२।५३; ७।७३।१७, १८
४. वही २।१।४५; २।५७।४
५. वही ४।४०।२४, २५
६. वही ४।४०।२२
७. वही २।७५।४; ४।४६।३, ६
८. वही २।४६।३, ६
९. वही २।८३।१५
१०. वही ७।३७।१६
११. वही २।२।१६; २।१४।४०

ग्राम और घोष के मुखिया थे। ये "ग्राम-घोष महत्तर"[1] कहलाते थे। "ग्राम-घोष महत्तर" ग्राम और घोष आदि क्षेत्रों के अधिकारी होते थे और उनके शासन के उत्तरदायी होते थे। ये अपने अपने क्षेत्र में शान्ति, सुरक्षा, व्यवस्था और उसके विकास के उत्तरदायी थे।

"ग्राम-घोष-महत्तर" जनपद के प्रतिनिधियों जानपदश्रेष्ठों एवं जनपदेश्वरों के माध्यम से केन्द्रीय शासन द्वारा ग्राम-घोष आदि की सुरक्षा, विकास और कल्याण के कार्यों के लिये अनुदान प्राप्त कराते होंगे। ये ग्राम की जनता के मामलों का निपटारा करते होंगे एवं उनके प्रति न्याय के उत्तरदायी होंगे। ग्रामीण जनता से ये "कर" भी एकत्रित करते होंगे। इस प्रकार ये "ग्राम-घोष-महत्तर" शासन के प्रति पूर्ण उत्तरदायी होंगे।

ग्रामीण प्रशासन "एक दृष्टि"—

रामायणानुसार तत्कालीन ग्राम कृषिप्रधान क्षेत्र थे।[2] इनमें पशुपालन भी होता था। इनमें रहने वाले लोग "कृषिगोरक्ष-जीविनः" कहलाते थे।[3] उनकी सुरक्षा एवं प्रसन्नता का शासन को विशेष ध्यान रहता था।[4] शासन द्वारा ग्रामों में कृषि योग्य सिंचाई का प्रबन्ध किया जाता था। कौसल राज्य में कृषि योग्य भूमि पर कृत्रिम साधनों द्वारा सिंचाई की व्यवस्था थी।[5] कृति में अनेक उल्लेखों से स्पष्ट है कि तत्कालीन राज्यों में शासन द्वारा सिंचाई के लिये नदियों पर बाँध बनाये जाते थे।[6] सिंचाई के लिये अन्य साधन—कुयें, तालाब आदि की भी व्यवस्था शासन

---

१. वा० रा० २।८३।१५
२. वही २।४६।३
३. वही २।१००।४८
४. वही २।६७।१६; २।१००।४८
५. वा० रा० २।१००।४६
६. वही २।१०५।५; ५।१६।१७

द्वारा की जाती थी।[1] शासन द्वारा सदैव हिंसक पशुओं से कृषि क्षेत्रों की रक्षा का भी प्रबन्ध किया जाता था।[2]

जनपदीय ग्रामों आदि की समृद्धि और सम्पन्नता के लिये शासन उत्तरदायी था। तत्कालीन राज्यों में न केवल पुर या राजधानी ही सम्पन्न थी, अपितु जनपद-स्थित ग्राम एवं नगर भी धनधान्य सम्पन्न एवं सब प्रकार से समृद्ध थे।[3] राम ने वन जाते समय ग्रामों की सम्पन्नता एवं समृद्धि को देखा था।

निष्कर्षतः रामायणानुसार तत्कालीन राज्यों में प्रशासन सुव्यवस्थित था। प्रजा के अरिष्टों को दूर कर उसकी धर्मपूर्वक रक्षा करना शासक वर्ग का कर्तव्य था।[4] शासक वर्ग अपने कर्तव्यों को निभाता था तथा प्रजा भी शासन का अनुकरण करती हुई अपने कर्तव्यों का पालन करती थी।[5] सम्पूर्ण राज्य पूर्ण काम, समृद्ध एवं अन्न से परिपूर्ण थे। सम्पूर्ण प्रजा परस्पर द्वेषभाव रहित होकर प्रमुदित एवं सन्तुष्ट रहती थी।[6]

रामायणकालीन राज्यों में शासन व्यवस्था, सुचारु होने के कारण तत्कालीन राज्यों में न दुर्भिक्ष का भय था और न चोरों का भय था।[7]

अस्तु रामायणकालीन शासन व्यवस्था, विशेषतः कौसल-राज्य की शासन व्यवस्था सुचारु और सुव्यवस्थित थी। वह धर्म एवं राजनीति पर आधारित थी। तत्कालीन कौसलराज्य का सुशासन राजा तथा प्रजा सभी को धर्म, अर्थ और काम की सम्यक्

१. वा० रा० २।८०।११, १२; २।१००।४४
२. वही २।१००।४६
३. वही १।१।९१
४. वही २।१००।४९
५. वही ६।१३१।१००
६. वही १।१।९१; १।५।५; १।६।६, ७; ३।१६।७; ३।१३१।९६; ६।१३१।९६, १००
७. वही १।१।८८, ९०; १।६।१२; २।११०।१०; ६।१३१।९५

ग्राम और घोष के मुखिया थे। ये "ग्राम-घोष महत्तर"[१] कहलाते थे। "ग्राम-घोष महत्तर" ग्राम और घोष आदि क्षेत्रों के अधिकारी होते थे और उनके शासन के उत्तरदायी हो। थे। ये अपने अपने क्षेत्र में शान्ति, सुरक्षा, व्यवस्था और उसके विकास के उत्तरदायी थे।

"ग्राम-घोष-महत्तर" जनपद के प्रतिनिधियों जानपदश्रेष्ठों एवं जनपदेश्वरों के माध्यम से केन्द्रीय शासन द्वारा ग्राम-घोष आदि की सुरक्षा, विकास और कल्याण के कार्यों के लिये अनुदान प्राप्त कराते होंगे। ये ग्राम की जनता के मामलों का निपटारा करते होंगे एवं उनके प्रति न्याय के उत्तरदायी होंगे। ग्रामीण जनता से ये "कर" भी एकत्रित करते होंगे। इस प्रकार ये "ग्राम-घोष-महत्तर" शासन के प्रति पूर्ण उत्तरदायी होंगे।

ग्रामीण प्रशासन "एक दृष्टि"—

रामायणानुसार तत्कालीन ग्राम कृषिप्रधान क्षेत्र थे।[२] इनमें पशुपालन भी होता था। इनमें रहने वाले लोग "कृषिगोरक्ष-जीविनः" कहलाते थे।[३] उनकी सुरक्षा एवं प्रसन्नता का शासन को विशेष ध्यान रहता था।[४] शासन द्वारा ग्रामों में कृषि योग्य सिंचाई का प्रबन्ध किया जाता था। कौसल राज्य में कृषि योग्य भूमि पर कृत्रिम साधनों द्वारा सिंचाई की व्यवस्था थी।[५] कृति में अनेक उल्लेखों से स्पष्ट है कि तत्कालीन राज्यों में शासन द्वारा सिंचाई के लिये नदियों पर बाँध बनाये जाते थे।[६] सिंचाई के लिये अन्य साधन—कुयें, तालाब आदि की भी व्यवस्था शासन

१. वा० रा० २।८३।१५
२. वही २।४९।३
३. वही २।१००।४८
४. वही २।६७।१६; २।१००।४८
५. वा० रा० २।१००।४६
६. वही २।१०५।५; ५।१६।१७

द्वारा की जाती थी।[१] शासन द्वारा सदैव हिंसक पशुओं से कृषि क्षेत्रों की रक्षा का भी प्रबन्ध किया जाता था।[२]

जनपदीय ग्रामों आदि की समृद्धि और सम्पन्नता के लिये शासन उत्तरदायी था। तत्कालीन राज्यों में न केवल पुर या राजधानी ही सम्पन्न थी, अपितु जनपद-स्थित ग्राम एवं नगर भी धनधान्य सम्पन्न एवं सब प्रकार से समृद्ध थे।[३] राम ने वन जाते समय ग्रामों की सम्पन्नता एवं समृद्धि को देखा था।

निष्कर्षतः रामायणानुसार तत्कालीन राज्यों में प्रशासन सुव्यवस्थित था। प्रजा के अरिष्टों को दूर कर उसकी धर्मपूर्वक रक्षा करना शासक वर्ग का कर्तव्य था।[४] शासक वर्ग अपने कर्तव्यों को निभाता था तथा प्रजा भी शासन का अनुकरण करती हुई अपने कर्तव्यों का पालन करती थी।[५] सम्पूर्ण राज्य पूर्ण काम, समृद्ध एवं अन्न से परिपूर्ण थे। सम्पूर्ण प्रजा परस्पर द्वेषभाव रहित होकर प्रमुदित एवं सन्तुष्ट रहती थी।[६]

रामायणकालीन राज्यों में शासन व्यवस्था, सुचारु होने के कारण तत्कालीन राज्यों में न दुर्भिक्ष का भय था और न चोरों का भय था।[७]

अस्तु रामायणकालीन शासन व्यवस्था, विशेषतः कौसल-राज्य की शासन व्यवस्था सुचारु और सुव्यवस्थित थी। वह धर्म एवं राजनीति पर आधारित थी। तत्कालीन कौसलराज्य का सुशासन राजा तथा प्रजा सभी को धर्म, अर्थ और काम की सम्यक्

---

१. वा० रा० २।८०।११, १२; २।१००।४४
२. वही २।१००।४६
३. वही १।१।९१
४. वही २।१००।४६
५. वही ६।१३१।१००
६. वही १।१।९१; १।५।५; १।६।६, ७; ३।१६।७; ३।१३१।९६; ६।१३१।९६, १००
७. वही १।१।८८, ९०; १।६।१२; २।११०।१०; ६।१३१।९५

उपलब्धि कराने का साधन था।[1] तत्कालीन उक्त शासन व्यवस्था की विधि आज अनुकरणीय है।

रामायण कालीन शासन की विशेषतायें—

रामायण कालीन राज्यों के शासन की मुख्य विशेषतायें निम्नाङ्कित हैं—

(१) रामायणानुसार तत्कालीन राज्यों में राजतन्त्र था। किन्तु उनमें मनमाना शासन न था। राजा शासन सम्बन्धी कार्यों में अधिकारियों के अतिरिक्त प्रजा से भी सलाह लेता था।[2] रामराज्य लोकतन्त्रात्मक था। उसमें प्रजा का प्रत्येक व्यक्तिपूर्ण स्वतन्त्र था। राम के वनवास पर प्रजाजनों ने राजा दशरथ को धिक्कार देने में संकोच न किया था।[3] इसी प्रकार सीता पर भी जन सामान्य द्वारा आरोप लगाया गया था।[4]

(२) तत्कालीन शासन व्यवस्था का आधार दण्ड,[5] धर्म एवं नैतिकता थी।[6] धर्म से तात्पर्य सत्य आदि नैतिक गुणों से था।[7] सत्य और धर्म ही तत्कालीन राजनीति का आधार था।[8]

(३) तत्कालीन राज्यों में प्रजा पर राजवृत्ति एवं धर्मानुसार शासन किया जाता था।[9]

(४) तत्कालीन राज्यों में शासक वर्ग प्रमुख रूप से अपने कर्तव्यों के प्रति उत्तरदायी था एवं वह अपने कर्तव्यों के प्रति जागरुक रहता था।[10] तत्कालीन शासन में राजा प्रजा के सेवक

---

१. वही १।६।५, ६, ७, ८, ९, १०; ६।१३१।९७, १०१
२. वही २।२।१, १९, २०; ६।११, १२
३. वा० रा० २।४९।८
४. वही ७।४३।१६, १७, १८
५. वही ७।७९।८
६. वही २।१००।४९
७. वही २।१४।३
८. वही ७।३।१०
९. वही १।७।१०; १।५२।७; २।१०९।१०; ५।५२।६, ७
१०. वही १।७।६; ७।५३।४, ६

के रूप में था। प्रजा की रक्षा करने के उपलक्ष में वह प्रजा से उसकी आय का छठवाँ भाग प्राप्त करता था।[1] राजा धर्माधीन था। कर्तव्य से च्युत होना उसके लिये अहितकर था।[2] शासक नीति के विरुद्ध नहीं चलता था। राम ने नीतिपूर्वक शासन करने के लिये भरत को, मारीच ने रावण को और हनुमान् ने सुग्रीव को नीतिपूर्ण उपदेश दिया था।[3] शासक वर्ग 'यथाराजा तथाप्रजा' की भावना से पूर्णतः परिचित था।[4] अतः वह धर्म और सदाचरणों के प्रति सचेत रहता था।[5]

(५) तत्कालीन शासन व्यवस्था व्यवस्थित थी।[6] राज्य के सभी वर्गों को समानाधिकार तथा स्वतन्त्रता प्राप्त थी,[7] लेकिन स्वच्छन्दता नहीं।[8]

(६) तत्कालीन शासन में समुचित न्याय व्यवस्था[9] एवं अपराधानुसार दण्ड की व्यवस्था थी।[10]

(७) रामायणानुसार तत्कालीन शासन द्वारा राज्यों की समृद्धि और सम्पन्नता का विशेष ध्यान रखा जाता था। रामायण में वर्णित कौसल, लङ्का और किष्किन्धा के अतिरिक्त भी सभी राज्य द्राविण, सिन्ध, सौवीर, सौराष्ट्र, दक्षिणापथ, बङ्गाल,

---

१. वा० रा० २।७५।२४; ३।६।११, १२, १४; ७।७४।३१
२. वही ३।३४।१७
३. वही २ सर्ग-१००; ३ सर्ग ३७, ३६, ४१; ४ सर्ग २६, ३२
४. वही २।१०६।६; ७।४३।१६
५. वही सर्ग ६, ७
६. वही १ सर्ग ६, ७; २ सर्ग १००
७. वही १।६।१७, १६; ५।३५।११; ६।१३१।१००, १०१
८. वही १।६।८, ६; २।६७।१०, ११; २।१००।३८; ४ सर्ग १८
९. वही २।१००।५७, ५८, ५६; ६०
१०. वही १।७।११; २।१००।२८, ७।७६।८

अङ्ग, मगध, मत्स्य, काशी, वत्स्य आदि पूर्णतः सम्पन्न और समृद्ध थे।[१]

(८) तत्कालीन राज्यों में शासन द्वारा प्रजा की सुरक्षा की विशेष व्यवस्था की जाती थी। राज्यों में प्रजाजन घरों के द्वार खोलकर सो सकते थे।[२]

(९) तत्कालीन राजा अपने आचरण की रक्षा के लिये, स्वजनों की रक्षा के लिये, प्रजा की रक्षा के लिये और धर्म की रक्षा के लिये उत्तरदायी होता था।[३]

इस प्रकार तत्कालीन शासन व्यवस्था आदर्श थी। विशेषकर राजा दशरथ और रामराज्य के आदर्श और विशेषतायें अनुकरणीय हैं।

रामायण कालीन राज्यों में शासन की गृहनीति—

रामायण कालीन राज्यों के उपर्युक्त शासन सम्बन्धी विवरण से तत्कालीन शासन की गृहनीतियाँ स्पष्ट हैं। रामायणानुसार तत्कालीन शासन की प्रमुख गृहनीतियाँ निम्नाङ्कित हैं—

(१) राज्य एवं प्रजा की रक्षा करना,[४] प्रजा को अपने कार्यों में लगाना,[५] प्रजानुरञ्जन करना,[६] राज्य के समस्त व्यक्तियों को समानता एवं स्वतन्त्रता का अधिकार देना[७] एवं प्रजाजनों में नैतिकता की भावना उत्पन्न करना।[८]

---

१. वा० रा० १।५।५; २।१०।३८, ३९; २।५२।१०१; ३।१६।७; ४।३३; ५ सर्ग ४, ६
२. वही २।६७।१९
३. वही ५।३५।१०
४. वही २।१००।४९; २।११०।१०; ६।१३१। ९५, ९७
५. वही १।१।९३; ६।१३१।१००
६. वही २।३।४०, ४३; ६।१३१।९६
७. वही १।६।१७, १८, १९; ६।१३१।१००, १०१
८. वही १।६।६, ८, ९; ६।१३१।९६, १००, १०१

(२) राज्य पर सत्य एवं धर्मपूर्वक राज्य करना,[१] न्याय से कोष की वृद्धि करना,[२] राजकोय आय का सदुपयोग करना,[३] उचित न्याय करना,[४] अपराधानुसार तीक्ष्ण दण्ड का प्रयोग करना।[५]

(३) राज्य के आन्तरिक शत्रुओं पर विजय प्राप्त करना,[६] शक्तिशाली सैन्य संगठन करना,[७] गुप्तचरों की सम्यक् व्यवस्था करना।[८]

(४) शासन सम्बन्धी बातों को गुप्त रखना।[९]

(५) लोक कल्याण के कार्य—शिक्षा का प्रसार,[१०] नगर की व्यवस्था करना,[११] प्रजा के लिये मनोरंजन के साधनों को जुटाना,[१२] राज्य में कृषि के लिये सिंचाई की व्यवस्था आदि सुविधाओं को करना।[१३]

(६) राज्य के कार्यों के प्रति सावधान रहना[१४] एवं राष्ट्र को समृद्ध बनाना।[१५] उपर्युक्त गृहनीतियों के अतिरिक्त राज्य के कल्याणार्थ शासन की अनेक नीतियाँ थीं।

---

१. वा० रा० २।१००।४६ आदि, २।१०६।१०; ७।३।१०
२. वही १।७।६, ११; २।१००।५५
३. वही २।१००।५५, ५६
४. वही २।७५।५७; २।१००।५७, ५८, ५६
५. वही १।७।११; ७।७६।८
६. वही २।१००।३८
७. वही १।७।६; २।१००।३१, ३२
८. वही १।७।७; २।१००।३७; ५।४।१८
९. वही २।६८।८; २।१००।२१
१०. वही १।६।८, १४; ५।४।१३
११. वही १।५।७, ८, १०, ११; २।६।११, १२; ४।३३।५
१२. वही १।५।१२; २।६७।१५, १६, १७
१३. वही २।१००।४६
१४. वही १।७।६; २।१००।३७
१५. वही २।१००।५४

रामायण कालीन शासन के दोष—

रामायण कालीन शासन व्यवस्था आदर्श होते हुए भी किञ्चित् दोषपूर्ण थी। तत्कालीन शासन में निम्नाङ्कित दोष दृष्टिगोचर होते हैं—

(१) रामायणकालीन शासन में राजा को देवता माना जाने लगा था।[1] अतः राजा और प्रजा के बीच एक अन्तर उत्पन्न हो गया था। राजा अपने को विशेषाधिकारों से युक्त मानने लगा था। अतः उसमें निरंकुशता का भाव उत्पन्न हो गया था।[2]

(२) रामायण कालीन शासन में सभा का उतना महत्त्व न था, जितना कि वैदिक कालीन शासन व्यवस्था में था। रामायण कालीन शासन में राजा निरंकुश भी हो सकता था।[3]

(३) रामायण में उत्तरकाण्ड में प्रजा के चारों वर्णों में जाति भेद का उल्लेख है।[4] रामायण काल से प्रजा में जाति-भेद उत्पन्न होने से चारों वर्णों के बीच एक खाई उत्पन्न हो गई, जो कि बाद में बढ़ती ही गई। इससे राष्ट्रीयता की भावना लोगों में कम होती गई और व्यक्तिगत स्वार्थ प्रबल हो गया। वह राष्ट्र की स्वतन्त्रता और सम्पन्नता के लिये घातक सिद्ध हुआ।

रामायण कालीन शासन में उपर्युक्त दोषों के होने पर भी लङ्का की शासन व्यवस्था को छोड़कर आर्य एवं वानर राज्यों की शासन व्यवस्था धर्म और न्याय पर आधारित होने के कारण आदर्श थी।

———

१. वा० रा० ३।४०।१२; ४।१८।४४
२. वही ३।४०।८, ६, २६
३. वही ५।३६।२ आदि; ६।१६।१५
४. वही ७।७४।२६ आदि

चतुर्थ अध्याय

रामायणकालीन सैनिक संगठन तथा युद्ध

सैनिक संगठन की आवश्यकता—

"बल" राज्य के सप्ताङ्गों में से उसका एक अङ्ग है। यह दण्ड का ही प्रकाश्य रूप है। राज्य को सुरक्षा के लिये सैनिक संगठन की आवश्यकता होती है। बौद्धिक दृष्टि से विकसित होने पर भी व्यक्ति की अनौचित्यपूर्ण इच्छायें एवं स्वार्थ उसे क्रूर कर्म करने के लिये प्रेरित करते हैं। एक राष्ट्र के सत्ताधारी व्यक्ति या शासक वर्ग के अनौचित्यपूर्ण कार्य से दूसरे राष्ट्र को सहज ही हानि हो सकती है। अतः इन अनौचित्यपूर्ण कार्यों को रोकने के लिये एवं उनके प्रतिकार के लिये प्रत्येक राज्य को एक सुसंगठित सेना की आवश्यकता होती है।

रामायण में वर्णित सभी राज्य समृद्ध, सभ्य और विकसित थे। लेकिन उस समय में भी उन राज्यों के सत्ताधारी राजाओं में यश की अनौचित्यपूण इच्छा (दिग्विजय की इच्छा) और स्वार्थ की भावना कम न थी। अतः ऐसे राजाओं के अनौचित्यपूर्ण कार्यों से उनके प्रतिकार के लिये एवं स्वराज्य की रक्षार्थ प्रत्येक राज्य में एक सैनिक संगठन था। यह युद्ध में विजयार्थ आवश्यक था।[1] रामायणानुसार साम, दाम और भेद से कार्य में सिद्धि न

१. वा० रा० ६।१३।७, ८; ६।२१।१६, १७

प्राप्त होने पर उसकी सिद्धि के लिये दण्ड या बल का प्रयोग आवश्यक था।[1]

रामायणानुसार तत्कालीन राज्यों में सैनिक संगठन प्रधानतः बाह्य शत्रुओं से राज्य की रक्षार्थ होता था। लेकिन समय समय पर राज्य में आन्तरिक शान्ति एवं सुरक्षा को बनाये रखने के लिये भी सेना की आवश्यकता पड़ती थी।[2]

रामायण में सेना के संगठन, युद्ध प्रणाली, उसके नियम आदि का विस्तृत वर्णन है। प्रस्तुत अध्याय में इन सभी के सम्बन्ध में विस्तृत विवेचन किया जायेगा।

रामायण में सैनिक संगठन—

रामायण में प्रमुख रूप से अयोध्या, किष्किन्धा और लङ्का के सैनिक संगठन के विषय में विस्तृत विवेचन है। भीष्म के अनुसार सैन्यबल के आठ अङ्ग माने गये हैं—रथारोही, गजारोही, अश्वारोही, नौकारोही, पैदल, विष्टि (भार वाहक), गुप्तचर और उपदेशक।[3] रामायण में इन सभी बलाङ्गों का उल्लेख किया गया है। रामायणकालीन राज्यों में सेना का संगठन प्रमुख रूप से चतुरङ्गबल,[4] दूत, गुप्तचर, शिविरनियंता तथा मार्ग-निर्देशक से मिलकर हुआ था।

सेना दो प्रकार की कही गई है—स्वगम तथा अन्यगम।[5] रामायण में सेना के दोनों रूपों, स्वगम (पैदल सेना, जैसे राम की सेना) तथा अन्यगम (गजाश्वरथ आदि पर सवार सैनिकों की सेना, जैसे रावण की सेना) का वर्णन है।

---

१. वा० रा० ५।४१।२, ३
२. वही ६।११।१६; ६।१२।३, ४
३. 'भीष्म का राजधर्म', पृ० १३४
४. वही ६।३७।२४
५. शुक्रनीति ४।८।६४

सेना का प्रधान राजा—

रामायण के अध्ययन से स्पष्ट है कि सेना का प्रधान संचालक एवं निर्देशक स्वयं राजा होता था।[1] राजागण सैनिक शिक्षा प्राप्त होते थे। राम ने सैनिक शिक्षा प्राप्त की थी। राम ने अस्त्र-शस्त्र और सैनिक संचालन की कला तथा राजनीति का ज्ञान आचार्य सुधन्वा से प्राप्त किया था।[2] उन्होंने अस्त्रशस्त्र का अभ्यास निरन्तर किया था।[3] वे अस्त्रों के संचालन में निपुण थे।[4] उन्होंने गज और अश्वों पर सवारी करने में दक्षता प्राप्त की थी [5] धनुर्विद्या के ज्ञान में वे अद्वितीय थे।[6] अतएव उन्हें अतिरथी कहा गया है।[7] वे शत्रु पर आक्रमण करने में निपुण एवं सेनानयविशारद थे।[8] इसी प्रकार सुग्रीव भी रण विशारद था।[9] सीता की खोज के लिये सुग्रीव द्वारा सैनिकों की व्यवस्था का कार्य[10] उल्लेखनीय एवं प्रशंसनीय रहा था।

रावण भी सैनिक प्रशिक्षण प्राप्त था। वह अस्त्रविद्या-विशारद, अश्वगज और रथ पर सवार होने में दक्ष, असि एवं बाण चलाने में प्रवीण एवं साम, दाम, भेद आदि की राजनीति में कुशल था।[11] राम और रावण द्वारा सैनिकों को संगठित एवं

---

१. वा० रा० ६।३।१३ आदि; ६।३६।७७ आदि; ६।३७।२५ आदि
२. वही २।१००।१४
३. बही २।१।१२
४. वही २।२।३४
५. वही २।१।२८
६. वही १।१।१४; २।१।२६; २।२।४३
७. वही २।१।२६
८. वही २।१।२६
९. वही ४।१६।१६
१०. वही ४ सर्ग ४१, ४२, ४३, ४४
११. वा० रा० ६।७१।२८, २६

व्यवस्थित रूप से मोर्चे पर स्थापित करना उनकी सैनिक संचालन एवं निर्देशन में दक्षता का प्रतीक है।[1]

राजागण सैन्य संचालन का कार्य मन्त्रियों की सहायता से करते थे।[2] अमात्य भी सैनिकगुणों से युक्त होते थे। राजा दशरथ के अमात्य "दृढ़विक्रमा." एवं वीर थे।[3] रावण के अमात्य और सुग्रीव के अमात्य भी शूरकर्मा थे।[4] उन्हें स्वपक्ष और शत्रुपक्ष के बलाबल का ज्ञान होता था।[5] रामायण में मन्त्री, पुरोहित, सेनापति और शिविर नियन्ता का नाम एक साथ आया है।[6] अतः राजा के अतिरिक्त इन सभी का एवं युवराज का भी हाथ सैनिक संगठन के कार्य में था। वस्तुतः राजा ही सैनिक शक्ति का प्रधान उसका संचालक तथा निर्देशक था। राम, रावण एवं सुग्रीव अपनी सेना के प्रधान नियन्ता एवं संचालक के रूप में रामायण में वर्णित हैं।

सेनापति—

रामायणानुसार सेनापति सेना का नेता तथा मन्त्रिपरिषद् का सदस्य होता था।[7] इसकी नियुक्ति राजा स्वयं करता था।[8] रामायण में सेनाध्यक्ष के लिये सेनापति,[9] वाहिनीपति,[10] चमूपति[11] एवं सैन्यपाल[12] का प्रयोग है। प्रधान सेनाध्यक्ष के अधीन अनेक

---

१. वा० रा० ६।३६।१७ आदि; ६।३७।२५ आदि
२. वही ६।३६।१६; ६।३७।१, २, ३' ४, ५
३. वही १।७।८ से ११
४. वही ६।३७।२५, २६, २८; ७।१४।१, २
५. वही ६।१४।२२
६. वही २।८१।३६
७. वही ६।५७।१२; ६।५८।४, ३५; ७।१४।१, २
८. वही २।१००।३१
९. वही ६।१२।२; ६।५८।४
१०. वही ६।१२।१; ६।५७।१२; ६।५८।३५, ३६
११. वही ६।४१।३७
१२. वही ६।७०।३०

बलमुख्य या बलाध्यक्ष एवं यूथप होते थे।[1] ये कई भागों में विभक्त सेना के नायक थे।[2] रावण के राज्य में सभा के सभी मुख्य सदस्य बलाध्यक्ष थे। वे सभा के मन्त्री भी थे और सेना के अग्रयायी भी थे।

'प्रहस्त' राजा रावण की सेना का प्रधान सेनाध्यक्ष तथा युद्ध मन्त्री था।[3] राजा दशरथ के अमात्य भी दृढ़विक्रम होने के नाते बलाध्यक्ष होंगे। राजा सुग्रीव के भी सभी मन्त्री यूथपति थे।[4] वानर सेना का प्रधान सेनापति 'नील' था।[5] वानरी सेना यूथों में विभक्त थी। इन यूथों के अध्यक्ष 'यूथपति' थे।[6] यूथपतियों के ऊपर यूथपयूथप थे।[7] इन यूथपयूथप के आधीन सहस्र यूथपति होते थे।[8] यही यूथपयूथप प्रधान सेनापति था।[9] ऋक्षों की सेना का प्रधान सेनापति जाम्बवान् महायूथपयूथप कहा गया है।[10]

सेनापति की योग्यता एवं विशेषतायें—

रामायणानुसार सेनापति व्यवहार कुशल, शूरवीर, बुद्धिमान्, धैर्यवान्, स्वामी का विश्वासपात्र, सत्कुलोद्भव, स्वामिभक्त और कार्यकुशल होता था।[11] वह सेना पर प्रशासन करने वाला, सेना

---

१. वा० रा० २।८२।३१; ४।३६।११; २१, २२, २३; ६।५५।१; ६।५७।११; ६।८५।२१
२. वही ६।८५।६
३. वही ६।१२।२; ६।५८।४
४. वही ४।३६।२१, २३; ६।१७।३५ आदि
५. वही ६।४१।३७
६. वही ६।२६।४१, ४८
७. वही ६।२६।६; ६।२७।१५, १६
८. वही ६।२६।११
९. वही ६।२६।१३
१०. वही ६।२७।११
११. वही २।१००।३१

का रक्षक एवं निर्देशक, युद्ध में प्रसिद्धि प्राप्त एवं युद्धप्रिय तथा राजा का हितकारी होता था।[1]

सेनापति का निर्वाचन—

सेनाध्यक्ष अपनी शूरता, बुद्धिमत्ता, कुलीनता, स्वामिभक्ति एवं कार्यकुशलता के आधार पर राजा द्वारा नियुक्त किया जाता था।[2] सेनाधिकारी पराक्रम, प्रसिद्धि एवं युद्धविद्या में निपुणता के आधार पर तथा बल में परीक्षित होकर ही निर्वाचित होते थे।[3] इस प्रकार श्रेष्ठगुणों एवं कर्तव्यपरायणता के आधार पर ही सेनाध्यक्ष चुने जाते थे।

सेना—

रामायण में सेना के लिये बल, वाहिनी, अनीक, सेना, चमू आदि का प्रयोग है।[4] रामायणानुसार सेना सैनिकों की सामर्थ्य एवं योग्यता के आधार पर चार अङ्गों—पैदल, अश्वारोहियों, गजारोहियों एवं रथारोहियों में विभाजित थी। यह चतुरङ्गबल कहलाती थी।[5]

राजा दशरथ, भरत, खर, रावण और अनरण्य के पास उपर्युक्त चतुरंग बल थी।[6] रावण की सेना में अश्वारोहियों और गजारोहियों के अतिरिक्त गधों और ऊँटों पर सवार होकर युद्ध करने वाले सैनिक भी सम्मिलित थे।[7] त्रिशिरा राक्षस 'वृषभ' पर सवार होकर युद्धभूमि में युद्ध के लिये गया था।[8]

---

१. वा० रा० ६।५५।३
२. वही २।१००।३१
३. वही २।१००।३२; ६।५५।३
४. वही ५।६।३४; ६।२६।४२; ६।२७।२७,३१; ६।५७।२०; ६।८४।१६, १७; ६।८५।२१, २२; ६।८६।७
५. वही ६।३।२५; ७।१६।१२
६. वही १।६६।३; २।८३।३, ४, ५; ३।२५।२२, २३; ५।४६।१६; ६।३।२५, ७।१६।१२
७. वही ६।५३।५
८. वही ६।५६।१६

रामायण में अश्वारोही और गजारोहियों का नाम मात्र ही उल्लेख है। कृति में पैदल और रथारोहियों के युद्धकौशल का ही विशेष रूप से वर्णन है। पैदल सेना दो प्रकार की थी। एक तो वे पैदल सैनिक थे, जो तलवार, बरछी, वल्लभ आदि शस्त्रों से युद्ध करते थे। दूसरे प्रकार के वे सैनिक थे, जो तलवार-ढाल आदि शस्त्रों के अतिरिक्त धनुष का भी प्रयोग करते थे।[1] सभी प्रकार के सैनिकों में रथारोही सर्वश्रेष्ठ सैनिक थे। रथारोही योद्धा पैदल युद्ध करने में, अश्व पर सवार होकर युद्ध करने में एवं हाथी पर बैठकर भी युद्ध करने में दक्ष होते थे।[2] वे रथों पर सवार होकर तो युद्ध करने में कुशल थे ही।[3] वे शस्त्र और अस्त्र सभी का प्रयोग करते थे।[4] रथारोहियों के नेता महारथी होते थे।[5] इन महारथियों के ऊपर अतिरथी होते थे।[6] यह महारथी और अतिरथी एक ही समय में अनेक शत्रुओं के साथ युद्ध करने की क्षमता वाले होते थे।[7] अयोध्या में अनेक महारथी थे।[8] अंशुमान और भगीरथ महारथी कहे गये हैं।[9] राम अतिरथी थे।[10] रावण की सेना में भी अनेक महारथी थे।[11] रावण स्वयं अतिरथी था।[12] रथारोही योद्धा अच्छे रथचालक भी होते थे। इन्द्रजीत के सारथी

१. वा० रा० ६।३।२४, २६
२. वही ६।७१।२९
३. वही ६।७१।२९
४. वही १।५।२२
५. वही ५।६।७
६. वही ५।६।७; ६।५९।७०; ६।१००।६
७. वही २।१।२९; ५।६।७।; ६।५९।७०; ६।१००।६
८. वही १।५।२२
९. वही १।३९।६; १।४२।२३
१०. वही २।१।२९
११. वही ५।६।७
१२. वही ६।१००।६

के मारे जाने पर इन्द्रजीत ने युद्धस्थल में स्वयं रथसंचालन करते हुये युद्धकौशल प्रदर्शित किया था।[1] स्पष्ट है कि चतुरंगबल में रथविभाग महत्त्वपूर्ण एवं युद्ध में विजय प्राप्ति का प्रधान साधन था।

विभिन्न सैन्य श्रेणियाँ—

चतुरंग सेना के अतिरिक्त सेना की विभिन्न श्रेणियाँ रामायण में उल्लिखित हैं।[2] ये सैन्य श्रेणियाँ निम्नाङ्कित हैं—

(१) मित्रबल (२) अटविबल (३) मूल (परम्परागत) बल (४) भृत्यबल तथा (५) द्विषद्बल।

उपर्युक्त बलों में से द्विषद् बल को छोड़कर अन्य बल ग्राह्य कहे गये हैं।[3]

अयोध्या में सैन्य विभाग अलग था।[4] अयोध्या में सैनिक 'भृत' और 'योध' कहलाते थे।[5] लङ्का और किष्किन्धा में सेना का कोई अलग विभाग नहीं था। वहाँ तो प्रत्येक पुरुष सैनिक था। शान्तिकाल में ये वानर और राक्षस स्वदेश में श्रम करते थे और युद्ध काल में युद्ध करते थ।

सेना का सबसे विश्वसनीय अङ्ग वह था जिसमें कुलपुत्र (प्रतिष्ठित कुलोत्पन्न व्यक्ति) ही होते थे।[6] राजा दशरथ, रावण और सुग्रीव की सेना में ऐसे ही विश्वस्त सैनिक थे। वे अपने राष्ट्र व धर्म की रक्षा के लिये प्राणों का उत्सर्ग कर सकते थे।[7]

---

१. वा० रा० ६।६०।४४
२. वही ६।१७।२२
३. वही ६।१७।२२
४. वही १।७।६; २।१००।३३
५. वही १।५४।७; २।१७।२२; २।८२।२५, २६; २।१००।३४
६. वही २।१००।३५; ६।३।२७
७. वही २।१००।३५

स्थल सेना, वायुसेना तथा नौ सेना—

स्थान की दृष्टि से रामायण में तीन प्रकार की सेना का उल्लेख है, जो निम्नाङ्कित है—

स्थल सेना –

स्थल सेना केवल युद्ध क्षेत्र में स्थल पर ही युद्ध करती थी। स्थल सेना में पैदल, अश्वारोही, गजारोही और रथी सम्मिलित थे।

वायु सेना—

रामायणानुसार आकाशगामी यान भी थे। ये विमान कहलाते थे। रावण का सुप्रसिद्ध पुष्पक विमान आकाशगामी विमान था। वह अत्यन्त तीव्र गति वाला था।[1] वह सब प्रकार से सुरक्षित था।[2] रावण ने दिग्विजय में इस यान का उपयोग किया था।[3]

नौ सेना –

रामायण में नौ सेना का संकेत मात्र है। शृङ्गवेरपुर के राजा गुह के पास अनेक 'पोत' थे। गुह ने भरत के वन जाते समय सौ-सौ सशस्त्र सैनिकों को राम की रक्षार्थ घाट रोकने के लिये पाँच सौ नावों में तैयार कर रखा था।[4] ये नावें लम्बी यात्राओं या जल युद्ध के लिये विशेष उपयोगी थी।[5]

सेना की संख्या—

वाल्मीकि रामायण में सेना की अपरमितता की ओर स्पष्ट निर्देश है।[6] रामायणानुसार अधिक सेना या शक्ति का संचय

---

१. वा० रा० ६।१२४।३१; ७।१५।४०
२. वही ६।१२४।३१
३. वही ७।१८।१; ७।२२।५०
४. वही २।८४।८
५. हिस्ट्री आफ इण्डियन शिपिंग, पृ० २६
६. वा० रा० ४।३५।१५, २२; ४।३९।११; ६।२६।११ से ४७; ६।३७।१६, १८, २१; ६।४१।४१, ५०

अकारण हिंसा के लिये नहीं, अपितु आर्तों या धर्म की रक्षा के लिये ही था।[१] अकारण हिंसा करना व्यसन कहा गया है[२] एवं शस्त्रों का अकारण प्रयोग क्रूरता का परिचायक माना गया है।[३] फिर भी सुरक्षा के लिये शक्ति का संचय अनिवार्य था।[४] अधिक सैन्य शक्ति से युक्त राज्य अपने को शक्तिशाली मानता था। कृति में वानरों और राक्षसों की सेना की संख्या करोड़ों में उल्लिखित है।[५]

वस्तुतः वानर और राक्षस प्रजा तथा सैनिक दोनों ही थे। अतः वे अगणित कहे गये हैं। अयोध्या में सैन्य विभाग पृथक् था, अतः वहाँ की सेना की संख्या लङ्का और किष्किन्धा राज्यों की अपेक्षा कम थी।[६] फिर भी अयोध्या योधाओं से परिपूर्ण थी।[७] रामायणानुसार तत्कालीन अन्य राज्य भी विशाल सैनिक शक्ति से युक्त थे।[८]

रामायण में विशाल सेना के उल्लेख से स्पष्ट है कि तत्कालीन राज्यों में सैन्य शक्ति का विशेष महत्त्व था।

सैनिकों का प्रशिक्षण—

रामायण में सैनिक शिक्षण-विषयक पर्याप्त विवेचन है। अयोध्या में सैनिक शब्दवेधी बाण के संचालन में कुशल, अस्त्र, शस्त्र विद्या में विशारद तथा मल्लयुद्ध करने में दक्ष थे।[९]

रामायण में चतुरङ्गबल के उल्लेख से स्पष्ट है कि तत्कालीन राज्यों में सेना को उनकी योग्यतानुसार विभक्त करके शिक्षण

---

१. वा० रा० ३।९।२६
२. वही ३।९।३, ९
३. वही ३।९।२८
४. वही ३।१०।३,११
५. वही ४।३९।११ आदि; ६।२८।४१; ६।३५।१५
६. वही ७।१६।१२
७. वही १।६।२१
८. वही ७।१५।३; ७।२१।२६
९. वही १।६।२०, २१; १।५।२१

दिया जाता था। सैनिकगण पैदल तथा अश्व, गज एवं रथ पर सवार होकर युद्धकला में निष्णात कराये जाते थे। पैदल सैनिक अस्त्र-शस्त्र के बिना भी नखों, मुष्टि, जानु, पदों, बाहुओं एवं दाँतों से भी युद्ध कला में दक्ष होते थे।[१] वे कुश्ती करने में निपुणता प्राप्त करते थे।[२] वे वृक्ष एवं शिलाओं से भी युद्ध करने में निपुण कराये जाते थे।[३] वे मुद्गर, त्रिशूल, असि और विभिन्न प्रकार के शस्त्रों को चलाने में प्रवीणता प्राप्त करते थे।[४] वे युद्ध में अश्वों से अश्वों को, गज के द्वारा गजों को, सैनिक से सैनिकों को और रथ द्वारा रथों पर प्रहार करने में भी शिक्षित होते थे।[५] सैनिक अपने शत्रु को पकड़ कर मण्डलाकार घुमाकर उसे भयभीत करने में दीक्षित होते थे।[६] वे विभिन्न प्रकार के दाव (पेंतरे) चलाने में चतुर होते थे।[७] वस्तुतः तत्कालीन सैनिकगण युद्ध की समस्त कलाओं में दक्षता प्राप्त करते थे।[८]

रथी सैनिक युद्ध की समस्त कलाओं में दीक्षित होते थे। वे पैदल भी युद्ध कर सकते थे।[९] वे अस्त्रशस्त्र विद्या में पारंगत होते थे।[१०] वे युद्ध में विशारद होते थे।[११] रथारोही न केवल अस्त्र-

---

१. वा० रा० ४।१६।२८; ५।४५।१२; ६।४२।४४
२. वही ६।४०।१३ आदि
३. वही ४।१६।२८; ५।४६।३०
४. वही ५।४६।२८, ३२, ३३; ६।४२।४४
५. वही ६।४६।३७
६. वही ५।४७।३१, ३५
७. वही ५।४८।२८, ३१, ३२; ६।४२।१६
८. वही ५।४७।२६
९. वही ५।४७।३३; ६।६१।४३ आदि
१०. वही ५।४८।२
११. वही ५।४८।३३

शस्त्र आदि की कला में दीक्षित होते थे, अपितु रथ संचालन में भी दीक्षित होते थे।[१]

सैनिक युद्ध से सम्बन्धित माया या छलकपट की शिक्षा भी प्राप्त करते थे। रावण ने माया की शिक्षा रसातल में निवात-कवचों से प्राप्त की थी।[२] इसी प्रकार इन्द्रजीत भी माया में विशारद था।[३]

रामायण कालीन सैनिक न केवल अस्त्र शस्त्र विद्या में ही निष्णात थे, अपितु मशीनों को चलाने में भी निपुण थे।[४]

रामायणानुसार नारियाँ भी सैनिक शिक्षा प्राप्त होती थीं। दशरथ का शरीर युद्ध में जब जर्जरित हो गया था, तो कैकयी ने उन्हें युद्धभूमि से दूर ले जाकर उनके प्राण बचाये थे।[५] लङ्का में स्त्रियों से पहरेदारों का काम लिया जाता था। सीता की पहरेदारनियाँ शस्त्रधारिणी राक्षस-महिलायें (सैनिक) थीं।[६]

सैनिकों के अतिरिक्त अश्वों एवं गजों को सामरिक प्रशिक्षण दिया जाता था। सामरिक अश्व अत्यन्त वेगवान् एवं अनेक प्रकार से मण्डलाकार घूमने में दक्ष होते थे।[७]

सामरिक अश्वों को स्वर्ण के आभूषणों से अलङ्कृत किया जाता था।[८] वे कवच आदि से सुरक्षित रखे जाते थे।[९] अश्वों

---

१. वा० रा० ६।६०।४४
२. वही ७।२३।१६
३. वही ६।८५।८२
४. वही ६।८६।२२
५. वही २।६।१५, १६
६. वही ५।२४।१६
७. वही ५।४७।४, ३१; ६।६१।२६, ३०
८. वही ३।२५।२२; ६।५६।२६
९. वही ३।६४।४७

के अतिरिक्त हाथियों को भी सामरिक प्रशिक्षण दिया जाता था। लङ्का में भी हाथी शत्रु दल के हाथियों को मारने में दक्ष थे।[1] अश्वों को बाँधने वाले (सईस) "अश्वबन्ध" तथा हाथियों के महावत "कुञ्जरग्रह" कहलाते थे।[2] हाथियों के स्वामी हस्त्यध्यक्ष कहलाते थे।[3]

रथ—

रामायण में तीन प्रकार के रथों का उल्लेख है—

(१) औपवाह्य[4] (सवारी के योग्य रथ।)

(२) साँग्रामिक रथ[5] (युद्धक्षेत्र में प्रयुक्त होने वाले रथ।)

(३) पुष्परथ[6] (उत्सवों के समय प्रयुक्त होने वाले रथ)

साँग्रामिक रथ—

साँग्रामिक रथ आयुधों एवं परिच्छद सहित होते थे।[7] ये रथ सुरक्षित होते थे एवं स्वर्णजाल से युक्त होते थे।[8] ये स्वर्ण से अलङ्कृत एवं रत्नजटित ध्वजपताकाओं से सुसज्जित रहते थे।[9] सामरिक रथों में सुवर्ण कवच से सज्जित पिशाचवदन खच्चर जुते रहते थे[10] अथवा ये रथ वेगवान् अश्वों द्वारा सुयोजित होते थे।[11] अथवा इन रथों में तीक्ष्ण दाँतों वाले सिंह भी नियोजित किये जाते थे।[12]

---

१. वा० रा० ५।६।३२
२. वही २।६१।५६
३. वही ६।७५।२६
४. वही २।३६।१०
५. वही ३।६५।६
६. वही २।२६।१५
७. वही ३।६५।६; ५।४७।५,६; ६।५७।२७; ६।७१।२०, २१
८. वही ६।५७।२७
९. वही ५।४७।३, ४; ६।७१।१९
१०. वही ३।६४।४७
११. वही ५।४७।४
१२. वही ५।४८।१९

साँग्रामिक रथों के अग्रभाग में सारथी एवं रथी रहता था। रथ के पृष्ठभाग में आयुध रखे जाते थे। इन रथों में सारथियों एवं अश्वों आदि की संख्या भिन्न भिन्न होती थी।[१]

साँग्रामिक रथ अत्यन्त सुशोभित एवं चमकीले होते थे।[२] इनके चलते समय इनसे मेघ के समान गड़गड़ाहट का शब्द होता था।[३] इन रथों में घण्टियों की ध्वनि भी गूंजती थी।[४]

रथ संचालक या सारथी—

सारथी 'सूत' भी कहलाता था।[५] सारथी राजा का परम हितकारी, हितचिन्तक एवं मित्रवत् होता था।[६] यह मन्त्री भी होता था।[७] सारथी रथ चलाने की कला में प्रवीण होता था। सारथी युद्धस्थल में युद्धकर्ता के हितार्थ उससे सम्बन्धित समस्त बातों का ध्यान रखता था। वह स्थान, समय, शुभाशुभ निमित्त, युद्धकर्ता की चेष्टाओं एवं उसके उत्साह, अनुत्साह, बलाबल, युद्ध-भमि की ऊँचाई, निम्नता, समता, विषमता, युद्ध करने का उपयुक्त समय, शत्रु की निर्बलता, शत्रु के समीप गमन, शत्रु से दूर रहना, स्थिर रहना एवं स्थान से हटना आदि के विषय में ज्ञान रखता था।[८]

सारथी अनेक गुणों से युक्त होता था। वह विनम्र, निर्भीक, बुद्धिमान्, शत्रु के बहकावे में न आने वाला एवं निर्लोभी,

---

१. वा० रा० ५।४७।४; ५।४८।१६; ६।८१।१२, १६
२. वही ५।४७।६; ६।५७।२६; ६।५६।७
३. वही ५।४७।७; ६।५७।२६; ६।७१।१८
४. वही ६।३३।२७
५. वही १।६।१; १।११।१३; ६।१०५।३०; ६।१०६।१, २४, २५
६. वही १ सर्ग ६, १०, ११; ६।१०५।३०
७. वही १।८।४; ६।१०६।१२
८. वही ६।१०६।१८, १६, २०

सचेत रहने वाला एवं स्वामी के प्रति स्नेह रखने वाला तथा कृतज्ञ होता था।[1]

सारथी अपनी योग्यता एवं कृतज्ञता तथा स्वामी के प्रति अनुकूल आचरण करने पर पुरस्कृत होता था।[2] स्पष्ट है कि रामायणानुसार सारथी का युद्धकार्य में महत्त्वपूर्ण योगदान था।

दूत—

रामायणानुसार दूत, मन्त्री या मन्त्री के समकक्ष होता था।[3] वह युद्धकाल में परस्पर राजाओं से सम्बन्ध स्थापित करने का माध्यम था।[4] यह अपना मत न प्रकट करने वाला एवं यथोक्तवादी या अनुक्तवादी होता था।[5]

दूत 'राजनयज्ञ' होता था। यह शत्रु के बलाबल के विषय में सम्पूर्ण सूचना प्राप्त करके सम्बन्धित राजा को तद्विषयक ज्ञान कराता था।[6] दूत युद्धकालीन समय में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की स्थापना करने वाला एवं सन्धिविग्रहक होता था। दो देशों के परस्पर विरोध को दूर करने के लिये एवं शान्ति की स्थापना के लिये दूत के माध्यम से कार्य कराया जाता था।[7]

दूत अवध्य होता था।[8] रामायण में दूत को मृत्यु दण्ड के अतिरिक्त अन्य दण्ड—अङ्ग-भङ्ग, वेत लगवान, सिर मुडाना आदि का विधान है।[9] यद्यपि रामायण में दूत के लिये मृत्यु दण्ड का

१. वा० रा० ६।१०६।१०, ११
२. वही ६।१०६।२७
३. वही ५।३४।३६; ५।३५।५२, ७२; ६।४१।५६, ७६
४. वही ५।३५।५२, ७२; ६।२०।१, ६, १७ आदि; ६।४१।५६, ७६
५. वही २।१००।३६; ६।२०।१६
६. वही ६।३।७ आदि
७. वही ५।५०।१६; ५।५१।१ आदि; ६।२०।७, ८, ६; ६।४१।५६
८. वा० रा० ५।५२।१३; ५।५३।२
९. वही ५।५२।१५

विधान न था, तथापि कृति में दूत के बध का भी उल्लेख है।[१]

सन्धिविग्रहक होने के नाते 'दूत' सैनिक संगठन का महत्त्वपूर्ण अङ्ग था।

दूत के गुण एवं विशेषताओं के विषय में 'अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध' शीर्षक में उल्लेख किया गया है।

गुप्तचर—

रामायण में गुप्तचर को चर, चार, चारक आदि कहा गया है। दूत के समान गुप्तचर भी मन्त्री या मन्त्री के समकक्ष होता था।[२] इन्हें गुप्त रूप से कार्य करना पड़ता था।[३]

रामायण में गुप्तचर विभाग कार्यशील एवं सुचारु रूप से व्यवस्थित था। यह सैनिक संगठन का आवश्यक अङ्ग था। राजागण चरों के माध्यम से शत्रुओं की गतिविधियों से अवगत होते थे।[४] सूर्पनखा ने राज्य में गुप्तचर व्यवस्था को क्रियाशील रखने की आवश्यकता का निरूपण किया था। गुप्तचर राजा को दीर्घचक्षु प्रदान करने वाले कहे गये हैं।[५] रामायणानुसार गुप्तचर दो प्रकार के कहे गये हैं। प्रथम 'नागरिक गुप्तचर।'[६] तथा दूसरे सैनिक गुप्तचर।[७]

सैनिक गुप्तचर शत्रु सेना के बलाबल को जानने के लिये काम आते थे शत्रु राजा की सुरक्षा एवं दुर्ग आदि के विषय में चरों के माध्यम से ही जाना जाता था। रावण और राम ने एक दूसरे की

१. वा० रा० ७।१३।४१
२. वही ६।२५।१, १४
३. वही ५।२।४६; ६ सर्ग २४, २५, २६
४. वही १।७।७
५. वही ३।३३।१०
६. वही १।७।७ २।१००।३७; ७।४३।४ आदि
७. वही ५।४।१५; ६।२०।१; ६।२५।१, १३, १४

सेना एवं सुरक्षा सम्बन्धी साधनों को जानने के लिये चरों द्वारा जासूसी का कार्य कराया था।[1]

रामायण में गुप्तचर अनेकगुणों से युक्त कहे गये हैं। वे साहसी, विश्वासी, शान्त, धैर्यवान्, स्वामी के प्रति भक्तिसम्पन्न तथा निर्भीक होते थे।[2]

गुप्तचरों के प्रति शत्रु का व्यवहार—

गुप्तचर जब शत्रु द्वारा गृहीत होते थे, तो उनको अनेक यातनायें दी जाती थी। उनके लिये मृत्युदण्ड देने का भी नियम था।[3] गुप्तचर अपने को दूत बताकर मुक्ति पा लेते थे। हनुमान् ने लङ्का में अपने को दूत कहा था एवं प्राणदण्ड से मुक्ति पाई थी।[4] जबकि हनुमान् ने लङ्का में गुप्तचर के रूप में ही प्रवेश किया था।[5] शुक और सारन (गुप्तचरों) ने भी अपने को रावण दूत कह कर शत्रु से मुक्ति पाई थी एवं राम का सन्देश रावण तक ले गये थे।[6]

निष्कर्षत: रामायणानुसार गुप्तचर सैनिक संगठन का महत्त्वपूर्ण अङ्ग था।

शिविर नियन्ता—

सेना का एक अङ्ग शिविर नियन्ता या प्रशास्ता था।[7] शिविर नियन्ता के आधीन मार्गदर्शन, मार्ग में सेना की सुविधा करना एवं खाद्य व्यवस्था करना तथा शिविर की व्यवस्था करना था।[8]

१. वा० रा० ६।२५।१ आदि; ६।२९।१७; ६।३७।७ आदि
२. वही ६।२९।१७
३. वही ६।२९।२७. २८, २९
४. वही ५।५०।१९; ५।५३।२
५. वही ५।२।४९
६. वही ६।२५।१६, २०, २२
७. वही २।९१।३९
८. वही ६।४।११, १२, १३, ३६, १०४; ६।५।१; ७।६४।३, १४

इसके अधीन शिल्पीगण, रक्षक, दुर्गविचारक, भूमिप्रवेशक, सूत्र-कर्मविशारद, खनक, यन्त्रक, कर्मान्तिक, यन्त्रकोविद, वर्धक, मार्गिन्, वंशकर्मकृत, दृष्टा एवं विविधकर्म कोविद रहते थे।[1] लङ्का में यान करते समय 'नील' ने मार्ग निर्देशन का कार्य किया था।[2] अस्तु सैनिक संगठन में शिविर नियन्ता या प्रशास्ता की स्थिति अपरिहार्य थी।

सैनिक अनुशासन—

रामायणानुसार सैनिक अनुशासन कठोर एवं पालनीय था। सुग्रीव ने अपने सेनाध्यक्ष को आज्ञा दी थी कि वे अपने सेनापतियों को चेतावनी दें, कि समस्त सैनिक शीघ्र एकत्रित हों। जो सैनिक १० दिन के अन्दर उपस्थित होने की सूचना न देगा, वह विना किसी हिचकिचाहट के मृत्यु दण्ड प्राप्त करेगा।[3]

लङ्का में युद्ध के समय भी सुग्रीव ने अपने सैनिकों को यह चेतावनी दी थी कि राजाज्ञा की अवहेलना करने वाले सैनिक को मृत्यु दण्ड दिया जावेगा।[4] इसी प्रकार सीता की खोज के लिये जब अङ्गद आदि गये थे, तो अङ्गद ने स्पष्ट कहा था कि अवधि समाप्त होने पर यदि सीता का पता लगाये बिना हम वापिस लौटेंगे, तो मृत्यु दण्ड प्राप्त होगा।[5] इस प्रकार रामायणानुसार सैनिक-अनुशासन कठोर था।

"यान" (युद्ध के लिये गमन) करते समय भी सैनिकों को अनुशासन में रहने के लिए आदेश दिए जाते थे। लंका की ओर यान करते समय सैनिकों को आदेश दिया गया था कि वे मार्ग के

---

१. वा० रा० २।७९।१३; २।८०।१, २, ३, ५
२. वही ६।४।१०
३. वही ४।३७।१०, ११, १२
४. वही ६।७५।४२
५. वही ४।५३।२५, २७, २८

ग्रामों और नगर में किसी प्रकार का विघ्न उत्पन्न न करें।[1] इसी प्रकार शत्रुघ्न द्वारा भी सेना-मुख्यों को आदेश दिया गया था कि वे मार्गों में किसी को बाधा न पहुँचावें।[2]

राक्षसों में भी सैनिक अनुशासन कठोर था। हनुमान् ने लंका में गढ़ की रक्षार्थ सावधान सैनिकों को देखा था।[3] इससे स्पष्ट है कि वहाँ पर सैनिकों में सावधानी अपेक्षित थी। योधाओं को सावधान रखने के लिए एवं शिविरों की निगरानी के लिए पहरेदारों की नियुक्ति रहती थी।[4]

सेना के कार्य भी अनुशासनात्मक होते थे। सेना को कार्यान्विति हेतु यथोचित रूप से विभक्त किया जाता था। सीता की खोज के लिए सुग्रीव ने भिन्न-भिन्न यूथपतियों को उनकी टोली के सहित भिन्न-भिन्न दिशाओं में भेजा था।[5] इसी प्रकार से मोर्चे पर भी सेना का विभाजन करके उन्हें अनुशासन में रखा जाता था। राम और रावण ने अपनी सेना को विभक्त करके उन्हें विभिन्न मोर्चों पर स्थापित किया था एवं अपने स्थान पर यथादेशानुसार कार्य करने में तत्पर रहने का आदेश दिया था।[6]

इस प्रकार रामायणानुसार तत्कालीन राज्यों में सेना राजा के आदेशानुसार अनुशासन में रहकर कार्यों को करने में तत्पर रहती थी। स्वामी के प्रति स्वामिभक्ति का प्रदर्शन सैनिकों का कर्तव्य था।

सैनिकों को सुविधायें—

रामायण में राजा द्वारा अपनी सेना को प्रसन्न रखने के लिये

१. वा० रा० ६।४।३९
२. वही ७।६४।१४
३. वही ५।४।१४, २३
४. वही ६।४।१०५
५. वही ४।४५।४, ५, ६, ७
६. वही ६।३६।१८ आदि; ६।३७।२६ आदि

उल्लेख है।[1] तत्कालीन राज्यों में सैनिकों की समस्त सुविधाओं का ध्यान रखा जाता था। उनके आवास, भोजन, वेतन, उपहार आदि के विषय में राजा सचेत रहता था। सेना को सभी प्रकार के खाद्य पदार्थ एवं सुरा तथा मनोरञ्जन की वस्तुयें प्रदान की जाती थी। महर्षि भरद्वाज द्वारा भरत के सैनिकों को दी गई सुविधाओं से तत्कालीन सैनिकों की सुविधाओं के विषय में परिज्ञान हो जाता है।[2] उस समय सैनिकों को उनके आराम एवं विलास की समस्त सुविधायें प्रदत्त थी सैनिकों को सुरापान की पूर्ण सुविधा दी जाती थी। महर्षि भरद्वाज एवं वसिष्ठ ने क्रमशः भरत और विश्वामित्र के सैनिकों को सुरापान की सुविधा प्रदान की थी।[3] रावण के सैनिकों को भी सुरापान की पूर्ण सुविधा थी।[4] अशोक वन में सैनिक स्त्रियाँ सुरापान करतीं थीं।[5] सैनिक गण युद्ध के पूर्व अपने को शक्ति देने के लिये सुरापान करते थे।[6]

सैनिकों के लिये सुन्दर वस्त्रों की भी व्यवस्था होती थी। रामायण में सैनिकों को 'विचित्र वासाः'' कहा गया है।[7] वे आभूषणों से भी सज्जित रहते थे।[8]

सैनिकों के आवास के विषय में भी रामायण में उल्लेख है। उनके घर विलासता की सामग्री से परिपूर्ण थे। उनके घर बहुमूल्य हीरों, जवाहरात, मोती और मूँगों से अलङ्कृत रहते थे एवं विचित्र वस्त्रों से युक्त होते थे। उनके आवासों में अश्वों और गजों

---

१. वा० रा० ७।६४।५
२. वही २।९१।२८, ५२, ६१ आदि
३. वही १।५३।२; २।९१।१५, ५९
४. वही ६।७५।१४
५. वही ५।१७।१६; ५।२४।४५, ४७
६. वही ६।६०।९२
७. वही ६।५३।६
८. वही ५।४७।१२; ६।..३।६; ६।६५।२६ आदि

के लिये आभूषण रहते थे एवं विभिन्न प्रकार के अस्त्र शस्त्र आदि भी रहते थे।[1]

रामायण में सैनिकों को नियत समय पर वेदन देने पर विशेष बल दिया गया है। राम ने भरत एवं शत्रुघ्न को सैनिकों के लिये समय पर वेतन देने का आदेश दिया था।[2] सैनिकों को समय पर वेतन न दिये जाने पर उनकी असन्तुष्टि अनर्थ का कारण कही गई है।[3]

विजयोपरान्त सैनिकों को मूल्यवान् वस्तुयें प्रदान की जाती थीं। लंका विजय के पश्चात् राम ने विभीषण से वानर-सैनिकों को रत्न आदि द्रव्य देने के लिये कहा था[4] एवं सैनिकों को दान आदि से प्रसन्न रखने का निर्देश दिया था।[5]

सैन्य व्यवस्था में वेश्यायें अभिन्न अंग होती थी। ये वाराङ्गनायें सैनिक अभियान का अनिवार्य अंग हुआ करती थीं। राजा दशरथ ने सुमंत्र (मन्त्री) को आदेश दिया था कि राम के साथ वन में एक चतुरङ्गिणी सेना भेजने की व्यवस्था की जाये, जिसमें मधुरभाषिणी वेश्यायें हों।[6] महर्षि भरद्वाज ने भरत के सैनिकों के मनोरञ्जनार्थ अनेक वेश्याओं की सुविधा प्रदान की थी।[7]

स्पष्ट है कि तत्कालीन राज्यों में सेना को प्रशंसायुक्त वाक्यों, दान आदि तथा समय पर वेतन देकर सन्तुष्ट रखा जाता था।

सैनिक और उनका विवाह—

विवाह से सैनिक के लड़ने में स्थायित्व आता है। वे विवाहित

१. वा० रा० ५।४।६ आदि; ४।३३।६ आदि; ६।७५।७ आदि
२. वही २।१००।३३; ७।६४।५
३. वही २।१००।३४; ६।१२५।१०
४. वही ६।१२५।४
५. वही ६।१२५।६, ७
६. वही २।३६।३
७. वही २।६१।१८, ४२, ४३, ४४, ४६, ५२, ५३

होने पर केवल राजा या देश के लिए ही नहीं लड़ते, अपितु अपने गृह तथा गृहणी के लिए भी लड़ते हैं। विवाह से सैनिकों में राष्ट्रीय भावना का भी उदय होता है।

अयोध्या, किष्किन्धा एवं लंका में सैनिक विवाहित होते थे[1] एवं सैनिकों का विवाहित होना राष्ट्रीय हित में था।

इस प्रकार रामायणकालीन राज्यों में शासन सैनिकों के कर्तव्यों एवं अधिकारों के प्रति सचेत रहता था।

अस्त्र, शस्त्र—

रामायण काल में विभिन्न अस्त्र, शस्त्र एवं आयुधों तथा यन्त्रों और तोपों का प्रचलन था। आर्य राजा एवं सैनिक प्रमुख रूप से धनुष बाण का प्रयोग करते थे। उनके द्वारा यन्त्रों एवं तोपों तथा अन्य आयुधों का भी प्रयोग किया जाता था।[2]

वानरों के प्रमुख आयुध नख और दन्त थे।[3] वे वृक्ष और शिलाओं का भी आयुधों के रूप में प्रयोग करते थे।[4]

राक्षसों के आयुध धनुष, बाण, शूल, मुद्गर, शक्ति, असि, परशु, परिघ, वृक्ष, तथा गदा आदि थे।[5] वे इषूपल (बाण और पत्थरों की वर्षा करने वाला यन्त्र) और शतघ्नियों का भी प्रयोग करते थे[6]

वाल्मीकि रामायण में उल्लिखित अस्त्र शस्त्रों के नाम "वाल्मीकि रामायण कोश" में इस प्रकार गिनाए गए हैं—

---

१. वा० रा० २।८२।२५; ४।५३।२६; ६।६६।२०; ६।७५।१५
२. वही १।५।१०, ११, २०, २१; २।१००।४६, ४७, ४८; ७।१६।१८, २०
३. वही ५।३६।२५; ६।४१।४५; ६।४४।७; ७।१६।१८
४. वही ४।१६।२३, २८; ६।५२।२, ७
५. वही ५।४।१६ से २२; ६।१००।३२, ४१ से ४५; ६।१०१।३
६. वही ५।२।२१; ५।४।१७; ६।३।१२

अञ्जलिक, अलक्ष्य, अवाङ्मुख, अशनि, आग्नेयास्त्र, शिखरास्त्र, आवरण, ऐन्द्र-चक्र, कंकाल, कपाल, कर्णि, कामरुचि, कामरूप, कार्मुक, कालचक्र, कालपाश, क्रौञ्चास्त्र, क्षुर, खड्ग, गदा, जृम्भल, तामस, तेजप्रभ, तोमर, त्रिशूल, दण्ड, दण्डचक्र, दशशीर्ष, दारुण, दृढ़नाभ, दैत्यनाशक, धनुष, धर्मपाश, पन्थान, परवीर, पराङ्मुख, पत्थि, परशु, पाशुपत, पिनाक, प्रशमन, प्रास, ब्रह्मशिरस, ब्रह्मास्त्र, भगास्त्र, भिन्दिपाल, मल्ल, मकर, मन्थन. महानाभ, गादन, मानवास्त्र, मायामय, मुद्गर, मुसल, मोह, मोहन, मोहनास्त्र, मौसल, रति, रभस, रौद्र, वज्रास्त्र, वत्सदन्त, वायव्यास्त्र, वारुणपाश, विवर्णि, विधृत, विनिद्र, विलापन, विष्णुचक्र, शतघ्नि, शतवक्त्र, शतोदर, शल्य, शिलीमुख, शीतेषु, शुचिबाहु, शूल, शोषण, संतापन. संवर्त, सत्यकीर्ति, सत्यवान, सर्पनाथ, सार्चिमाली, सिंहदंष्ट्र, सुनाभ, सौमनस, सौम्य, स्वनाम तथा हयशिरस[1] आदि।

रामायण में विभिन्न प्रकार के बाणों का उल्लेख है। कृति में अग्निदीप्तमुख, अन्जलिक, अर्धनाराच, अर्धचन्द्र, मल्ल, चन्द्रवक्र, आशीविशासन, आशुग, धूमकेतुमुख, ग्रहवक्त्र, ग्रहमुख, ईहामृगमुख, काकमुख, कंकमुख, कंकपत्रिन्, क्षरमुख, क्षुर, क्षुरप्र, कुक्कुटवक्त्र, लेलिहान, मकरानन, मार्गन, नक्षत्रवत, नाराच, प्रसन्नाग, पञ्चास्य, सिंहमुख, शृगालवदन, सूर्यमुख, श्वानवक्त्र, श्येनमुख, उल्कामुख, वराहमुख, वत्सदन्त, विद्युज्जिह्वोपम, व्यादितास्त्र, व्याघ्रमुख आदि अनेक प्रकार के बाण कहे गये हैं।[2]

सुरक्षात्मक-आयुध—

रामायण में उपर्युक्त अस्त्रशस्त्रों के अतिरिक्त शरीर के त्राणार्थ अंगुलित्राण, शिरस्त्राण, मर्मत्राण, तनुत्राण, वर्म या कवच तथा

---

१. वाल्मीकि-रामायण कोष, परिशिष्ट ३, पृ० ४२९, ४३०, ४३१

२. वा० रा० ६।४५।२३; ६।१००।४० से ४६

ढालों का उल्लेख है।[१] रामायण में युद्ध में काम आने वाले अश्वों एवं गजों की सुरक्षा के लिये भी कवचादि का उल्लेख है।[२] आयुधों को रखने की व्यवस्था के लिये आयुधागारों का भी रामायण में उल्लेख किया गया है।[३]

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि रामायणकालीन राज्यों में अनेक अस्त्रशस्त्रों, यन्त्रों तथा सुरक्षात्मक आयुधों का प्रचलन था।

मित्र—

राज्य के सप्ताङ्गों में मित्र का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। रामायणानुसार शत्रु पर विजय प्राप्ति के लिये एवं अभीष्ट की सिद्धि के लिये,[४] राष्ट्र की रक्षा तथा उसकी समृद्धि के लिये[५] राजाओं को मित्र की आवश्यकता होती थी। मित्र मुख्य रूप से दो प्रकार के कहे गये हैं—(१) महान् मित्र (२) अद्वैध्य मित्र। बड़े प्रयत्न से सहायता करने वाला महान् मित्र होता है। अद्वैध्य मित्र वह है जो मित्र के साथ समान सुख दुःख का अनुभव करे, मित्र का सदा उपकार करता रहे, कभी भी अपने मन में मैल न आने दे और विपत्ति आने पर दुविधा में न पड़े।[६] रामायणानुसार राम और सुग्रीव की मैत्री महान् और अद्वैध्य दोनों प्रकार की थी।

रामायणानुसार तत्कालीन राज्यों में राजागण परस्पर मैत्री सम्बन्धों को स्थापित करने में तत्पर रहते थे।[७] दशरथ, रावण,

---

१. वही १।२२।८; २।३१।२८; २।६१।७६; २।६६।२२; ५।१।२४; ५।४।१८; ६।५३। ; ६।७१।६८; ६।७५।१०; ६।६१।२१ आदि
२. वही ३।६४।४७; ६।७५।६, १०
३. वही २।१००।५४; ५।३।१८
४. वा० रा० ३।७२।१४, १५; ४।३।४०; ४।५।११
५ वही ३।७२।१४; ७।१००।१२
६. वही कौटिलीय अर्थशास्त्र ७।६
७. वा० रा० १।११।३; ४।४।१८; ४।५।७, ११, १२; ४।१८।२७; ५।३६।१८; ७।२५।४५, ४८; ५०; ७।३३।१८; ७।३४।४०

राम आदि राजाओं के अनेक राजाओं से मैत्री सम्बन्ध थे।[1]

मित्र के प्रति व्यवहार—

रामायणानुसार मित्र राजा के द्वारा मित्र के प्रति साम और दाम नीतियों से व्यवहार किया जाता था।[2]

मित्र का कर्त्तव्य —

रामायणानुसार मित्र को मित्र के प्रति आदरभाव रखना अपेक्षित था।[3] मित्रता को निभाना या उपकार करना,[4] अनुचित कार्य करने से रोकना,[5] मित्र द्वारा कही गई हित की बात को ग्रहन करना[6] आदि मित्र के कर्तव्य थे।

कृति में मित्र के प्रति मित्रों द्वारा यथोचित तरीके से एवं समय पर कार्य पालन के निर्देश थे।[7] मित्र के साथ साधु वर्ताव करने वाला राजा राज्य, कीर्ति और प्रताप की वृद्धि करने वाला एवं महद् राज्य का उपभोग करने वाला कहा गया है।[8] स्वयं कृतार्थ होने पर मित्र के प्रति कर्तव्य का पालन न करने वाले मित्र कृतघ्न कहे गये हैं।[9]

वस्तुतः मित्र विजयाभिलाषी राजा के साथ मित्रता के सूत्र में सम्बद्ध रहकर उसका सहायक होता था तथा शान्ति और संकट दोनों ही समयों में उसकी सहायता करता था।

---

१. वा० रा० १।७।२१; २।१।४५; २।५०।३२; ६।१२।६; ७।९१।१२; ७।९२।४, ६
२. वही ५।३६।१७
३. वही ५।३६।१८
४. वही ४।१८।३१
५. वही २।३८।३३
६. वही ६।१६।२७
७. वही ४।२९।१२, १३, १४
८. वही ४।२९।१०, ११
९. वही ४।३०।७३

दुर्ग—

रामायणानुसार तत्कालीन राज्य की सुरक्षा का सेना के अतिरिक्त दूसरा साधन दुर्ग व्यवस्था थी। रामायण में राज्य की राजधानी या प्रमुख नगर ही दुर्ग कहे गये हैं।[1] वस्तुतः ये प्रधान नगर या राजधानी जलदुर्ग, वनदुर्ग, परिघा एवं परकोटे आदि दुर्गों से आवृत रहते थे।

रामायण में अयोध्या, किष्किन्धा और लङ्का के दुर्गों का विस्तृत वर्णन है। रामायण में चार प्रकार के दुर्ग कहे गये हैं—(१) नादेय दुर्ग (नदी या समुद्र से आवृत दुर्ग), (२) पार्वत दुर्ग (पर्वत या पहाड़ियों से घिरा हुआ दुर्ग), (३) वन्य दुर्ग (जंगलों से घिरा हुआ दुर्ग), (४) कृत्रिम दुर्ग (परकोटा)[2]

कृत्रिम दुर्ग में विशाल द्वार होते थे। इन द्वारों में दृढ़ कपाट (फाटक) संलग्न रहते थे। कपाटों को बन्द करने के लिये बड़े-बड़े परिघ होते थे।[3] द्वारों पर रक्षार्थ यन्त्रों का प्रवन्ध रहता था[4] एवं योधागण भी द्वारों पर रक्षार्थ नियुक्त किये जाते थे।[5] ये दुर्ग शत्रु को फँसाने वाले जालों से युक्त होते थे।[6] ये प्राकार या परकोटे शत्रु द्वारा दुर्धर्ष होते थे।[7]

कृत्रिम दुर्ग या प्राकार के चारों ओर भयावह, अगाध, जलयुक्त परिखा रहती थी।[8] इन जलयुक्त परिखाओं में 'मगर' और मत्स्य रहते थे।[9] परिखा या खाई पर पुल बने रहते थे जिन पर यन्त्र

१. वा० रा० २।७६।१२
२. वही १।५।१०, १३; ६।३।२०; ६।२८।३०
३. वही १।५।१०; ६।३।११
४. वही ६।३।१२, १३
५. वही ६।३।१२
६. वही ४।१४।५
७. वही १।५।१३; ६।३।१४
८. वा० रा० १।५।१३; ६।३।१५
९. वही ६।३।१५

संलग्न रहते थे। इन यन्त्रों के संचालन से खाई में चारों ओर से जल की वृद्धि हो जाती थी एवं शत्रु सैन्य उन्हें पार करने में असमर्थ रहती थी।[1] इस प्रकार दुर्गम होने के कारण दुर्ग शत्रुओं द्वारा दुर्जेय होते थे।

प्रधान नगर में निर्मित दुर्गों में सभी प्रकार की सुविधायें रहती थी। दुर्गों या किलों को धन्य धान्य, आयुधों, जल एवं जलयन्त्रों, शिल्पियों और धनुर्धर योद्धाओं से युक्त रखा जाता था।[2]

रामायणानुसार दुर्गों में कूटागार एवं चैत्य भी निर्मित होते थे।[3] ये कूटागार और चैत्य सुरक्षार्थ होते थे।

इस प्रकार रामायणानुसार तत्कालीन राज्यों में दुर्ग दुर्घर्ष तथा अजेय होते थे तथा सुरक्षात्मक सुविधाओं से युक्त होते थे।

युद्ध—

रामायण में युद्ध के लिये युद्ध के अतिरिक्त[4] संयुग, रण, संग्राम, संख्य, आहव, समिति आदि का प्रयोग है।[5]

रामायणानुसार युद्ध अच्छा न समझा जाता था।[6] दूसरों को युद्ध द्वारा पीड़ित करने वाला राजा दुराचारी कहा गया है।[7] लेकिन सुरक्षा के लिये युद्ध आवश्यक था।[8] राजा लोग यश एवं सार्वभौमिकता की प्राप्ति के लिये भी युद्ध करते थे।[9] लेकिन

---

१. वा० रा० ६।३।१६, १७
२. वही २।१००।५४
३. वही १।५।१५; ५।६।१४; ५।४३।१२
४. वही ६।४३।५
५. वही ३।६।६; ३।३१।४६, ४७; ६।१३।१८; ६।५६।३; ६।८५।११,१२
६. वही ३।३८।२३, ३२, ३३; ७।२०।७ से १०
७. वही १।५४।२७
८. वही ३।७१।१८; ७।१५।२
९. वही ७।१४ आदि; ७।१६।१, २ आदि

युद्ध सम्बन्धी स्वेच्छाचारिता निन्दनीय थी।[1] रामायणानुसार धर्म युद्ध ही उचित माना गया है।[2]

प्रजा की रक्षा, लोक रक्षा तथा राज्य की रक्षा के लिये एवं अत्याचारों के दमन के लिये किये गये युद्ध वैध या उचित समझे जाते थे। रामायण में प्रमुख रूप से राम और रावण का जो युद्ध दिखाया गया है, वह न तो देवों और दानवों का युद्ध था और न राक्षसों के साथ मनुष्यों का युद्ध था, अपितु वह सत्य तथा असत्य का युद्ध था, धर्म और अधर्म का युद्ध था। राम का धर्मयुद्ध और रावण का अधर्म युद्ध था।

युद्ध के तीन प्रकार कहे गये हैं—(१) दैविक (२) आसुर (३) मानव।[3] रामायण में युद्ध के यह तीनों प्रकार मिलते हैं।

दैविक युद्ध—

यह युद्ध मन्त्र प्रेरित बाणों द्वारा होता था। इसे मान्त्रिक युद्ध भी कहते हैं। राम द्वारा मन्त्र प्रेरित बाण इसी के प्रमाण हैं।

आसुर युद्ध—

अग्नि-अस्त्रों का प्रयोग आसुर युद्ध है। रामायण में अग्नि बाणों का उल्लेख है।

मानव युद्ध—

मानव युद्ध के दोनों प्रकारों—शस्त्र युद्ध एवं बाहुक युद्ध का उल्लेख भी रामायण में है।

उपर्युक्त तीनों प्रकारों के युद्धों के अतिरिक्त रामायण में कूट-युद्ध का भी वर्णन है।

युद्ध के कारण—

रामायण में युद्ध के विभिन्न कारण निर्दिष्ट है, जो निम्न-लिखित हैं—

---

१. वा० रा० ५।१७।३०

२. वही ३ सर्ग ६, १०

३. शुक्र की राजनीति, पृ० २१४

स्त्री के अपहरण से उसकी मुक्ति के हेतु युद्ध—यथा राम और रावण का युद्ध। प्रतिद्वन्द्वियों से युद्ध—जैसे क्षत्रिय द्वारा परशुराम के पिता की हत्या किए जाने पर परशराम द्वारा क्षत्रियों से युद्ध।[1] स्त्री के लिये युद्ध—जैसे सीता को विवाहित करने में असमर्थ राजाओं का राजा जनक से युद्ध,[2] स्त्री के कारण युद्ध—यथा मायावी राक्षस और वालि का युद्ध।[3] अकारण बन्धु को दण्डित करने के कारण युद्ध - जैसे सुग्रीव एवं वालि का युद्ध।[4] सम्प्रभुता को बनाने के लिये युद्ध—जैसे रावण की दिग्विजय।[5] अत्याचारी को नष्ट करने के लिये युद्ध—जैसे मारीच ताड़का आदि से राम का युद्ध[6] एवं वसिष्ठ का विश्वामित्र से साथ युद्ध।[7] मित्र की सहायता के लिए युद्ध—जैसे सुग्रीव की सहायतार्थ राम का वालि से युद्ध।[8] भूमि स्वर्ग आदि के लिये युद्ध।[9] राज्य के विस्तार के लिये युद्ध।[10] कुशासकों को दण्डित करने के लिये युद्ध।[11] शरणागत की रक्षा के लिये युद्ध—जैसे विभीषण की रक्षार्थ राम का रावण के साथ युद्ध। रामायणानुसार तत्कालीन राज्यों में उपर्युक्त युद्ध के कारण थे। युद्ध के उपर्युक्त कारण उपस्थित होने पर एकाएक युद्ध प्रारम्भ नहीं किया जाता था। सर्वप्रथम शान्तिपूर्ण ढंग से ही समस्या का समाधान करने का प्रयत्न किया जाता था। साम, दाम और भेद के द्वारा समस्या का समाधान न होने पर युद्ध का आश्रय लिया जाता था।[12]

---

१. वा० रा० १।७४।२३
२. वा० रा० १।६६।२१; १।७०।१७, १८
३. वही ४।६।५
४. वही ४ सर्ग १६
५. वही ७ सर्ग १४ आदि
६. वही १ सर्ग २६ एवं ३०
७ वही १।५४, ५६
८. वही ४।१८। २७, ३१
९. वही ४।१७।२६
१०. वही ७ सर्ग १००, १०१, १०२
११. वही ७।६१।१७, १८; ७।६८।१०; ७।६९।३२ से ३५
१२. वही ६।९।८

युद्ध का समय—

युद्ध के लिये वर्षाकाल मार्गों की असुविधा के कारण उचित न माना जाता था। अतः रामायणानुसार इस समय में युद्ध यात्रा नहीं होती थी।[१] शरद काल में युद्ध यात्रा प्रारम्भ की जाती थी।[२] परस्पर शत्रु एवं विजयाभिलाषी राजाओं की युद्ध यात्रा कि उद्योग का समय यही माना गया है।[३] आवश्यकता पड़ने पर ही अन्य ऋतुओं में युद्ध की यात्रा आरम्भ की जाती थी। शत्रुघ्न ने लवणासुर पर वर्षा ऋतु में ही आक्रमण करने के लिये युद्ध यात्रा प्रारम्भ की थी।[४] युद्ध के लिये शुभ मुहूर्त पर भी ध्यान दिया जाता था।[५]

युद्ध के लिये यान एवं शिविर की व्यवस्था—

युद्ध के लिये यान करते समय सेनापतियों को मार्ग आदि की व्यवस्था के लिये निर्देश दिये जाते थे[६] एवं तदनुसार मार्गों का शोधन एवं उनकी सेना के लिये सुविधाओं का प्रबन्ध किया जाता था।[७] सेनापति ही मार्ग की व्यवस्था के लिये उत्तरदायी होते थे।

युद्ध हेतु प्रयाण करते समय मार्ग में मिलने वाले नगर और ग्रामों को बचाते हुए एवं किसी को क्षति न पहुँचाते हुए चलने के निर्देश सेना को दिये जाते थे।[८] मार्गों में शिवरों की सम्यक् व्यवस्था का प्रबन्ध किया जाता था।[९] शिवरों की व्यवस्था के लिये

---

१. वा० रा० ४।२६।१३, १४; ४।२८।१५
२. वही ४।२६।१६; ४।३०।३८, ६२
३. वही ४।३०।६२
४. वही ७।६४।१०, ११
५. वही ६।३।३४; ६।४।३, ४, ६
६. वही २।८२।२६ आदि; ६।४।१०, ११; ७।६४।१३ आदि
७. वही २ सर्ग ८०; २।८२।२०
८. वही ६।४।३६; ७।६४।१४
९. वा० रा० २।८३।२६; ७।६।१४

प्रशास्ता या शिविरनियन्ता होते थे।[1] शिवरों को छोड़ते समय उन्हें जला दिया जाता था, जिससे शत्रु उन शिवरों का उपयोग न कर सके। यान के समय मार्ग में सेना के खाने पीने की व्यवस्था के प्रबन्ध का ध्यान रखा जाता था।[2] यह भी ध्यान रखा जाता था कि मार्ग में प्राप्त पीने का पानी दूषित एवं विषाक्त न होने पाये।[3] मार्ग में शत्रुओं से सावधानी बरती जाती थी।[4] युद्ध के लिये प्रयाण करते समय सेना को व्यवस्थित रखा जाता था। सेना के अग्र, पार्श्व, मध्य तथा कुक्षि या पृष्ठ भाग में उसे उत्साहित करने के लिये एवं उसकी रक्षार्थ "प्रधान" नेतृत्व करते थे।[5] यान करते समय नदी या समुद्र को पार करने के लिये सम्यक् व्यवस्था की जाती थी।[6]

अभीष्ट स्थान पर पहुँच कर सेना के ठहरने का प्रबन्ध किया जाता था,[7] एवं शिविर की व्यवस्था की जाती थी। शिविर की व्यवस्था सुचारु रूपेण होती थी। सेना के लिये कड़ा पहरा रहता था।[8] सेना की सुरक्षा एवं सैनिकों को सावधान रखने के लिये विधिवत् प्रबन्ध किया जाता था।[9] सेना की रक्षार्थ पहरेदार रहते थे।[10] सेना को विभाजित करके व्यूहों में रखकर ठहराया जाता था।[11] शिविर से बाहर जाने के लिये सैनिकों को अनुमति लेनी पड़ती थी।[12]

---

१. वा० रा० २।६१।३६
२. वही ६।४।१२, १३
३. वही ६।४।१२
४. वही ६।४।१२, १३
५. वही ६।४।१६ से २१
६. वही २।८६।१० आदि; ६।२२।५२ आदि
७. वही ६।४।१०२
८. वही ६।४।१०५
९. वही ६।५।१, २
१०. वही ६।५।२
११. वही ६।२३।२
१२. वही ६।३६।१४

युद्ध की तयारी—

रामायणानुसार युद्ध प्रारम्भ करने के पूर्व राजाओं द्वारा सम्यक् रूप से विचार कर लिया जाता था। राजागण युद्ध के सम्बन्ध में मन्त्रियों एवं सभा के सदस्यों से परामर्श लेते थे[1] एवं निर्णयानुसार कार्य करने का निश्चय करते थे।[2] युद्ध का निश्चय करने के पश्चात् सेना को व्यवस्थित एवं व्यूहाकार रूप से विभाजित किया जाता था और विभक्त सेना के अलग अलग सेनापति नियुक्त कर दिये जाते थे।[3] सैनिक युद्ध करने के लिये आज्ञा की प्रतीक्षा करते थे।[4]

इस समय राजागण परस्पर शत्रु के बलाबल एवं सैन्यशक्ति को जानने के लिये गुप्तचर नियुक्त करते थे।[5] राजाओं द्वारा दूत के माध्यम से युद्ध के निराकरण का भी प्रयत्न किया जाता था एवं शत्रुराजा के प्रति भेद नीति भी अपनाई जाती थी।[6]

साम, दाम और भेद नीतियों से समस्या का समाधान न होने पर विरोधी राजागण परस्पर युद्ध करने के लिये तत्पर होते थे। आक्रामक राजा शत्रु का घिराव करता था।[7] भेरी और शंख के शब्द से युद्ध की तैयारी की सूचना दी जाती थी।[8] आक्रान्त राजा भी आक्रामक के युद्ध की तैयारी की सूचना प्राप्त करके अपने सेनापतियों के माध्यम से भेरी शब्द के द्वारा सेना को सचेत एवं संगठित करने के लिये आदेश

१. वा० रा० ६।४।१०४; ६।६।१, ४, १५; ६।१२।६ आदि
२. वही ६।२३।१५, १६, १७; ६।३२।४१; ६।३५।२ आदि
३. वही ६।२४।१४ से २०
४. वही ६।२४।२२
५. वही ७।२०।१, २; ६।२५।१, ४ आदि ६।२६।१५, १७, १८ आदि; ६।३७।७ आदि ।
६. वही ६।२०।६; ११, १२, २३ आदि
७. वही १।६६।२१; १।७१।१६; ६।४१।३३
८. वही ६।३५।१

देता था।[1] सेना को एकत्रित एवं संगठित करने का कारण नहीं बताया जाता था।[2] सेना के एकत्रित हो जाने पर आक्रान्त राजा मन्त्रियों से परामर्श करके अपनी रक्षा का भली भाँति प्रबन्ध करता था।[3] दुर्ग के चारों ओर रक्षा का प्रबन्ध किया जाता था।[4] आक्रामक राजा भी शत्रुराजा के गढ़ को चारों ओर से घेर लेता था।[5] शत्रु पर घिराव के पश्चात् आक्रामक राजा एक बार पुनः दूत के माध्यम से प्रयत्न करता था कि युद्ध का निराकरण हो।[6] लेकिन सफलता न मिलने पर युद्ध प्रारम्भ किया जाता था।

युद्ध की घोषणा एवं युद्ध का आरम्भ—

युद्ध की घोषणा राजा द्वारा की जाती थी। राजा सेना को युद्ध आरम्भ करने का आदेश देता था।[7] रामायणानुसार युद्ध का आरम्भ भेरी और शंखों आदि युद्ध के वाद्यों के निर्घोष से होता था।[8] सैनिक भी महानाद करते थे।[9] वे अपने स्वामी की जय जयकार करते हुए युद्ध प्रारम्भ करते थे।[10]

दुर्गों का विध्वंस—

युद्ध प्रारम्भ किये जाने पर आक्रान्ता की सेना द्वारा सर्वप्रथम आक्रान्त राजा के दुर्गों को नष्ट किया जाता था, जिससे कि गढ़

१. वा० रा० ६।३२।४२, ४३
२. वही ६।३२।४३
३. वही ६।३६।१६ आदि
४. वही ६।३६।१७ आदि
५. वही ६।४१।३४, ३७ आदि; ६।४२।१, २, ३
६. वही ६।४१।५८ आदि
७. वही ६।४२।६, ३२, ३३
८. वही ६।३४।२७; ६।४२।३४, ३५
९. वही ६।४२।१०
१०. वही ६।४२।२०, ४३, ४४

में प्रवेश सुलभ हो सके और आक्रान्त राजा को नष्ट किया जा सके। आक्रान्ता के सैनिक परिखाओं को मिट्टी, पत्थर और काष्ठ आदि से पूरित करते थे।[१] एवं परकोटे या कृत्रिम दुर्ग को तोड़ते थे।[२] तत्पश्चात् आक्रान्त के नगर में प्रवेश करते थे।[३] इस प्रकार आक्रान्त द्वारा सर्वप्रथम युद्ध में विजय के लिये दुर्गों का विध्वंस किया जाता था।

युद्ध के समय सावधानी—

आक्रान्ता राजा आक्रान्त के गढ़ में प्रविष्ट होकर सेना के विश्राम हेतु शिविर या चौकियों की स्थापना करता था।[४] युद्ध के समय राजा स्वयं सेना का निर्देशक होता था एवं सैन्य विधान को वह मन्त्रियों की सहायता से करता था एवं विधिपूर्वक सेना को मोर्चों पर तैनात करता था।[५] युद्धकाल में राजा सेनापति को सैन्य संचालन के लिये नियुक्त करता था।[६] इस प्रकार बलाध्यक्ष सेना के साथ रहते थे।[७] युद्धकाल में सेना को व्यूहों में विभक्त किया जाता था।[८] एवं विभिन्न मोर्चों पर स्थापित किया जाता था।[९] युद्ध के समय आक्रान्ता एवं आक्रान्त दोनों ही अपनी अपनी सुरक्षा के हेतु सचेत रहते थे। युद्ध के समय चौकियों की व्यवस्था रहती थी।[१०] एवं शत्रु विषयक जानकारी के लिये सैनिकों को सचेत

१. वा० रा० ६।४२।१६
२. वही ६।४२।१५, १८, २२
३. वही ६।४२।२२
४. वही ६।४२।२२
५. वही ६।३६।१ आदि
६. वही ६।३७।३२
७. वही ६।३६।१७ आदि; ६।४२।३३; आदि ६।६१।३५; ६।८५।६
८. वही ६।२३।२; ६।२४।२०; ६।३०।१३; ६।६१।३५
९. वही ६।३६।१७
१०. वही ६।३७।१५; ६।८५।५

रहने का आदेश दिया जाता था।[1] आक्रान्त राजा पुर की रक्षा का विशेष ध्यान रखता था।[2] राजागण स्वयं चौकियों का निरीक्षण करते थे।[3] इस प्रकार युद्ध काल में दोनों ही पक्ष सावधान एवं सचेत रहते थे।

युद्ध में उत्साह—

युद्ध के समय सेना को उत्साहित करने का रामायण में अनेक स्थलों पर उल्लेख है। यान के समय सैनिकों को प्रोत्साहन के अतिरिक्त युद्धस्थल में भी प्रोत्साहित किया जाता था।[4] दोनों पक्षों के सेनाग्रयायी अपने अपने सैनिकों को समरांगण में प्रोत्साहित करते थे।[5] युद्ध स्थल में परस्पर विरोधी योद्धाओं में उग्र वार्ता भी होती थी।[6] वे एक दूसरे को क्रोधित करके युद्ध के लिये उत्तेजित करते थे। सैनिकों को उत्साहित करने के लिए भेरी और शंख का निर्घोष भी किया जाता था।[7] युद्ध में विषादग्रस्त सैनिकों को भी सेनापतियों एवं प्रधान अधिकारियों द्वारा शान्त्वना प्रदान की जाती थी एवं धैर्य बंधाया जाता था।[8] इस प्रकार रामायण में युद्ध करने वाले सैनिकों को उत्साहित करने और सान्त्वना प्रदान करने का उल्लेख है।

रामायण में युद्ध एवं युद्ध के विविध रूप—

रामायणानुसार युद्ध में मोर्चाबन्धी होती थी। सैनिक परस्पर बलानुसार युद्ध करते थे।[9] द्वन्द्वयुद्ध, बाहु युद्ध, मुष्टि युद्ध, गदा युद्ध

१. वा० रा० ६।७२।१२ आदि
२. वही ६।५६।३३, ३४
३. वही ६।५७।२, ३
४. वही ६।४।१६
५. वही ६।६६।४, ५ आदि; ६।८२।३, ४ आदि
६. वही ६।७६।६ आदि; ६।८७।१० आदि; ६।८८।१२ आदि; ६।८६।१८ आदि
७. वही ६।५७।२५, २६, ३०; ६।३४।२७
८. वही ६।७४।२, ३; ६।७६।३६
९. वही ६।४३।५, ७ आदि

और मल्लयुद्ध आदि अनेक प्रकार से युद्ध होता था।[१] मल्ल युद्ध में योधागण विविध दावों—मार्जार, मण्डल, तिरश्चीन गति, वक्रगति आदि का प्रयोग करते थे।[२]

रामायणानुसार तत्कालीन सैनिकगण वृक्षों, शिलाओं, शस्त्रों, अस्त्रों, शतघ्नियों, आग्नेयास्त्रों आदि से भी विविध प्रकार से युद्ध करते थे।[3]

रामायण में कूट युद्ध —

रामायणानुसार राक्षसों द्वारा कूट युद्ध भी किया जाता था। इसी कारण से निशाचर कूटयोधा कहे गये हैं।[४] राक्षसगण युद्ध में शत्रु को मोहित करने के लिये एवं धोखा देने के लिए माया (छल) का विस्तार करते थे। इन्द्रजीत ने युद्ध स्थल में शत्रुपक्ष को भयभीत करने के लिये मायावी सीता को रचकर उसका वध किया था।[५]

राक्षस गण युद्ध में अनेक रूप धारण करने की क्षमता रखते थे। रावण युद्ध में माया द्वारा सहस्र रूप धारण करता था।[६] इसी प्रकार इन्द्रजीत मायाबल से युद्धस्थल से अदृश्य होकर बाण वर्षा करने में एवं माया या छल द्वारा शत्रुओं को मोहित करने में दक्ष था।[७]

इस प्रकार रामायण काल में युद्ध में शत्रु को धोखा देना भी

१. वा० रा० ६।१६।२८; ६।४०।१३ आदि; ६।४२।४२; ६।४३।५; ६।५३।२३, २४; ६।५४।२८; ६।७६।१०, १६
२. वही ६।४०।२२ से २६
३. वही ६।५३।२१, २२; ७।१५।३१; ७।२३।४४, ४५
४. वही ६।४४।३६; ६।५०।१५, ५३
५. वही ६।८१।४, ५, ३१
६. वही ७।१५।३२
७. वही ६।४४।२६, ३७, ३६

प्रचलित था।[1] यद्यपि यह छलपूर्ण कूटयुद्ध अच्छा न समझा जाता था।[2]

रामायण में आकाशयुद्ध—

स्थलयुद्ध के अतिरिक्त रामायण में आकाशयुद्ध का भी वर्णन मिलता है। राजा रावण ने पुष्पक विमान द्वारा अपनी दिग्विजय प्रारम्भ की थी। रावण का वरुण के पुत्रों के साथ आकाश युद्ध भी हुआ था।[3] रामायण में 'जलयुद्ध' का उल्लेख नहीं है।

युद्ध में विजयार्थ यज्ञ एवं मंगलकामना—

रामायणानुसार युद्ध में विजय का साधन केवल सेना ही न थी, अपितु युद्ध में विजय के लिए यज्ञ एवं जप भी किए जाते थे। प्रधानयोधागण युद्ध में जाने से पूर्व यज्ञ करते थे। सेनापति प्रहस्त के युद्ध में जाने से पूव राक्षसों ने उसकी विजयार्थ अग्नि में आहुतियाँ दी थीं एवं ब्राह्मणों की वन्दना की थी[4] तथा मंगलकामना की थी। इन्द्रजीत भी युद्ध में जाने से पूर्व यज्ञ करता था।[5] इन्द्रजीत के यज्ञ में विघ्न के लिए लक्ष्मण को वानरों सहित भेजा गया था।[6] वानरों ने इन्द्रजीत के अज्ञेय यज्ञ को नष्ट कर दिया था।[7] राम ने भी विजयार्थ ऋषि अगस्त्य द्वारा निर्दिष्ट आदित्य स्तोत्र का जप किया था।[8] इस प्रकार रामायणानुसार युद्ध में विजयार्थ यज्ञ एवं जप का महत्त्व था।

---

१. वा० रा० १।२०।८
२. वही ६।८८।१५
३. वही ७।२३।३४
४. वही ६।५७।२२
५. वही ६।७३।१७ आदि; ६।८०।५ आदि
६. वही ६।८४।१७, १८; ६।८५।२१ आदि
७. वही ६।८६।७, १४
८. वही ६।१०५

युद्ध में षड्गुण एवं चार नीतियाँ –

रामायणानुसार शत्रु पर विजयार्थ षड्गुण-सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय तथा द्वैधीभाव एवं चारनीतियों—साम, दाम, भेद और दण्ड का प्रयोग किया जाता था। राजागण अपना पक्ष सबल बनाने के लिये मैत्री या सन्धि करते थे।[1] वे विधिपूर्वक यान, आसन, संश्रय, द्वैधीभाव और विग्रह का भी प्रयोग करते थे

राजाओं द्वारा उक्त चार नीतियों का भी प्रयोग किया जाता था। रावण पर युद्ध में विजयार्थ राम ने सुग्रीव के साथ साम एवं विभीषण के प्रति दाम नीतियों का प्रयोग किया था। युद्ध में विजयार्थ रावण ने सुग्रीव के प्रति भेद नीति अपनाई थी।[2] दण्ड अन्तिम नीति थी, जो युद्ध का रूप धारण करती थी।

षड्गुण और चतुर्नीतियों के कार्यान्वयन में दूत एवं गुप्तचर का महत्त्वपूर्ण स्थान था। षड्गुण और चतुर्नीतियों के विषय में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध शीर्षक में विस्तत विवेचन किया गया है।

युद्ध के नियम –

रामायणानुसार युद्ध में धर्म का महत्त्व था।[3] अतः युद्ध के के लिये निर्दिष्ट नियमों का पालन करना पड़ता था। नीतिगत दृष्टि से रामायण में युद्ध दो प्रकार का कहा गया है—(१) आर्जव युद्ध[4]—यह युद्ध नैतिक नियमों पर आधारित होता था। (२) कूट युद्ध[5]—यह नियम रहित या छलपूर्ण युद्ध था। रामायणानुसार आर्जव युद्ध से सम्बन्धित नियम निम्नांकित हैं—

---

१. वा० रा० ४।३।२३, ४०
२. वही ६।२०।६ से १२
३. वही ६।३५।१५, १६
४. वा० रा० ६।५०।५३; ७।१५।६
५. वही ६।५०।५३; ७।१५।६

(१) बद्धाञ्जलि, दीन शरणागत की रक्षा करना[१] एवं शरण में आये हुए अपराधी को भी क्षमा करना।[२]
(२) युद्ध स्थल में युद्ध न करने वाले को न मारना।[३]
(३) युद्ध के भय से छिपे हुए सैनिक को न मारना।[४]
(४) युद्ध स्थल को त्याग कर पलायन करने वाले को न मारना।[५]
(५) उन्मत्त को न मारना।[६]
(६) स्त्री की हत्या न करना।[७]
(७) असहाय को न मारना।[८]
(८) दूत का वध न मारना।[९]
(९) मत्त (मधुपान से मत्त), प्रमत्त (असावधान), सुप्त, शस्त्र रहित एवं काम से मोहित का वध न करना।[१०]

उपर्युक्त नियमों के अतिरिक्त भी आर्जव युद्ध सम्बन्धी अनेक नियम थे। युद्ध में पैदल के साथ पैदल, अश्वारोही के साथ अश्वारोही, गजारोही साथ गजारोही एवं रथारोही के साथ रथारोही द्वारा युद्ध करने का विधान था।[११] योधागण परस्पर बलानुसार ही युद्ध करते थे।[१२] शत्रु को सचेत एवं सावधान होने का भी

---

१. वा० रा० ६।१८।२७, २८; ६।८०।३९
२. वही ५।६७।१५, १६
३. वही ६।८०।३९; ६।७१।४४
४. वही ६।८०।३९
५. वही ६।८०।३९
६. वही ६।८०।३९
७. वही १।२६।१२; ६।८१।२४
८. वही १।५।२०
९. वही ६।२५।२०
१०. वही ४।११।३६
११. वही ६।४३।६ आदि
१२. वही ६।७१।४४, ४५

समय दिया जाता था।[1] यद्यपि रामायण में शत्रु के कमजोर समय का लाभ उठाने का भी उल्लेख है।[2] दो सैनिकों के परस्पर युद्ध करने पर किसी अन्य सैनिक द्वारा हस्तक्षेप करना नियम के विरुद्ध माना जाता था।[3] युद्ध में यह भी नियम था कि सर्वप्रथम रणस्थल में शत्रु के साथ युद्धार्थ सेना भेजी जाती थी। फिर बलाध्यक्ष एवं सेनापति, तत्पश्चात् युवराज भेजा जाता था। अन्त में राजा स्वयं युद्ध के लिये जाता था। इस प्रकार उत्तरोत्तर पराक्रमी योधागणों को ही युद्धार्थ रण में भेजने का विधान था।[4]

युद्ध में समय सम्बन्धी भी नियम थे। युद्ध सूर्यास्त में पश्चात् न होने का विधान था।[5] यद्यपि रामायण में रात्रि में भी होने वाले युद्धों का वर्णन है।[6]

कूट या अधर्म युद्ध में उपर्युक्त नियमों का परिपालन नहीं होता था। कूट युद्ध में छल या माया की प्रधानता होती थी। लेकिन रामायण में कूट युद्ध निन्दनीय कहा गया है।[7]

युद्ध में सैनिकों की चिकित्सा—

रामायण में युद्ध में घायल सैनिकों के उपचार का उल्लेख है। युद्ध क्षेत्र में घायल सैनिकों की खोज करके[8] उनका उपचार

---

१. वा० रा० ६।५६।१४३
२. वही ७।६३।२८
३. वही ४।१७।१५; १६; ७।५६।७४
४. वही ३।१६।२१ आदि; ३ सर्ग २२; ४।४२।२५; ५।४४।१; ५।४६।२; ५।४७।१, २; ५।४८।१
५. वही ३।२६।२३
६. वही ६।४४।१ आदि
७. वही ६।८८।१५
८. वही ६।७४।७

किया जाता था। विभिन्न औषधियों—मृतसंजीवनी (मृत एवं मूर्च्छित को जीवित करने वाली), विशल्यकरणी (घावों को ठीक करने वाली), सावर्ण्यकरणी (घावों को ठीक करके पूर्ववत् कर देने वाली), सन्धानकरणी (घाव को जोड़कर एक सा कर देने वाली) से घायल सैनिकों की चिकित्सा की जाती थी।[1]

रामायण काल में युद्धों का बाहुल्य था। अतः रणक्षेत्र में घायल सैनिकों की चिकित्सा का विशेष प्रबन्ध रखा जाता था। सेना के साथ चिकित्सक रहा करते थे।[2]

युद्ध में मृत सैनिकों का प्रबन्ध—

रामायणानुसार मृतसैनिक युद्ध भूमि में पड़े रहने के अतिरिक्त सुविधानुसार समुद्र में भी डाल दिये जाते थे। राम के मृत सैनिक युद्धभूमि में ही पड़े रहते थे, जबकि मृत राक्षस सैनिक समुद्र में डाल दिये जाते थे।[3]

युद्ध में बन्दी—

रामायणानुसार युद्ध के समय पकड़े गये शत्रु को बन्दी भी बनाया जाता था एवं कुछ शर्तों पर उसे मुक्त भी कर दिया जाता था। इन्द्रजीत ने इन्द्र को ब्रह्मा से सिद्धियाँ लेकर मुक्त कर दिया था।[4] इसी प्रकार युद्ध के समय दूतों और गुप्तचरों को बन्दी बना कर पुनः छोड़ देने का नियम था।[5]

युद्ध के पश्चात् विजित राज्य के प्रति व्यवहार—

रामायणानुसार विजेता राजा विजित राज्य को छोड़ने के पूर्व उसमें स्थायित्व से युक्त शासन को स्थापित करता था। विजित

---

१. वा० रा० ६।७४।३३, ३४, ७३, ७४; ६।५०।२८; ६।१०२।२२,३६
२. वही २।८३।१४
३. वही ६।८४।७६
४. वही ७।३०।१३ आदि
५. वही ६।२४।२५; ६।२६।२७

राज्य में या तो उसी राज्य का अधिकारी युवराज ही राजा बनाया जाता था।[१] या विजेता अपने उत्तराधिकारी को वहाँ का शासक नियुक्त करता था।[२] युद्धोपरान्त नीतियों का वर्णन अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध शीर्षक में विशद रूप से किया गया है।

राक्षसों की हार के कारण—

रामायण में धर्म और अधर्म दो पक्षों का वर्णन है।[३] असुरों और राक्षसों का अधर्म पक्ष कहा गया है[४] एवं अधर्म ही राक्षसों की हार का कारण भी कहा गया है।[५] वस्तुतः राक्षस लोक कल्याण के लिए युद्ध नहीं करते थे; अपितु वे अपने स्वार्थ, हिंसा एवं क्रोध की भावना से युद्ध करते थे। उन्मत्तता, स्वेच्छाचारिता, भोगासक्ति, निरंकुशता, प्रमाद, अविवेकिता आदि भी राक्षसों की हार के कारण थे।[६]

राक्षस राजा यद्यपि यज्ञ करते थे तथापि उनके द्वारा किए गए यज्ञ लोक कल्याणकारी नहीं होते थे। यज्ञों से प्राप्त सिद्धियों का वे दुरुपयोग करते थे। इसीलिए वे दूसरों के द्वारा सम्पादित यज्ञों को सफल नहीं होने देते थे।[७] उक्त पापकृत्य भी राक्षसों के विनाश का कारण बने।

राक्षसों की हार के अन्य कारण—गुप्तचर विभाग का सशक्त एवं सतर्क न होना,[८] अनाचारी होने से आत्मबल से हीन होना एवं

---

१. वा० रा० ४।२६।१०; ६।११५।१६
२. वही १।७१।१६; ७ सर्ग ७० एवं सर्ग १०१
३. वही ६।३५।१२, १३
४. वही ६।३५।१३
५. वही ६।३५।१६
६. वही ३।३३।२, ३, ८
७. वही १।३०।१२, १३
८. वही ३।३३।६, ११

युद्ध सम्बन्धी विचार विमर्श में सभा के सदस्यों में मतैक्य न होना[1] आदि थे।

इस प्रकार अधर्म, असावधानी एवं असहमति राक्षसों की पराजय के कारण थे।

रामायण में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध—

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों द्वारा सम्बद्ध होते थे। प्रत्येक राज्य की स्वतन्त्रता के लिए अन्तर्राष्ट्रीय कानून आवश्यक हैं।

रामायण में अन्तर्राष्ट्रीय नियम—

रामायण के अध्ययन से स्पष्ट है कि उस समय अन्तर्राष्ट्रीय नियमों का निर्माण हो चुका था। रामायण में वर्णित राजागण अन्तराष्ट्रीय नियमों के विषय में भलीभाँति परिचित थे। इस प्रसंग में श्री एस० एस० धवन ने स्पष्ट किया है कि रामायण काल में अन्तर्राष्ट्रीय नियम प्रचलित थे।[2] उस समय अन्तर्राष्ट्रीय नियमों का आधार राजधर्म, लोकाचार, शास्त्र एवं साधुमत थे।[3]

रामायणानुसार कुछ अन्तर्राष्ट्रीय नियम निम्नांकित हैं—

[१] एक राज्य का निवासी किसी दूसरे राज्य के द्वारा दण्डित नहीं किया जा सकता था।[4]

[२] एक राजा द्वारा दूसरे राज्य पर स्वेच्छाचारिता एवं निरंकुशता से आक्रमण करना निन्दनीय था।[5]

---

१. वा० रा० ६।५७।१३
२. हिन्दू एपिक्स आफ इन्टरनेशनल ला इन आरिजिनेटिड इन इंडिया, उद्धृत "द हिन्दुस्तान टाइम्स, पृ० ३ दिनांक १९।१।७३
३. वही ५।५२।६, ८, १४
४. वही ४।१७।२२
५. वही ३।३७।६; ४।१७।३०, ३१, ३२

[३] एक राजा का दूसरे राजा से युद्ध होने पर किसी अन्य राजा द्वारा उनमें से किसी एक को सहायता की जाना अनुचित था।[1]

[४] एक राजा द्वारा दूसरे राजा से अकारण या व्यर्थ में युद्ध मोल लेना उचित न था।[2]

[५] दूत अबध्य समझा जाता था।[3]

[६] राज्यों में राजनीतिक औचित्य ही मान्य था। अनौचित्य का विरोध किया जाता था। मारीच एवं विभीषण ने रावण द्वारा सीता का अपहरण अनौचित्यपूर्ण बताया था।[4] इसी प्रकार विभीषण और माल्यवान् ने सीता को राम के पास लौटाना ही औचित्यपूर्ण कहा था।[5] इस प्रकार धर्म और नैतिक नियमों का अन्तर्राष्ट्रीय नियमों में महत्त्वपूर्ण स्थान था।

रामायण में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के आधार—

रामायणानुसार तत्कालीन राज्यों के परस्पर सम्बन्ध राष्ट्रीय हित[6] (व्यापार, विकास, समृद्धि आदि) तथा राष्ट्रीय शक्ति के स्रोत एवं संगठन के लिये होते थे।[7] इसमें राजाओं का भी व्यक्तिगत हित निहित होता था।[8] रामायण काल में अनेक राज्य थे। सभी अपनी शक्ति का विस्तार चाहते थे। राजा दशरथ

---

१. वा० रा० ४।१७।१४
२. वही ६।६।१६, १७
३. वही ५।५२।१३; ६।२५।२०
४. वही ३।३८।३०; ६।६।१५
५. वही ६।६।२१, २२; ६।१४।३; ६।३५।१०
६. वही १।५।१४
७. वही ३।७२।१०; ७ सर्ग १४ आदि; ७ सर्ग ६२
८. वही ३।७२।२७

और राम के अश्वमेध यज्ञ तथा रावण की दिग्विजय इसके प्रमाण हैं।[1]

रामायणानुसार तत्कालीन राज्यों के परस्पर सम्बन्ध उपहार,[2] मित्रता,[3] सन्धि,[4] विरोध,[5] शक्ति की वृद्धि[6] एवं दण्ड[7] के माध्यम से स्थापित होते थे।

रामायण में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों सम्बन्धी सिद्धान्त—

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के लिए चार सूत्र या सिद्धान्त—(१) राजमण्डल सिद्धान्त (२) षाडगुण्य सिद्धान्त (३) युद्धनीति तथा (४) युद्धोपरान्त नीतियाँ या सिद्धान्त कहे गये हैं। रामायण में उपर्युक्त चारों सिद्धान्तों का उल्लेख है।

रामायण में राजमण्डल सिद्धान्त—

राजमण्डल में विभिन्न राज्य या राजा सम्मिलित होते थे। नीति और स्थिति के अनुसार ये विजिगीषु, मित्र, अरि, मध्यम, और उदासीन कहे जाते हैं। रामायण में विभिन्न राज्यों के राजा अपनी नीति के अनुसार विजिगीषु,[8] मित्र,[9] अमित्र,[10] मध्यस्थ[11]

---

१. वा० रा० ४।५।५; ७ सर्ग १४, ६१, ६२
२. वही २।८२।८; ७।३८।१२
३. वही १।७।२१; ३।७२।१५, १७; ४।२।२१
४. वही ४।३।२३, ४०; ६।३५।६, १०, ११; ७ सर्ग २३ के पश्चात् अधिक पाठ सर्ग ३ श्लोक ६१
५. वही ७ सर्ग ११
६. वही १।७।२१; ७ सर्ग १४ आदि
७. वही ४ सर्ग १६; ६ सर्ग ४२ आदि; ७ सर्ग १४ आदि
८. वही ४।३०।६२; ६।६।१०
९. वही १।७।२१; ४।२।२१
१०. वही १।५२।८
११. वही २।२।१६

और उदासीन[१] कहे गये हैं। ये विभिन्न राज्यों के साथ सम्बन्धों के द्योतक हैं। रामायण में राज्य-मण्डल-विषयक ज्ञान के लिये राजाओं को निर्देश दिया गया है।[२]

रामायणानुसार अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में मित्र की स्थिति महत्त्वपूर्ण थी। राजाओं के परस्पर मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध अभीष्ट की प्राप्ति के लिये[३] एवं राज्य की शक्ति की वृद्धि के लिये[४] आवश्यक थे। अतः राजागण परस्पर मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने में तत्पर रहते थे।[५] राजा दशरथ का अनेक राजाओं से मैत्री संबंध था।[६] अयोध्या में महोत्सव आदि अवसरों पर मित्र राजा उपस्थित रहते थे।[७] रामायण में दूतावास का उल्लेख नहीं है, लेकिन राजाओं के परस्पर मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित कराने में दूतों का हाथ रहता था।[८] रामायणानुसार एक राजा का दूसरे राजा के साथ विरोध अच्छा न समझा जाता था।[९]

षाड्गुण्य सिद्धान्त —

राजाओं द्वारा कार्यों में सिद्धि के लिये षाडगुण्य सिद्धान्त अपनाया जाता था। रामायण में राजा को षड्गुण प्रयोग करने के निर्देश हैं।[१०] कबन्ध ने राम को उनके कार्यों में सफलता के लिये षड्गुण या छः युक्तियों का परिज्ञान कराया था।[११] ये सभी युक्तियाँ निम्नाङ्कित हैं—

---

१. वा० रा० १।७।७
२. वही २।१००।७०
३. वही ३।७२।१४, १५; ४।३।४०; ४।५।११
४. वही ३।७२।१४; ७।१००।१२
५. वही १।११।३; ४।४।१८; ४।५।७, ११, १२; ४।१८।२७
६. वही १।७।२१; २।१।४५
७. वही २।१।४५; ६।१३१।८१
८. वही ४।३।२३, ४०
९. वही ३।७२।२२; ४।१५।२४; ६।९।१६, १७; ६।३५।११
१०. वही २।१००।७०
११. वही ३।७२।८

(१) सन्धि—

अपना पक्ष सबल न होने पर विरोधी राजा से मेल कर लेना 'सन्धि' है। रामायण में सन्धि के अनेक उल्लेख हैं। तारा ने वालि से राम एवं सुग्रीव के साथ तथा माल्यवान् ने रावण से राम के साथ सन्धि करने के लिये कहा था। राम और सुग्रीव की मैत्री भी एक प्रकार की सन्धि ही थी।[2] रामायण में राजा को शत्रु राजा से हीनबल या समानबल होने पर सन्धि करने का निदश है।[3]

रामायणानुसार एक राजा की दूसरे राजा से सन्धि दूत के माध्यम से होती थी। राम और सुग्रीव की सन्धि हनुमान् के माध्यम से हुई थी।[4] हनुमान् ने रावण को भी सीता लौटाकर राम से सन्धि करने के लिये प्रेरित किया था।[5] रामायण में राजाओं को सन्धि विषयक ज्ञान होना आवश्यक कहा गया है।[6]

(२) विग्रह—

सन्धि के पश्चात् शत्रु को वश में करने की दूसरी युक्ति 'विग्रह' है। अपना पक्ष सबल होने पर विग्रह का आश्रय लिया जाता है। रामायण में राजाओं के लिये विग्रह सम्बन्धी ज्ञान भी आवश्यक कहा गया है।[7] रामायण में अनेक स्थलों पर उल्लेख है कि राजा को अपने तथा शत्रु राजा के बलाबल पर विचार करके[8] शत्रु

---

१. वा० रा० ४।१५।२३, २४; ६।३५।१०, ११
२. वही ४।३।२३।४०
३. वही ६।३५।६
४. वही ४।३।४०; ४।५।१४ से १७
५. वही ५।५१।२१
६. वही २।१००।७१
७. वही २।१००।७१
८. वही ३।३७।२४; ६।१४।२२

से बलशाली होने पर ही विग्रह करने पर तत्पर होना चाहिये।[1] कृति में राजा के लिये पूर्णतः अनुसन्धान करके समयानुसार ही विग्रह करने के निर्देश हैं।[2] अनुसन्धान करके एवं अवसर पाकर शत्रु के साथ विग्रह करने वाला राजा महद् ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाला कहा गया है।[3] व्यर्थ में विग्रह अच्छा न समझा जाता था।[4]

(३) यान—

एक राजा का दूसरे राजा के राज्य पर आक्रमण के लिये जाना 'यान' कहलाता है। रामायण में यान का अनेक स्थलों पर उल्लेख है।[5] कृति में राजाओं को यान के विधान को जानने के लिये निर्देश भी हैं।[6]

(४) आसन—

किसी सुरक्षित स्थान पर अपनी रक्षा और शत्रु को नष्ट करने की भावना से स्थित होना 'आसन' है। सुग्रीव का वालिबध की भावना से मलयगिरि पर निवास 'आसन' ही था।[7] राम का भी रावण के साथ युद्ध के लिये अनुकूल समय की प्रतीक्षा में सुबेल पर्वत पर आसीन होना 'आसन' का द्योतक है।[8]

(५) संश्रय—

अपने शत्रु या बलशाली राजा को आत्मसमर्पण करना 'संश्रय' है। रामायण में राजा दशरथ नतसामन्त कहे गये हैं।[9]

---

१. वा० रा० ६।३५।६
२. वही ६।३५।८
३. वही ६।३५।८
४. वही ६।६।१६
५. वही ६।१४।१७ आदि; ७।६४।१७, १८
६. वही २।१००।७१
७. वही ४।२।१४; ४।३।४०
८. वही ६।३८।३, ४, ६, १६
९. वही १।७।२१

राजा दशरथ के अधीन अनेक राजा थे जिन्होंने राजा दशरथ की शक्ति के आगे आत्मसमर्पण किया था। विभीषण की शरणागति भी संश्रय ही है।[१]

(६) द्वैधीभाव—

एक राजा के साथ सन्धि करके दूसरे राजा के साथ विग्रह करना द्वैधीभाव कहलाता है। सुग्रीव द्वारा राम के साथ मैत्री करके 'वालि' का वध कराना[२] एवं राम द्वारा सुग्रीव के साथ मैत्री करके उसका रावण के साथ युद्ध में सदुपयोग करना द्वैधीभाव ही है।[३]

युद्धनीति का सिद्धान्त—

रामायण में युद्ध सम्बन्धी चार नीतियों—साम, दाम, भेद और दण्ड का अनेक स्थलों पर उल्लेख है।[४] राजाओं को परस्पर स्थित्यनुसार सम्बन्ध बनाने के लिये उक्त चारों नीतियों को जानना आवश्यक था।[५] कृति में राजाओं को साम, दाम, भेद और दण्ड में सर्वप्रथम क्रमशः साम, दाम और भेद से व्यवहार करने का निर्देश है। सबके अन्त में ही दण्ड के प्रयोग का उल्लेख किया गया है।[६] प्रथम करने योग्य कार्य को बाद में तथा बाद में करने योग्य कार्य को पूर्व में करने वाला राजा नीति और अनीति को न जानने वाला कहा गया है।[७] साम आदि नीतियों का विचार करके ही राम ने लङ्का में पहुँच कर अङ्गद को दूत बनाकर भेजा था[८] एवं

---

१. वा० रा० ६।१७।१४, १५
२. वही ४।१५।१३
३. वही ४।३०।८३; ६।३८।३ आदि
४. वही ६।६।८; ६।१३।७; ६।८४।१२
५. वही २।१००।६६
६. वही ६।६।८
७. वा० रा० ६।६३।५
८. वही ६।४१।५८; ६६, ६७

सीता को लौटाने के लिये रावण को सन्देश पहुँचाया था जिससे कि दण्ड का प्रयोग न करना पड़े।

रामायणानुसार दण्ड का अनुचित प्रयोग अच्छा न समझा जाता था।[1] राज्य के हित और अहित का विचार करके ही युद्ध करना उचित समझा जाता था।[2] फिर भी राजागण कार्य की सिद्धि के लिये तीनों नीतियों की अपेक्षा दण्ड का आश्रय लेना ही श्रेयस्कर समझते थे।[3]

रामायण में युद्ध सम्बन्धी चारों नीतियों का सम्बन्ध मिलता है। राम द्वारा सुग्रीव के प्रति साम, विभीषण के प्रति दाम, वालि के प्रति भेद और रावण के प्रति दण्ड का व्यवहार किया गया था। सामनीति के लिये दूत का,[4] दान के लिये स्वयं राजा या मन्त्री आदि का,[5] भेद के लिये दूत या गुप्तचर का[6] एवं दण्ड के लिये राजा एवं सेना का उत्तरदायित्व था।[7]

युद्धोपरान्त नीति—

रामायणानुसार विजेता राजाओं द्वारा युद्धोपरान्त विजित राज्यों के साथ निम्नाङ्कित नीतियों द्वारा सम्बन्ध स्थापित किया जाता था—

(१) विजेता द्वारा विजित राज्य में किसी प्रकार का विघ्न न करना—

रामायण में अनेक उल्लेख ऐसे हैं, जिनके अनुसार विजेता राजा विजित राज्य को न तो अपने राज्य में मिलाता था और न

---

१. वा० रा० ३।३७।२; ६।६।१६
२. वही ३।३७।२४
३. वही ६।१३।७; ६।२१।१६; ६।२२।४६
४. वही ६।२०।८; ६।४१।५८, ५६
५. वही ५।२०।६, १०
६. वही ६।२०।८, ६, १०
७. वही ६।११।२; ६।१३।७; ६।३६।१७ आदि

उस पर स्वयं शासन करता था। दिग्विजय केवल अपनी शक्ति-प्रदर्शन और यश के लिये होती थी। राजा रावण ने अनेक राज्यों पर विजय प्राप्त की थी, लेकिन विजित राज्यों द्वारा राजा रावण का आधिपत्य स्वीकार कर लेने के पश्चात् किसी राज्य के शासन में रावण द्वारा हस्तक्षेप नहीं किया गया था। तथापि विजेता को रत्न और द्रव्य आदि से संतुष्ट किया जाता था।[1]

वस्तुतः तत्कालीन राज्यों में सामन्त राजाओं या अर्धस्वतन्त्र राज्यों की संख्या बहुत थी। विजेता राजा पराजित राज्य का अस्तित्व नष्ट न करके उस राज्य से सम्बन्धित व्यक्ति के हाथ में ही उस राज्य की सत्ता को सौंप देता था।[2] ऐसे राज्य विजेता के करद होते थे। राजा दशरथ के अधीन ऐसे अनेक राज्य थे।[3] अतः राजा दशरथ 'नत सामन्ताः' कहे गये हैं।[4]

अयोध्या में करद सामान्त राजाओं की उपस्थिति रहती थी।[5] अभिषेकोपरान्त भरत के लिये उदीच्य, प्रतीच्य एवं दक्षिण देश के राजाओं द्वारा रत्नों के उपहार देने के लिये कहा गया है।[6] स्पष्ट है कि ये राजागण कौशल के अधीश्वर के अधीन ही रहे होंगे।

इस प्रकार विजेता राजाओं द्वारा अधीन राज्यों से कर लेकर उन्हें अपने राज्यों पर शासन करने के लिए स्वतन्त्रता प्रदान की जाती थी।

(२) मैत्रीपूर्ण व्यवहार—

युद्धोपरान्त दूसरी नीति मैत्रीपूर्ण भावना की थी। युद्ध के उपरान्त रावण के साथ वालि, सहस्रबाहु अर्जुन, मान्धाता

---

१. वा० रा० ६।१२५।११
२. वही ६।१५।६
३. वही २।१०।३८, ३६
४. वही १।७।२१
५. वही १।५।१४
६. वही २।८२।८

एवं निवात कवच दैत्यों का मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो गया था।[1]

(३) विजित राज्य को अपने अधीन कर लेना—

रामायणानुसार युद्धोपरान्त विजित देश को अपने अधीन भी कर लिया जाता था। और उस राज्य को अपने भाई या पुत्र आदि को सौंप दिया जाता था। सांकाश्यापुरी के राजा सुधन्वा को युद्ध में राजा जनक ने मारकर अपने भाई कुशध्वज को सांकाश्यापुरी का राजा बनाया था।[2] इसी प्रकार शत्रुघ्न ने मथुरा पर आक्रमण करके लवणासुर को मारकर मथुरा को अपने अधीन कर लिया था।[3] ऐसे ही अन्य प्रसङ्ग रामायण के उत्तर-काण्ड में हैं।[4]

निष्कर्षत: रामायण में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध उपर्युक्त राजमण्डल सिद्धान्त, षाडगुण्य सिद्धान्त, युद्धनीतियों और युद्धोपरान्त नीतियों द्वारा स्थापित होते थे।

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के प्रकार—

रामायणानुसार तत्कालीत विभिन्न राज्यों के परस्पर सम्बन्ध दो प्रकार के होते थे। (१) शान्तिकालीन सम्बन्ध (२) युद्धकालीन सम्बन्ध।

शान्ति के समय राज्यों में परस्पर आदान प्रदान स्वतन्त्रता-पूर्वक होता था शान्ति काल में विदेशियों का एक दूसरे राज्यों में आना जाना रहता था। राज्यों द्वारा परस्पर व्यापार आदि की सुविधायें भी दी जाती थीं।[5] महत्त्वपूर्ण अवसरों—यज्ञों एवं

१. वा० रा० ७।२३।१४; ७ सर्ग २३ के पश्चात् अधिक पाठ सर्ग ३ श्लोक ६१; ७।३३।१८; ७।३४।४०, ४१, ४२
२. वही १।७१।१६
३. वही ७ सर्ग ७०
४. वही ७ सर्ग १०१
५. वही १।५।१४; २।१।४५, ४८, ४६

महोत्सवों पर एक राजा द्वारा अनेक राज्यों के राजाओं को आमन्त्रित किया जाता था।[1] आमन्त्रित राजागण मैत्रीपूर्ण व्यवहार से उपस्थित होकर आमन्त्रण देने वाले राजा को अनेक उपहार प्रदान करते थे।[2] राजाओं के शान्तिकालीन सम्बन्ध बहुत ही मैत्रीपूर्ण होते थे।[3] शान्तिकाल में राजागण परस्पर उपहार भेजा करते थे।[4] मित्र राजा के राज्य में जाने पर राजाओं का यथाविधि स्वागत होता था। राजा दशरथ और राम ने मित्र राजाओं का स्वागत और सम्मान किया था।[5] इसी प्रकार राजा गुह ने भी राम और भरत का स्वागत किया था।[6]

राजागण 'सम्बन्धी राज्यों' से भी परस्पर उपहार आदि के आदान प्रदान से सम्बन्धों को दृढ़ बताते थे। विदाई के समय कैकयराज ने भरत को और भरत ने अपने मामा को अनेक वस्तुयें उपहार में प्रदान की थी।[7] इसी प्रकार राम ने भी राजा जनक और युधाजित को रत्न आदि उपहार में दिये थे। उन वस्तुओं को उन्होंने पुनः राम के लिये ही प्रदान कर दिया था।[8]

शान्तिकाल में राजाओं द्वारा दूतों के प्रति भी यथोचित व्यवहार किया जाता था। कैकयराज के पुत्र युधाजित ने अयोध्या के दूतों का,[9] राजा दशरथ ने राजा जनक के दूतों का[10] एवं लङ्का में विभीषण ने कुबेर के दूत का यथोचित सम्मान किया था।[11] इस

१. वा० रा० १।१३।१८, २०, २२ से २६
२. वही ७।३७।१६, २२; ७।३८।१६, २१; ७।६२।४
३. वही २।१।४७, ४६; ७।३८।१६; ७।३६।२
४. वही ७।३६।८
५. वही २।१।४६; ७।६१।२६; ७।६२।४
६. वही २।५०।३६; २।८४।१७
७. वही २।७०।४,५,६; २।७०।१६
८. वही ७।३८।६, ७, ११, १२
९. वही २।७०।२
१०. वही १।६८।१६
११. वही ७।१३।१३

प्रकार रामायणानुसार तत्कालीन राज्यों के शान्ति-कालीन सम्बन्ध घनिष्टता पूर्ण थे।

युद्ध काल में राज्यों के परस्पर सम्बन्धों का विच्छेद हो जाता था। युद्धकाल में राजाओं द्वारा दूत के माध्यम से ही साम आदि उपायों से युद्ध के निवारण के लिये एवं सन्धि करने के लिये अथवा सद्भावना बनाने के लिये प्रयत्न किया जाता था।[1] दूतों के माध्यम से युद्ध सम्बन्धी नीति का निर्धारण किया जाता था।[2] वस्तुतः तत्कालीन राज्यों के युद्धकालीन सम्बन्ध विरोधपूर्ण और घातक थे।

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध और दूत—

रामायण में यद्यपि तत्कालीन राज्यों में दूतावासों की स्थिति के सम्बन्ध में उल्लेख नहीं है तथापि उस समय अन्तर्राष्टीय सम्बन्धों को स्थापित करने में दूत का महत्त्वपूर्ण योगदान था। दूत अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को बनाने का आधार था। राज्यों के परस्पर शान्ति एवं युद्धकालीन सम्बन्ध दूतों के माध्यम से ही स्थापित होते थे। राजा जनक और धनेश्वर कुबेर ने क्रमशः राजा दशरथ और राजा रावण से दूतों के माध्यम से ही सर्वप्रथम सम्बन्धों को स्थापित किया था।[3] युद्धकाल में राम और रावण ने दूतों के माध्यम से परस्पर सम्बन्ध शरू किए थे।[4]

दूत की योग्यता—

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को स्थापित करने में दूत प्रमुख था, अतएव वह अत्यन्त योग्य व्यक्ति होता था। रामायणानुसार दूत अपने ही राज्य का रहने वाला, समर्थ, प्रत्युत्पन्नमति, दूसरों के

---

१. वा० रा० ५।५०।१६; ६।४१।५८, ५६; ७।१३।१२
२. वही १।७१।१७; ५ सर्ग ५०, ५२; ६।४१।५८
३. वही १।६७।२७; १।६८।१ आदि; ७।१३।१२ आदि
४. वही ५।५०।१६; ५।५१।१ आदि; ६।२०।७, ८, ६ आदि; ६।४१।५८, ५६

अभिप्राय को समझने वाला, यथोक्तवादी और पण्डित अर्थात् ज्ञानी होता था।[1] वह वाक्यकोविद, विनीत, मधुरभाषी, निर्भीक, धैर्यवान्, काम की बात करने वाला, संयत, अनेक गुणों से युक्त तथा स्वामीभक्त होता था।[2] वह कार्यकुशल[3] तथा गोपनीय बात को गुप्त रखने वाला होता था।[4] रामायणानुसार दूत मन्त्री या मन्त्री के समकक्ष होता था।[5] वह दूत कार्य करते समय शस्त्र धारण नहीं करता था।[6] इस प्रकार दूत बुद्धिमान्, सचरित्र, वीर एवं स्वामिभक्त होता था एवं राज्य और राजा के हित में कार्य करता था।

निष्कर्षतः रामायणानुसार तत्कालीन राज्यों के पारस्परिक सम्बन्ध उनके हितों की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण थे।

---

१. वा० रा० २।१००।३६; ४।३।२८, २९, ३०
२. वही १।६८।३, ५; ४।२।१३; ४।३।३, ४, २८, ३१, ३६, ४०; ५।५१।१; ७।१३।१६
३. वही ६।२०।७, ८
४. वही २।६८।८
५. वही २।६८।५; ५।३४।३९; ५।३५।५२, ७२; ६।२५।१; ६।४१।५९
६. वही ६।२५।२०

पञ्चम अध्याय

रामायणकालीन समाज, धर्म, और राजनीति

सामाजिक विकास राजनीति की उन्नति का आधार है। महात्मा गाँधी ने कहा है कि "जिस देश को राजनीतिक उन्नति करना हो, वह यदि पहले सामाजिक उन्नति नहीं कर लेगा, तो राजनीतिक उन्नति आकाश में महल बनाने जैसी होगी।[1]"

रामायण कालीन राजनीति का सुस्थिर रूप एवं उत्कर्ष तत्कालीन सामाजिक उन्नति के कारण ही था। वाल्मीकि रामायण से तत्कालीन समाज के गठन, समृद्धि, संस्कार, रीतिरिवाज, पहनावा, शिक्षा, उत्सव, उद्योग आदि के विषय में ज्ञान प्राप्त होता है। प्रस्तुत अध्याय में रामायण कालीन समाज की व्यवस्था, सभ्यता एवं संस्कृति के विषय में उल्लेख है।

रामायणकालीन समाज का गठन—

रामायण में प्रमुख रूप से तीन प्रकार की जातियों का उल्लेख है—(१) नर (२) वानर (३) राक्षस। इन तीनों जातियों के विषय में दो दृष्टिकोण हैं। प्रथम दृष्टिकोण आध्यात्मिक है। इसके अनुसार श्री रामचन्द्र जी तो सच्चिदानन्द परब्रह्म ही हैं, 'राक्षस' 'षड्विकार' हैं और 'वानर जाति' चंचल मनोवृत्तियाँ हैं।[2] दूसरा दृष्टिकोण आधिभौतिक है। इसके अनुसार उपर्युक्त विषय में

---

१. उद्धृत, सूक्ति सागर, पृष्ठ ४१४

२. रामायण कालीन आर्य संस्कृति—निबन्ध माला, प्रथम भाग, पृष्ठ ४

विद्वानों द्वारा विभिन्न मत प्रस्तुत किए गए हैं। सामान्य लोगों की दृष्टि में नर सामान्य रूप से मनुष्य ही माने गए हैं। राक्षस कराल दांत वाले, भयंकर आकृति वाले, सूप जैसे कान वाले, पर्वत गुहा जैसी नाक वाले, भयानक दरी के सदृश मुंह वाले और बड़े-बड़े गवाक्षों के सदृश्य नेत्र वाले ही बना दिए गए हैं। उन्हें गोभक्षक, विकराल, दीर्घकाय और विजातोय जीव कहा गया तथा वानरों को भी इस मत से सामान्य पशु लम्बी पूंछ वाले बन्दर कहा गया।[१]

अर्वाचीन शिक्षक राक्षसों और वानरों को मनुष्य तो मानते हैं परन्तु उन्हें अनार्य समझते हैं।[२] प्रस्तुत सन्दर्भ में डा० बुल्के ने ह्वीलर के मत को उद्धृत करते हुए अपना मत प्रस्तुत किया है कि "जे० टी० ह्वीलर राम-कथा को ब्राह्मण और बौद्ध संघर्षों का प्रतीक मानते हैं। बौद्धों से उनका अभिप्राय राक्षसों से है। किन्तु रामायण में राक्षसों का जो चित्रण हुआ है। उसमें उनके बौद्ध होने का कोई संकेत नहीं मिलता। राक्षस ब्राह्मण विरोधी अवश्य हैं, पर वे यज्ञ करते हैं और नर भक्षी भी कहे जाते हैं।[३]

डा० व्यास ने वानरों के विषय में विद्वानों के मतों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि 'गोरेशियो, ह्वीलर आदि अन्य विद्वान् वानरों को दक्षिण भारत की पहाड़ियों में निवास करने वाली अनार्य जाति मानते हैं। वे मूलत: वनचर लोग थे। पर जैसा कि उनकी शिक्षा, दीक्षा एवं धार्मिक कृत्यों से प्रकट है, वे अन्य जातियों की अपेक्षा अधिक सरलता और शीघ्रता से आर्य संस्कृत में दीक्षित हो गए।[४]

---

१. रामायण कालीन आर्य संस्कृति—निबन्ध माला, प्रथम भाग, पृ० ४,५
२. वही पृ० ५
३. राम कथा पृ० ६६, १००
४. रामायण कालीन समाज, "वानर शीर्षक"

वस्तुतः नर, वानर और राक्षसों के विषय में रामायण स्वयं प्रमाण है। राम एक श्रेष्ठ पुरुष के रूप में रामायण में वर्णित हैं।[1] रामायणानुसार वानर और राक्षस भी मनुष्य के अतिरिक्त किसी अन्य कोटि या श्रेणी में नहीं आते। वानर और राक्षस भी मनुष्य ही थे।

वानरों की मनुष्यत्व सिद्धि—

रामायण में वानरों की मनुष्यत्व सिद्धि एवं आर्य होने के निम्नलिखित प्रमाण हैं :—

१. वानरों में चतुराश्रम व्यवस्था थी। हनुमान ने कहा था कि यदि मैं सीता का पता नहीं लगा पाया, तो मैं वानप्रस्थ हो जाऊँगा।[2]
२. वानरों के संस्कार होते थे। वालि की मृत्यु पर उसका विधिवत् मृत्यु-संस्कार हुआ था।[3]
३. वानर सन्ध्योपासना करते थे।[4]
४. वानर वेद वेदाङ्गों के ज्ञाता थे।[5]
५. वानर राजाओं के राज्याभिषेक संस्कार आर्य राजाओं के समान ही विधिवत् मन्त्रों द्वारा एवं यज्ञों के सम्पादन से होते थे।[6]
६. सुग्रीव का यह कथन वानरों की मनुष्यत्व की सिद्धि करता है कि "मनुष्य को छद्मवेषचारी शत्रुओं को जानना चाहिये।[7]

---

१. वा० रा० १।१।५, ७
२. वही ५।१३।४०; ५।१३।४५
३. वही ४।२५।४६; ५०, ५१
४. वही ७।३४।६, १२
५. वा० रा० ४।३।२६, ३०; ७।३६।४६ आदि
६. वही ४।२६।२८, २६, ३१
७. वही ४।२।२२

७. सुग्रीव द्वारा राम के साथ अग्नि को साक्षी करके मित्रता करना[1] भी वानरों का मनुष्यत्व एवं आर्यत्व-सिद्ध करता है।

८. 'वानर' पुत्र एवं पत्नियों वाले तथा गृहस्थ थे। वे धन सम्पति से युक्त एवं वस्त्राभूषणों से अलङ्कृत कहे गये हैं।[2] अतः वे मनुष्य ही थे।

९. वानर द्युतिमान्, कान्तिमान्, शूरवीर, नितिज्ञ, बुद्धिमान् एवं इन्द्रतुल्य पराक्रम सम्पन्न तथा गुणों से युक्त कहे गये हैं।[3]

१०. हनुमान् द्वारा भिक्षुवेष धारण करके राम के समीप जाना एवं मधुर तथा शुद्ध भाषा में वार्तालाप करना[4] भी वानरों के मनुष्यत्व की सिद्धि करता है।

११. वानरों में राजपद वंशपरम्परागत था। राजा का ज्येष्ठ पुत्र ही राजपद का अधिकारी होता था।[5] इससे स्पष्ट है कि वानर मनुष्य ही थे।

१२. वानरों की समुचित राज्य व्यवस्था;[6] उन्नत सभ्यता एवं संस्कृति[7] भी इस बात को स्पष्ट करती है कि वानर आर्य एवं मनुष्य थे।

१३. राम का वानरों के प्रति यह कथन भी वानरों की मनुष्यत्व सिद्धि का प्रमाण है कि "वानर" रणस्थल में मनुष्य का

---

१. वा० रा० ४।३।१५, १६, १७
२. वही ४।१०।२६; ४।१७।५; ४।५३।२६
३. वही ३।७२।१२, १३, १४; ४।२।२३; ४।१८।६१; ४।१६।१३
४. वही ४।३।२, ३, २८, २६
५. वही ४।६।२, ३
६. वही ४।६।४
७. वही ४।३३।४ आदि

रूप धारण न करें[1] क्योंकि ऐसा करने से अपने और पराये की पहचान न हो सकेगी। इससे स्पष्ट है वानर ही नहीं, अपितु, राक्षस भी मनुष्य ही थे।

१४. वानर सनातन धर्म को मानते थे। राम ने वालि को सनातन धर्म की मर्यादा का उलङ्घन करने के कारण दोषी कहा था।[2] राम ने 'मानवधर्मशास्त्र' के अनुसार ही वालि को दण्ड दिया था।[3] मानवधर्म शास्त्र मनुष्यों के लिये ही है न कि पशुओं के लिये।

अतः उक्त से स्पष्ट है कि वेदोक्त नियमों के ज्ञाता एवं तद्वत् आचरण करने वाले, सनातन धर्म के ज्ञाता, संस्कृत, राजनीतिज्ञ, उन्नत राष्ट्र वाले, विकसित सभ्यता एवं संस्कृति वाले, वस्त्रों तथा आभूषणों से अलंकृत रहने वाले, पत्नी, पुत्र, सम्पत्ति एवं भवनों वाले तथा संगठित समाज वाले 'वानर' पशु या अनार्य नहीं थे, अपितु मनुष्य एवं आर्य ही थे।

'वानर' नामकरण—

रामायण में उल्लिखित वानर जाति के मनुष्यों के लिये वानर नामकरण के विषय में पण्डित विष्णु दामोदर शास्त्री का मत उल्लेखनीय है—"रावण से युद्ध करने के लिये कोट्यधिक सैनिकों की सेना तैयार करने की आवश्यकता थी······अतएव ऐसी ही सेना तैयार करने की आवश्यकता समझी गई कि जिसको अन्न, वस्त्र, डेरे, बारगें आदि की आवश्यकता न पड़े। शीत, उष्ण, पर्जन्य, क्षुधा, तृषा आदि सहन करने वाले, सुदृढ़ निश्चयी, साहसी और चपल ऐसे ही वीर उस सेना में चाहिये थे। उक्त गुणों से युक्त तथा मनुष्य से सादृश्य रखने वाला ऐसा एक ही प्राणी बन्दर दिखाई दिया और उसी का प्रतीक सम्मुख रखकर उक्त वानर सेना तैयार करने का उपक्रम किया गया। सारांश यह है कि

---

१. वा० रा० ६।३७।३३
२. वही ४।१८।१८
३. वही ४।१८।३०, ३२, ३३।

महर्षि वाल्मीकि जी द्वारा वर्णित वानर आकृति से मनुष्य, किन्तु गुण और प्रकृति से वानर (बन्दर) बनाये गये और उन्हें वानर संज्ञा दी गई।"[1]

रामायण में वानरों के लिये शाखामृग, प्लवंगम, हरि, कपि, वनचारी, वनौकश आदि नाम भी हैं।[2] यह इसी बात के द्योतक हैं कि ये वानर जाति के व्यक्ति बन्दरों के समान धर्म वाले थे।

श्री विष्णु दामोदर शास्त्री ने वानरों के मुँह और लाँगूल के विषय में संदेह का निवारण करते हुये लिखा है कि 'वानरों के मुंह बन्दरों के नहीं थे, किन्तु वे उनके मुंह पर बन्दरों की मुखाकृति के बनाकर चढ़ाये हुये शिरस्त्राण थे। इसी तरह "पुच्छ" जो कहा गया है वह भी उनको कमर से लपेटे हुये पाशसंज्ञक आयुध का पीछे को लटकता हुआ एक शिरा (छोर) था। यह शिरा लटकता हुआ होने के कारण उसको पुच्छ कहा गया है।[3]

वस्तुतः वानर मनुष्य एवं आर्य थे। क्योंकि ये वानर सत्यसन्ध, विनीत, धृतिमान्, मतिमान्, दक्ष, प्रगल्भ, द्युतिमान् एवं महापराक्रमी कहे गये हैं[4] एवं इन वानरों की स्त्रियाँ भी बुद्धिमती कहीं गईं हैं।[5]

राक्षसों की मनुष्यत्व सिद्धि—

वानरों के समान राक्षस भी मनुष्य ही थे। रामायण में राक्षसों की मनुष्यत्व सिद्धि के निम्नलिखित प्रमाण हैं—

---

१. रामायण कालीन आर्य संस्कृति, निबन्ध माला, प्रथम भाग, पृ० ५०, ५१
२. वा० रा० ४।२।५, ८, १०, १५, १७; ४।१७।२३, २८ ४२; ५।३४।२०, २४
३. रामायण कालीन आर्य संस्कृति निबन्ध माला
४. वा० रा० ३।७२।१३, १४
५. वही ४।२२।१२, १३

रूप धारण न करें[1] क्योंकि ऐसा करने से अपने और पराये की पहचान न हो सकेगी। इससे स्पष्ट है वानर ही नहीं, अपितु, राक्षस भी मनुष्य ही थे।

१४. वानर सनातन धर्म को मानते थे। राम ने वालि को सनातन धर्म की मर्यादा का उलङ्घन करने के कारण दोषी कहा था।[2] राम ने 'मानवधर्मशास्त्र' के अनुसार ही वालि को दण्ड दिया था।[3] मानवधर्म शास्त्र मनुष्यों के लिये ही है न कि पशुओं के लिये।

अत: उक्त से स्पष्ट है कि वेदोक्त नियमों के ज्ञाता एवं तद्वत् आचरण करने वाले, सनातन धर्म के ज्ञाता, संस्कृत, राजनीतिज्ञ, उन्नत राष्ट्र वाले, विकसित सभ्यता एवं संस्कृति वाले, वस्त्रों तथा आभूषणों से अलंकृत रहने वाले, पत्नी, पुत्र, सम्पत्ति एवं भवनों वाले तथा संगठित समाज वाले 'वानर' पशु या अनार्य नहीं थे, अपितु मनुष्य एवं आर्य ही थे।

'वानर' नामकरण—

रामायण में उल्लिखित वानर जाति के मनुष्यों के लिये वानर नामकरण के विषय में पण्डित विष्णु दामोदर शास्त्री का मत उल्लेखनीय है—"रावण से युद्ध करने के लिये कोट्यधिक सैनिकों की सेना तैयार करने की आवश्यकता थी……अतएव ऐसी ही सेना तैयार करने की आवश्यकता समझी गई कि जिसको अन्न, वस्त्र, डेरे, बारगें आदि की आवश्यकता न पड़े। शीत, उष्ण, पर्जन्य, क्षुधा, तृषा आदि सहन करने वाले, सुदृढ़ निश्चयी, साहसी और चपल ऐसे ही वीर उस सेना में चाहिये थे। उक्त गुणों से युक्त तथा मनुष्य से सादृश्य रखने वाला ऐसा एक ही प्राणी बन्दर दिखाई दिया और उसी का प्रतीक सम्मुख रखकर उक्त वानर सेना तैयार करने का उपक्रम किया गया। सारांश यह है कि

---

१. वा० रा० ६।३७।३३
२. वही ४।१८।१८
३. वही ४।१८।३०, ३२, ३३।

महर्षि वाल्मीकि जी द्वारा वर्णित वानर आकृति से मनुष्य, किन्तु गुण और प्रकृति से वानर (बन्दर) बनाये गये और उन्हें वानर संज्ञा दी गई।"[1]

रामायण में वानरों के लिये शाखामृग, प्लवंगम, हरि, कपि, वनचारी, वनौकश आदि नाम भी हैं।[2] यह इसी बात के द्योतक हैं कि ये वानर जाति के व्यक्ति बन्दरों के समान धर्म वाले थे।

श्री विष्णु दामोदर शास्त्री ने वानरों के मुँह और लाँगूल के विषय में संदेह का निवारण करते हुये लिखा है कि 'वानरों के मुंह बन्दरों के नहीं थे, किन्तु वे उनके मुंह पर बन्दरों की मुखाकृति के बनाकर चढ़ाये हुये शिरस्त्राण थे। इसी तरह "पुच्छ" जो कहा गया है वह भी उनको कमर से लपेटे हुये पाशसंज्ञक आयुध का पीछे को लटकता हुआ एक शिरा (छोर) था। यह शिरा लटकता हुआ होने के कारण उसको पुच्छ कहा गया है।[3]

वस्तुतः वानर मनुष्य एवं आर्य थे। क्योंकि ये वानर सत्यसन्ध, विनीत, धृतिमान्, मतिमान्, दक्ष, प्रगल्भ, द्युतिमान् एवं महा-पराक्रमी कहे गये हैं[4] एवं इन वानरों की स्त्रियाँ भी बुद्धिमती कहीं गईं हैं।[5]

राक्षसों की मनुष्यत्व सिद्धि—

वानरों के समान राक्षस भी मनुष्य ही थे। रामायण में राक्षसों की मनुष्यत्व सिद्धि के निम्नलिखित प्रमाण हैं—

---

१. रामायण कालीन आर्य संस्कृति, निबन्ध माला, प्रथम भाग, पृ० ५०, ५१
२. वा० रा० ४।२।५, ८, १०, १५, १७; ४।१७।२३, २८; ४।१८।१५, ४२; ५।३४।२०, २४
३. रामायण कालीन आर्य संस्कृति निबन्ध माला प्रथम भाग पृ० ५१
४. वा० रा० ३।७२।१३, १४
५. वही ४।२२।१२, १३

(१) कृति में राक्षसगण कुलीन, मनस्वी, हितैषी, शूर और सावधान कहे गये हैं।[1] वे पूर्णचन्द्रमा के समान सुन्दर आनन वाले भी उल्लिखित हैं।[2] कुलीन एवं मनस्वी शब्द का प्रयोग राक्षसों के मनुष्यत्व का द्योतक है।

(२) राक्षस धर्मज्ञ, कृतज्ञ, राजधर्मविशारद, परमार्थतत्त्व के ज्ञाता, धर्मार्थ विनीत बुद्धि वाले, अच्छे और बुरे कर्मों का निर्णय करने वाले, धर्म, ज्ञान, लोकाचार एवं शास्त्रबुद्धि में अग्रणी कहे गये हैं।[3] अतः मनुष्योचित गुणों से युक्त होने के कारण राक्षस मनुष्य ही थे।

(३) राक्षसगण वेदोक्त क्रियाओं में विश्वास रखते थे एवं तद्वत् आचरण करते थे। वे स्वाध्याय निरत रहते थे एवं वेद पाठ करते थे।[4] अतः आर्य एवं मनुष्य थे।

(४) राक्षस वेद वेदाङ्गों के ज्ञाता थे एवं यज्ञ किया करते थे।[5] लङ्का में वेदाध्ययन-शालायें थीं।[6] ये राक्षसों के आर्योचित कर्मों का सूचक हैं।

(५) राक्षस जब युद्ध में जाते थे, तो उनकी विजय के लिये यज्ञ किये जाते थे एवं ब्राह्मणों को वन्दना की जाती थी।[7] "रावण" वेदज्ञों द्वारा पुण्यवाचन सुनता था एवं राक्षसों द्वारा विप्रों का सम्मान किया जाता था।[8] राक्षस स्वयं वेदमन्त्रों का उच्चारण करते थे।[9] अतः वे मनुष्य थे।

---

१. वा० रा० ५।५२।२४
२. वही ५।४९।७
३. वही ५।५२।७, १६, १७
४. वही ५।४।१२, १३
५. वही ५।१८।२
६. वही ६।१०।१६
७. वही ६।५७।२२
८. वही ६।१०।८, ९
९. वही ३।४६।१३

(६) राक्षसों का मृत्यु संस्कार वैदिक मन्त्रों द्वारा ही किया जाता था।[१] इससे भी उनकी मनुष्यत्व-सिद्धि होती हैं।

(७) सीता ने रावण को मनुष्य समझकर ही उसका यथोचित सत्कार किया था।[२] यदि राक्षसराज रावण मनुष्य के अतिरिक्त किसी विकृतिपूर्ण आकृति का होता, तो सीता उससे भयभीत होकर उसका सत्कार न करतीं।

(८) राक्षसों की स्त्रियाँ भी मनुष्यों की स्त्रियों जैसी ही थीं। रावण के अन्तःपुर में हनुमान् द्वारा दृष्ट स्त्रियों का वर्णन मानवीय स्त्रियों जैसा ही है।[३] अतः राक्षस मनुष्य ही थे।

(९) हनुमान् ने रावण की पत्नी मन्दोदरी में सीता का अनुमान किया था।[४] अतः राक्षसी स्त्रियाँ भी मानवी स्त्रियों जैसी ही थीं। अतः राक्षस मनुष्य ही थे।

(१०) रावण की स्त्रियाँ राजर्षियों, ब्राह्मणों, दैत्यों, गन्धर्वों एवं राक्षसों की कन्यायें थीं।[५] इनमें से कई युवतियों ने रावण को स्वयं वरण किया था।[६] अतः स्पष्ट है कि राक्षस रावण कोई विकृत आकृति वाला या अनार्य न होकर मनुष्य एवं आर्य ही था।

(११) राक्षसों के विवाह विधिवत् संस्कारयुक्त होते थे।[७] अतः वे मनुष्य ही थे।

(१२) रावण ब्रह्मा के वंशज विश्रवामुनि का पुत्र था।[८] अतः वह आर्य एवं मनुष्य ही था।

---

१. वा० रा० ६।११४।१०५
२. वही ३।४६।३२, ३४
३. वही ५।६।३४, ३५ आदि एवं ५ सर्ग १०, ११
४. वही ५।१०।५३
५. वही ५।६।६८
६. वही ५।६।६६, ७०
७. वही ७।१२।१६
८. वही ७।६।२७, २८

पं० विष्णु दामोदर शास्त्री ने राक्षसों के मनुष्यत्व की सिद्धि को प्रमाणित करते हुए लिखा है कि "रामायण में वर्णित राक्षसों के आचार विचार, धार्मिक संस्कार, व्यवहार, सामाजिक नीति तथा राजनीति, मनोवृत्ति तथा शरीर रचना इत्यादि गुणों का मनुष्य के उक्त गुणों से साम्य रखता है; अतः राक्षस मनुष्यों से भिन्न नहीं हो सकते हैं। अर्थात् राक्षस मनुष्य ही थे, यह निःसन्देह सिद्ध होता है।"[१]

राक्षस नामकरण—

रामायणानुसार राक्षसों का पक्ष अधर्म पक्ष था।[२] वस्तुतः वे मनुष्य, जिन्होंने क्रूर कर्मों को अपना लिया था,[३] राक्षस कहलाने लगे थे। ताड़का एवं उसका पुत्र मारीच दोनों ही अपने क्रूर कर्मों के कारण राक्षसत्व को प्राप्त हुये थे।[४]

राक्षसों ने परस्त्रीगमन, उनका हरण एवं उनके प्रति बल प्रयोग आदि दुष्कर्मों को करना अपना धर्म बना लिया था।[५] इस प्रकार वे धर्म को नष्ट करने वाले बन गये थे।[६] वे यज्ञविध्वंसक, क्रूर-कर्मा, ब्रह्मघाती, दयाशून्य एवं नरमांस को भक्षण करने वाले होने के कारण तथा प्रजाओं का अहित करने के कारण एवं नैतिकगुणों से रहित होने के कारण राक्षसत्व को प्राप्त हो गये थे।[७] अतः अपनी संस्कृति से च्युत होने वाले एवं क्रूरता तथा विलासता में लिप्त होकर अनार्यों का सा आचरण करने वाले तथा छलपूर्ण

---

१. रामायण कालीन आर्य संस्कृति, निबन्ध माला, प्रथम भाग, पृ० ६५
२. वा० रा० ३।६।१५; ६।३५।१३
३. वही ७।११।४०; ७।१३।८, ६, १०
४. वही १।२५।११
५. वही ५।२०।५
६. वही ३।३२।१२
७. वा० रा० ३।३२।२०, २१; ७।३२।३२

व्यवहार करने वाले[1] मनुष्य ही असुर या राक्षस कहलाये। जैसा कि पं० विष्णु दामोदर शास्त्री का कथन है कि "असुर नाम का कोई पृथक् कुल या जाति नहीं है। वह एक गुण बोधक सामान्य संज्ञा है। परन्तु उस संज्ञा का उपयोग सामान्यतः दानव, दैत्य और राक्षसों के लिये ही किया गया पाया जाता है। केवल ऐहिक सुख के लिये यत्नवान्, आत्मस्वार्थ व आत्मसुख के हेतु सारे जगत् का नाश हो जाये, तो भी उसकी परवाह न करने वाले दुरभिमानी, फल की ही इच्छा से कर्म करने वाले, अपने ऐहिक स्वार्थ के लिये दूसरों का जानबूझकर नुकसान करने वाले, परमेश्वर तथा मोक्ष को न मानने वाले, कामोपभोग को ही सारे जीवन की इति कर्तव्यता मानने वाले और अन्याय से धन संग्रह करने वाले इत्यादि मनोवृत्ति के जो मनुष्य होते हैं, वे असुर कहलाते हैं।[2]

अतः स्पष्ट है कि रामायण में वर्णित वे मनुष्य एवं आर्य ही राक्षसों तथा असुरों की कोटि में आ गये थे, जो कि नैतिकता के विरुद्ध कार्य करने वाले एवं अधर्म आचरण करने वाले तथा मर्यादा के विरुद्ध चलने वाले थे।

नर, वानर और राक्षसों के अतिरिक्त रामायण कालीन समाज के अन्य घटक सुर, असुर,[3] किन्नर,[4] गन्धर्व,[5] विद्याधर,[6] ऋक्ष,[7]

१. वा० रा० ६।८६।५
२. रामायण कालीन आर्य संस्कृति निबन्ध माला, प्रथम भाग, पृ० ६४
३. वा० रा० ६।३५।१२, १३; ६।६६।१६
४. वही ५।१।६; ७।२६।६; ७।३१।१६
५. वही १।१७।२०; ५।१।६; ७।३१।१६
६. वही १।१७।८, २०, २२
७. वही ४।३६।२०

रोहित,[1] आभीर,[2] पल्हव,[3] म्लेच्छ,[4] शक, यवन,[5] किरात[6] आदि भी थे। लेकिन इनकी सामाजिक व्यवस्था, सभ्यता और संस्कृति के विषय में रामायण में स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं हैं।

वस्तुत: रामायण कालीन समाज गुणानुसार एवं कर्मानुसार विभक्त, उपर्युक्त विभिन्न प्रकार की जातियों से युक्त मनुष्यों का ही समाज था, न कि मनुष्यों से भिन्न अन्य विशेष यौनियों का। मनुष्य ही अपने अपने आचरणों एवं प्रवृत्तियों के कारण वानर, राक्षस, सुर, असुर, किन्नर, गन्धर्व, म्लेच्छ, यवन, आदि कहलाये।

रामायण में वर्ण व्यवस्था—

रामायण कालीन समाज में वर्ण व्यवस्था थी। तत्कालीन समाज प्रमुख रूप से चार वर्णों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में विभाजित था।[7] यद्यपि वर्ण वंशपरम्परागत थे तथापि वर्ण व्यवस्था का आधार कर्म भी था। विश्वामित्र कर्म के आधार पर क्षत्रिय से ब्राह्मणत्व को प्राप्त हुये थे।[8] इसी प्रकार अन्धमुनि और उनकी पत्नी, जो क्रमशः वैश्य और शूद्रा थी,[9] (कर्मानुसार) मुनि और तपस्वी कहे गये हैं।[10]

रामायणानुसार ब्राह्मण अपने उत्कृष्ट कर्मों एवं गुणों के कारण समाज में श्रेष्ठतम थे। वे पवित्र, स्वकर्मनिरत एवं जितेन्द्रिय थे

---

१. वा० रा० ४।४१।२२
२. वही ६।२२।३२
३. वही १।५४।१८, १९, २०
४. वही १।५५।३; २।३।२५; ४।४३।११
५. वही १।५४।२०, २१; ४।४३।१२
६. वही १।५५।३
७. वही १।१।९३, ९७; १।६।१७, १९; ४।४।६; ६।१३१।१००
८. वही १।६५।२३, २४
९. वही २।६३।५०
१०. वही २।६४।२५, ३०, ३६; ५१

तथा दान एवं अध्ययन करने में संलग्न रहते थे।[1] १
की रक्षा करने में तत्पर रहते थे।[2] वैश्य व्यापारी एवं
इनके गण एवं निगम थे।[4] शूद्र वर्ण समाज की अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये विभिन्न कर्मों का सम्पादन करते थे।[5] समाज में आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये मणिकार, कुम्भकार, सूत्रकार, कारीगर, क्राकचिक (बढ़ई), स्वर्णकार, वैद्य, शौण्डिक (कलार), रजक, तन्तुवाय (दरजी), शैलूष, कैवर्तक (धीवर) आदि थे।[6]

रामायण के प्रारम्भिक काण्डों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि समाज में शूद्रों का स्थान अन्य वर्णों के ही समान था। रामायण में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र सभी लोभादि विकारों से विवर्जित[7] तथा अपने अपने कर्तव्यों का सन्तुष्ट होकर पालन करने वाले कहे गये हैं।[8] राजा समान रूप से चारों वर्णों के हित साधन में तत्पर रहता था।[9] चारों वर्णों के हितार्थ ही विश्वामित्र ने राम को ताड़का का वध करने के लिये आदेश दिया था।[10] राजोत्सवों में न केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य की बुलाये जाते थे, अपितु शूद्र भी आमन्त्रित किये जाते थे एवं सम्मान प्राप्त करते थे।[11] तीनों वर्णों के समान शूद्र को भी अध्ययन एवं ज्ञानार्जन करने का

---

१. वा० रा० १।६।१३
२. वही ३।१०।३
३. वही २।६७।१६; २।१००।४८
४. वही २।८३।११
५. वही १।६।१६
६. वही ७।८३।१२ से १५
७. वही ६।१३१।१००
८. वही ६।१३१।१००
९. वही १।१।९३; ४।४।६
१०. वही १।२५।१७
११ वही १।१३।२९

रोहित,[१] आभीर,[२] पल्हव,[३] म्लेच्छ,[४] शक, यवन,[५] किरात[६] आदि भी थे। लेकिन इनकी सामाजिक व्यवस्था, सभ्यता और संस्कृति के विषय में रामायण में स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं हैं।

वस्तुतः रामायण कालीन समाज गुणानुसार एवं कर्मानुसार विभक्त, उपर्युक्त विभिन्न प्रकार की जातियों से युक्त मनुष्यों का ही समाज था, न कि मनुष्यों से भिन्न अन्य विशेष यौनियों का। मनुष्य ही अपने अपने आचरणों एवं प्रवृत्तियों के कारण वानर, राक्षस, सुर, असुर, किन्नर, गन्धर्व, म्लेच्छ, यवन, आदि कहलाये।

रामायण में वर्ण व्यवस्था—

रामायण कालीन समाज में वर्ण व्यवस्था थी। तत्कालीन समाज प्रमुख रूप से चार वर्णों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में विभाजित था।[७] यद्यपि वर्ण वंशपरम्परागत थे तथापि वर्ण व्यवस्था का आधार कर्म भी था। विश्वामित्र कर्म के आधार पर क्षत्रिय से ब्राह्मणत्व को प्राप्त हुये थे।[८] इसी प्रकार अन्धमुनि और उनकी पत्नी, जो क्रमशः वैश्य और शूद्रा थी,[९] (कर्मानुसार) मुनि और तपस्वी कहे गये हैं।[१०]

रामायणानुसार ब्राह्मण अपने उत्कृष्ट कर्मों एवं गुणों के कारण समाज में श्रेष्ठतम थे। वे पवित्र, स्वकर्मनिरत एवं जितेन्द्रिय थे

१. वा० रा० ४।४१।२२
२. वही ६।२२।३२
३. वही १।५४।१८, १९, २०
४. वही १।५५।३; २।३।२५; ४।४३।११
५. वही १।५४।२०, २१; ४।४३।१२
६. वही १।५५।३
७. वही १।१।९३, ९७; १।६।१७, १९; ४।४।६; ६।१३१।१००
८. वही १।६५।२३, २४
९. वही २।६३।५०
१०. वही २।६४।२५, ३०, ३६; ५१

तथा दान एवं अध्ययन करने में संलग्न रहते थे।[१] क्षत्रिय आर्तों की रक्षा करने में तत्पर रहते थे।[२] वैश्य व्यापारी एवं कृषक थे।[३] इनके गण एवं निगम थे।[४] शूद्र वर्ण समाज की अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये विभिन्न कर्मों का सम्पादन करते थे।[५] समाज में आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये मणिकार, कुम्भकार, सूत्रकार, कारीगर, क्राकचिक (बढ़ई), स्वर्णकार, वैद्य, शौण्डिक (कलार), रजक, तन्तुवाय (दरजी), शैलूष, कैवर्तक (धीवर) आदि थे।[६]

रामायण के प्रारम्भिक काण्डों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि समाज में शूद्रों का स्थान अन्य वर्णों के ही समान था। रामायण में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र सभी लोभादि विकारों से विवर्जित[७] तथा अपने अपने कर्तव्यों का सन्तुष्ट होकर पालन करने वाले कहे गये हैं।[८] राजा समान रूप से चारों वर्णों के हित साधन में तत्पर रहता था।[९] चारों वर्णों के हितार्थ ही विश्वामित्र ने राम को ताड़का का वध करने के लिये आदेश दिया था।[१०] राजोत्सवों में न केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य की बुलाये जाते थे, अपितु शूद्र भी आमन्त्रित किये जाते थे एवं सम्मान प्राप्त करते थे।[११] तीनों वर्णों के समान शूद्र को भी अध्ययन एवं ज्ञानार्जन करने का

---

१. वा० रा० १।६।१३
२. वही ३।१०।३
३. वही २।६७।१९; २।१००।४८
४. वही २।८३।११
५. वही १।६।१९
६. वही ७।८३।१२ से १५
७. वही ६।१३१।१००
८. वही ६।१३१।१००
९. वही १।१।९३; ४।४।६
१०. वही १।२५।१७
११ वही १।१३।१९

अधिकार था।[१] समाज में शूद्रों की हीनता के उदाहरण रामायण के उत्तरकाण्ड के अतिरिक्त अन्य काण्डों में उपलब्ध नहीं होते।

रामायण के उत्तरकाण्ड [जो कि निःसन्देह प्रक्षिप्त है]। में स्वार्थपरता के कारण ही समाज में शूद्रों की स्थिति की हीनता का उल्लेख किया गया है। कृति के प्रारम्भिक सर्गों में अन्ध वैश्य मुनि एवं उनकी शूद्रा पत्नी भी तपस्वी कहे गये हैं,[२] जबकि उत्तरकाण्ड में शूद्र शम्बूक को तपस्या के कारण वध के योग्य समझा गया।[३]

वस्तुतः मूल रामायण में सभी वर्ण समाज में समानाधिकारों से युक्त कहे गये हैं।

उपर्युक्त वर्णव्यवस्था न केवल आर्यों में ही थी, अपितु वानर और राक्षस भी रामायण में उल्लिखित सङ्केतों के आधार पर वर्णों में व्यवस्थित कहे जा सकते हैं। सुग्रीव के राज्याभिषेक पर ब्राह्मणों को रत्न, वस्त्र आदि प्रदान करके संतुष्ट किया गया था।[४] इससे स्पष्ट होता है कि वानरों में भी ब्राह्मण आदि वर्ण रहे होंगे। इसी प्रकार लङ्का में भी वर्ण व्यवस्था थी। राक्षस आशीर्वाद प्राप्त करने के लिये ब्राह्मणों को नमस्कार करते थे।[५] रावण ब्राह्मणों का सम्मान करता था।[६] इस प्रकार रामायण कालीन समाज में वर्ण व्यवस्था थी।

आश्रम व्यवस्था—

रामायणानुसार तत्कालीन समाज में वर्णव्यवस्था के अतिरिक्त आश्रम व्यवस्था भी थी। मनुष्य को चार प्रकार के आश्रमों—

---

१. वही १।१।६७
२. वही २।६४।२५, ३०, ३६
३. वही ७।७६।४
४. वा० रा० ४।२६।२६
५. वही ६।५७।२२
६. वही ६।१०।८, ६

ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास से अपने जीवन का समय विभाजित करते हुए तदनुसार कर्तव्य का पालन करना पड़ता था। रामायण में चारों प्रकार के आश्रमों में गृहस्थ आश्रम श्रेष्ठ कहा गया है।[१] ब्रह्मचर्य आश्रम अध्ययन के लिये नियत था।[२] गृहस्थ आश्रम में धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति की जाती थी।[३] वानप्रस्थ आश्रम में कन्दमल फलों से जीवन निर्वाह करते हुये मनुष्य वन में रहकर तपश्चर्या एवं योगाभ्यास करते थे।[४] ये लोग तापस या तपस्वी कहे जाते थे।[५] ये तपस्वी वृक्ष की छाल या मृगचर्म धारण करते थे, जटायें रखते थे तथा यथाशक्ति उपवास करते थे। ये नियमपूर्वक रहते थे। अतिथिसत्कार करना वानप्रस्थों का कर्तव्य था।[६] रामायणानुसार सन्यासी परिव्राजक या भिक्षु थे।[७] ये काषाय वस्त्र धारण करते थे, शिर पर चोटी रखते थे, पैरों में खड़ाऊ पहनते थे तथा दण्ड और कमण्डल लेकर भिक्षाटन से जीवन निर्वाह करते थे।[८] ये सन्यासीगण वेदमन्त्रोच्चारण करते थे।[९] इस प्रकार रामायणानुसार तत्कालीन समाज में मनुष्य का जीवन चार आश्रमों में विभाजित था।

रामायण कालीन समाज की सभ्यता एवं संस्कृति—

वर्णाश्रम व्यवस्था से युक्त तत्कालीन समाज की सभ्यता एवं संस्कृति विकसित एवं उन्नत थी। इस विषय में श्री एस० एस०

---

१. वा० रा० २।१०६।२२
२. वही १।१८।३७
३. वही १।६।५
४. वही ३।६।२ से १५ एवं ५।१३।४०
५. वही ५।१३।४५
६. वही २।२८।१२ से १५
७. वही ३।४६।२, ८
८. वही ३।४६।३
९. वही ३।४६।१३

धवन के विचार उल्लेखनीय हैं कि "नैतिक या चारित्रिक नियमों एवं आदर्शों से स्थायित्व एवं उच्चता के अतिरिक्त रामायण काल में भौलिक आदर्श भी पूर्णतः उच्च थे। नगरीय योजना, जो कि अठारहवीं शताब्दी के अन्त में ही आधुनिक संसार द्वारा ज्ञात हुई, रामायण काल में प्रचलित थी। लङ्का नगर का निर्माण प्रसिद्ध शिल्पकार विश्वकर्मा ने किया था तथा अयोध्या नगर की सुन्दर सृष्टि मानवेन्द्र द्वारा की गई थी।[1]

वस्तुतः रामायण के अनुसार तत्कालीन समाज सभ्यता और संस्कृति की दृष्टि से समुन्नत था।

उत्तरी भारत के आर्यों की सभ्यता—

रामायण में उल्लिखित उत्तरी भारत के राज्यों—कौसल, केकय, सिन्धु, सौवीर, सौराष्ट्र, विशाला, सांकाश्या, अङ्ग, वङ्ग, मगध, मत्स्य आदि में से केवल कौसल राज्य की ही सभ्यता एवं संस्कृति के विषय में कृति में विस्तृत वर्णन है। केकय आदि राज्य से सम्बन्धित थे अतः उन राज्यों की भी सभ्यता एवं संस्कृति कौसल राज्य के समान ही होगी।

कोशल अत्यन्त समृद्ध जनपद था। उसमें अयोध्या नगरी का सुचारु निर्माण मानवेन्द्र द्वारा किया गया था। उक्त नगर का निर्माण व्यवस्थित एवं सुनिश्चित रूपरेखा के आधार पर हुआ था। कला की दृष्टि से यह नगर उत्कृष्ट था। बारह योजना में विस्तृत यह नगर महापथों में सुविभक्त था। विशाल राजमार्गों से शोभित उक्त नगर रत्न खचित प्रासादों से युक्त था। इसमें निर्मित भवन विमानाकार एवं उन्नत थे।[2] इनका शुभ्रवर्ण था।[3] अयोध्या

---

१. "द हिन्दुस्तान टाइम्स" दिनांक १९।१।७३
२. वा० रा० १।५।६, ७, ८, ११, १५, १६, १९
३. वही २।१७।२

के राजभवन हिमालय के समान उत्तुंग कहे गये हैं।[1] ये भवन विशाल तथा अनेक कक्षों वाले थे। राजकुमारों के भी पृथक् पृथक् भवन होते थे, जो अत्यन्त रमणीक, समृद्ध, अलंकृत एवं अनेक कक्षों से युक्त होते थे ।[2] अयोध्या में राजमार्गों पर जलसिंचन किया जाता था एवं पुष्पों को विखेरा जाता था।[3] रात्रि में प्रकाश की व्यवस्था की जाती थी।[4] उत्सवों के अवसर पर इस नगर की शोभा दर्शनीय होती थी।[5]

अयोध्या नगर अत्यन्त समृद्ध कहा गया है। यह रत्नों से समृद्ध था।[6] इसमें सुन्दर बाजारों की व्यवस्था थी।[7] इसकी समस्त प्रजा धनवान्, धान्यवान् एवं अनेक पशुओं से सम्पन्न थी।[8] शुद्ध एवं विविध प्रकार की भक्ष्य, भोज्य, चोष्य एवं लेहय सामग्री,[9] सुन्दर एवं मूल्यवान् वस्त्र,[10] मूल्यवान् विविध आभूषण,[11] एवं भोगविलास की समस्त सामग्रियों से सम्पन्न तत्कालीन समाज विकसित एवं सम्पन्न सभ्यता[12] का द्योतक है।

उत्तराखण्ड के आर्यों को समस्त अस्त्र, शस्त्रों, यन्त्रों एवं शतघ्नियों आदि का पूर्ण ज्ञान था।[13] इस प्रकार उस समय उत्तराखण्ड में ज्ञान और विज्ञान की पूर्ण सम्पन्नता थी।

---

१. वा० रा० १।७७।१०
२. वही २।१५।४१, ४२, ४३
३. वही १।५।८
४. वही २।६।१८
५. वही २।७।२, ३; २।१७।१०६
६. वही १।५।१६; २।१६।४७
७. वही १।५।१०
८. वही १।६।७
९. वही १।५२।२३; २।५०।३९; २।९१।२०
१०. वही १।७।१४
११. वही १।६।१०, ११
१२. वही १।५।१२, १८; १।६।१०
१३. वही १।५।१०

उत्तरी भारत के आर्यों की संस्कृति—

समाज के लोगों के आचार विचार ही उस समाज की संस्कृति के प्रकाशक होते हैं।

विकसित सभ्यता के समान ही उत्तरी भारत के आर्यों की संस्कृति भी अत्यन्त उत्कृष्ट थी। रामायणानुसार तत्कालीन समाज के लोगों के आचार विचार शुद्ध एवं परिपक्व थे। मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक के समस्त संस्कार उस समय प्रचलित थे।[१] उस समय समाज शिक्षित था।[२] व्यक्ति शिक्षा के अनुसार ही आचरण करने वाले होते थे। समाज के लोग सन्तुष्ट, निर्लोभी, सत्यवादी, धर्मात्मा, जितेन्द्रिय, शीलवान्, आत्मवान्, आस्तिक, अनसूयक, अनुभवो, कृतज्ञ, वदान्य और देव तथा अतिथिपूजक थे।[3] तत्कालीन समाज में कामुकता, कायरता, नृशंसता, मूर्खता, नास्तिकता तथा क्षुद्रता का अभाव था।[४] समाज में यज्ञानुष्ठान प्रचलित थे।[५] समृद्ध और सम्पन्न होते हुये भी तत्कालीन समाज में व्यक्ति सम्पत्ति का दुरुपयोग नहीं किया करते थे,[६] अपितु वे धन को अच्छे कार्यों में लगाते थे।[७]

इस प्रकार तत्कालीन आर्यों की सदाचरण, धर्म एवं नैतिक विचारों से परिपूर्ण संस्कृति आधुनिक भारतीय समाज के लिये अनुकरणीय है।

वानरों की सभ्यता—

उत्तर भारत से आगे विन्ध्य पर्वत के दक्षिण की ओर वानरों

---

१. वा० रा० १।१८।२०; २।७६।११ आदि; २।७७।१
२. वही १।५।२३; १।६।१४
३. वही १।६।६, ६, ११, १३, १४, १७, १८
४. वही १।६।८, १२
५. वही १।५।२३; १।६।१२
६. वही २।१००।५५
७ वही २।१००।५६

का राज्य था। रामायण में किष्किन्धा के वर्णन के आधार पर हमें वानरों की सभ्यता का परिज्ञान होता है।

किष्किन्धा नगर व्यवस्थित रूप से निर्मित था। अतएव इसे कृति में रम्य कहा गया है।[1] इसमें मार्गों की सम्यक् व्यवस्था थी। मार्ग चन्दन, अगर और कमल पुष्प के पराग से सुगन्धित रहते थे। मार्गों को मेरेय और मधु की गन्ध से सुगन्धित रखा जाता था।[2] किष्किधा में पुष्पित उद्यानों की व्यवस्था थी।[3] इस प्रकार रामायण में किष्किन्धा पुरी की रम्यता का मनोहर वर्णन है।

रामायण में किष्किन्धा नगर की अतुलित सम्पन्नता का उल्लेख है। इसे रत्नों से परिपूर्ण कहा गया है।[4] यह नगर बाजारों से शोभित था एवं इसमें विशाल भवन निर्मित थे।[5] भवन व्यवस्थित, सुन्दर एवं दृढ़ थे।[6] वे शुभ्रवर्ण वाले, मालाओं से अलंकृत, स्वर्णरचित बन्दनवारों से सज्जित, समृद्धि से पूर्ण एवं उन्नत थे।[7] प्रासादों में अनेक कक्ष होते थे।[8] इस प्रकार किष्किन्धा नगर गृहव्यवस्था से व्यवस्थित, उपवनों से रमणीक, रत्नों और धनधान्य से परिपूर्ण एवं सुगन्धित पदार्थों से सुवासित रहता था।

वानरों को वस्त्राभूषण प्रिय थे। वे अत्यन्त सुन्दर थे एवं दिव्यमालाओं तथा सुन्दर वस्त्रों से सुशोभित रहते थे।[9] उनके

---

१. वा० रा० ४।३३।४
२. वही ४।३३।७
३. वही ४।३३।४, ५
४. वही ४।३३।४
५. वही ४।३३।५
६. वही ४।३३।११
७. वही ४।३३।१२, १३, १४, १६
८. वही ४।३३।१८
९. वही ४।३३।६, ६३

भवनों में भोग विलास की समस्त सामग्री उपलब्ध रहती थी। स्वर्ण और रजत के पलङ्ग, सुन्दर आसनें, मूल्यवान् आस्तरण एवं वाद्ययन्त्रों आदि का वानरगण उपयोग करते थे।[१] वानरों की स्त्रियाँ भी उत्तम मालाओं और आभूषणों से अलङ्कृत रहती थीं। वे नूपुर और कधंनी आदि अलङ्कारों से भूषित रहती थीं।[२] वानरों की स्त्रियाँ विधिवत् वस्त्रालङ्कारों से भूषित होकर सीता को देखने की इच्छा से विमानारूढ़ हुई थी।[३] इस प्रकार वानर समाज सुन्दर सुन्दर परिधानों एवं विविधालङ्कारों से मण्डित, अतएव सम्पन्न तथा सभ्य एवं पूर्ण विकसित था।

रामायणानुसार वानरों का भोजन प्रमुखरूप से फल एवं मूलकन्द आदि ही कहा गया है।[४] तथापि वानर समाज नाना प्रकार की भोजन सामग्री से पूर्णतः परिचित था। वानरगण विविध प्रकार के भोज्य पदार्थों का उपयोग भी करते थे। सुग्रीव के राज्याभिषेक के समय ब्राह्मणों को विभिन्न प्रकार के भोज्य पदार्थों से संतुष्ट किया गया था।[५] अक्षत, मधु, सरसों, दधि आदि पदार्थों का भी वानरगण उपयोग करते थे।[६] वानरगण मदिरा का भी प्रयोग करते थे।[७] इस प्रकार वानरों को भक्ष्य, भोज्य एवं पेय आदि पदार्थों का ज्ञान था।

अस्त्र, शस्त्र एवं यन्त्रों का भी वानरों को ज्ञान था। प्रमुख रूप से वानर नख, दंष्ट्र, पत्थर, वृक्ष एवं शिलाओं का ही प्रयोग

---

१. वा० रा० ४।३३।१९, २०
२. वही ४।३३।६४
३. वही ६।१२६।३२
४. वही ४।१७।२३
५. वही ४।२६।२८
६. वही ४।२६।२६; ६।९९।१३, १९
७. वही ४।३३।४३

करते थे। वे इनके अतिरिक्त विभिन्न शस्त्रों—तलवार, परिघ एवं यन्त्रों का भी प्रयोग करते थे।[1]

इस प्रकार वानरों की सभ्यता नगरीय व्यवस्था, वस्त्राभूषणों की उत्कृष्टता, भोज्य आदि पदार्थों की विभिन्नता एवं अस्त्र, शस्त्रों के ज्ञान की दृष्टि से विकसित थी।

वानरों की संस्कृति—

वानरों की संस्कृति मनुष्यों एवं आर्यों की ही संस्कृति थी। वानरगण दम, शम, क्षमा, धर्म, धैर्य आदि गुणों के ज्ञाता,[2] धर्माधर्म के विषय में विचारवान्,[3] नीति एवं विनय के जानने वाले,[4] धर्माचरण करने वाले एवं धर्माचरण की शिक्षा देने वाले,[5] नैतिक विचारों से युक्त,[6] विभिन्न शास्त्रों के ज्ञाता,[7] नीतिवान् तथा साम, दान, क्षमा आदि नैतिक गुणों में युक्त,[8] सत्यप्रतिज्ञ, विनीत,[9] कृतज्ञ[10] आदि मानवीय मूल्यों से उपेत थे।

वानरों में भी संस्कार प्रचलित थे। वालि का विधिवत् मृत्यु संस्कार हुआ था।[11] वानर यज्ञादि भी करते थे। सुग्रीव के राज-तिलकोत्सव पर अग्नि में आहुतियाँ दी गईं थीं।[12] इस प्रकार

---

१. वा० रा० ६।२२।६०; ६।७०।४७
२. वही ४।१७।१७
३. वही ४।१७।२०, २१
४. वही ४।१७।३०
५. वही ५।५१।२८, २९
६. वही ४।१७।१४ आदि; ५।५१।२१ आदि
७. वही ४।३।२९, ३०; ७।३६।४४ आदि
८. वही ४।२१।७
९. वही ३।७२।१३
१०. वही ४।३२।८, १०
११. वही ४।२१।११; ४।२५।१३, ३०
१२. वही ४।२६।२९

वानरों के आचार विचार नैतिकतापूर्ण थे। वे संस्कारों से अपने जीवन को उच्च एवं पूर्ण बनाते थे। उनकी संस्कृति उत्कृष्ट थी।

राक्षसों की सभ्यता—

रामायणानुसार राक्षसों की सभ्यता अत्यन्त विकसित थी। अधिक से अधिक साधनों से सम्पन्न होना उनकी विकसित सभ्यता के प्रमाण हैं।

राक्षसों की लङ्का नगरी का निर्माण सुव्यवस्थित रूप से विश्वकर्मा द्वारा किया गया था।[१] उसमें शुभ्र, पक्के एवं स्वच्छ मार्ग थे।[२] वह पुरी सुन्दर मार्गों से सुचारु थी।[३] राजमार्ग खिले पुष्पों से शोभित रहते थे।[४] लङ्का पुरी शुभ्र वर्ण वाले, उन्नत, ध्वजा एवं पताकाओं से युक्त, स्वर्ण के तोरणों से अलङ्कृत विशाल भवनों से शोभित होती थी।[५] उत्तुंग भवनों से युक्त लङ्का नगरी आकाश में उड़ने के लिये उद्यत प्रतीत होती थी।[६] लङ्का में निर्मित भवन पंक्तिबद्ध थे। वे सुवर्णमय स्तम्भों से युक्त थे। उनमें स्वर्ण के झरोखे थे। वे अनेक मंजिलों वाले थे। वे स्फटिक भवन मणियों से अलङ्कृत थे। उन भवनों के धरातल वैदूर्य मणियों से जटित थे। उनमें मोतियों के जाल शोभित थे। वे भवन स्वर्ण के विचित्र तोरणों से अलङ्कृत होते थे।[७] भवनों के द्वार स्वर्ण एवं वैदूर्य मणियों से निर्मित होते थे। भवनों की भित्तियाँ हीरों एवं स्फटिक मालाओं तथा अन्य मणियों से भूषित होती थीं। लङ्का में स्थित

---

१. वा रा० ५।२।२०, २१
२. वही ५।२।१७
३. वही ५।२।५०
४. वही ५।४।३
५. वही ५।२।१६, से १९
६. वही ५।२।२०
७. वही ५।२।५१ से ५४, ५६

भवनों का ऊपरी भाग स्वर्ण और रजत से निर्मित था। उन भवनों के सोपानों के तल वैदूर्य मणियों से निर्मित होते थे।[1]

लङ्का पुरी रम्य उपवनों से परिपूर्ण थी।[2] रामायण में लङ्कापुरी की उपमा रत्नों रूपी वस्त्रों से युक्त, गोशाला रूपी कर्णाभूषणों से युक्त एवं आयुधागार रूपी स्तनों से अलङ्कृत प्रमदा से की गई है।[3]

लङ्का नगर में प्रकाश के लिये दीपों की व्यवस्था थी।[4] लङ्का के भवन वज्र, अंकुश, कमल, स्वस्तिक आदि आकार से निर्मित थे। भवन मालाओं से अलङ्कृत रखे जाते थे।[5] इस प्रकार लङ्का नगरी अत्यन्त शोभामयी एवं सम्पन्न रूप से कृति में वर्णित है।

राक्षसगण मनोरंजन के समस्त साधनों से सम्पन्न थे।[6] राक्षसों के भवनों में विचित्र लतागृह, चित्रशालायें, क्रीड़ागृह, रतिगृह आदि मनोरंजनार्थ निर्मित थे।[7]

राक्षसगण वस्त्राभूषणों के अत्यन्त प्रेमी थे। वे मालाओं से मण्डित एवं चन्दन आदि से सुगन्धित रहते थे। वे नानावस्त्रों से सुसज्जित एवं श्रेष्ठ आभूषणों से भूषित रहते थे।[8] राक्षसों में अनेक राक्षस अत्यन्त सुन्दर भी थे।[9] राक्षसियाँ भी नूपुर एवं

---

१. वा० रा० ५।३।८, ९, १०
२. वही ५।३।२
३. वही ५।३।१८
४. वही ५।३।१९
५. वही ५।४।५, ७, ८
६. वही ५।१०।३८, ३९ आदि; ५।४।१०; ५।६।१२
७. वही ५।६।३६, ३७
८. वा० रा० ५।४।२१, २२; ५।१०।१५, १७, २५, २६, २७
९. वही ५।४।१९

करधनी आदि आभूषणों को धारण करतीं थी।[1] वे विविध प्रकार के वस्त्रों एवं मालाओं से अलङ्कृत होती थीं एवं विविध शृङ्गार करती थीं।[2] वे अत्यन्त मनोरम एवं चारु होती थीं तथा अपने सौन्दर्य से भवनों को विभूषित करती थीं।[3]

वस्त्राभूषणों की दृष्टि से राक्षस अत्यन्त समृद्ध थे। इनके हाथी, घोड़े और रथ भी स्वर्णाभूषणों से सज्जित रहते थे।[4] राक्षसगण स्वयं भी रजत जटित वस्त्रधारण करते थे।[5] लङ्का का सभा भवन स्वर्ण जटित कालीनों से युक्त था।[6] इस प्रकार उनके भवनों में भी विविध मूल्यवान् वस्त्रों का उपयोग किया जाता था। राक्षसों की वस्त्राभूषणों की समृद्धि इस प्रकार से स्पष्ट है कि लङ्का के दहन के समय राक्षसों के विविध बहुमूल्य वस्त्राभूषण अग्नि में दग्ध हुए थे।[7] निष्कर्षतः लङ्का में वस्त्राभूषणों का उद्योग समुन्नत रहा होगा।

राक्षसों का खानपान विशेष रूप से मदिरा और मांस था। राक्षसियाँ भी मदिरा और मांस में अनुरक्त रहतीं थी।[8] इसके अतिरिक्त राक्षसगण अन्य भोज्य पदार्थों का भी उपभोग करते थे। रावण की पानशाला के वर्णन में राक्षसों के विविध भोज्य पदार्थों का उल्लेख है।[9] राक्षसगण मांस आदि के अतिरिक्त भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और पेय आदि पदार्थों का सेवन करते थे एवं षड्रसों से

---

१. वा० रा० ५।४।११; ५।६।१०
२. वही ५।६।३४
३. वही ५।१०।५१; ५२
४. वही ३।२५।२२; ६।५६।२६; ५।४७।३, ४; ६।७१।१६
५. वही ५।१०।७
६. वही ३।११।१५
७. वही ५।५४।१७
८. वही ५।१७।१६, १७
९. वही ५।११।१० आदि

निर्मित खाद्यपदार्थों से भी परिचित थे।[१] मदिरा के शौकीन होने से वे विविध प्रकार की मदिरा का सेवन करते थे।[२] राक्षसों के पास भोग विलास सम्बन्धी उपकरणों का बाहुल्य था।[3]

राक्षस विविध अस्त्र, शस्त्रों एवं शतघ्नियों आदि यन्त्रों के ज्ञाता थे।[४] विशाल एवं भव्य पुष्पक विमान[५] राक्षसों की उत्कृष्ट सभ्यता का प्रमाण है।

विष्णु दामोदर शास्त्री ने वानर और राक्षसों की सभ्यता के विषय में लिखा है कि "रामायण में धर्म, राजनीति, शिल्पशास्त्र, वास्तुशास्त्र, युद्धशास्त्र, ललितकला आदि का वर्णन अति उच्च श्रेणी का है। ……जिस समाज की सभ्यता का इस प्रकार उच्च श्रेणी का वर्णन हो सकता है, वह समाज जंगली या अर्ध सभ्य नहीं हो सकता।[६]

राक्षसों की संस्कृति—

राक्षसगण प्रारम्भिक समय में श्रेष्ठ तपस्वी रहे थे।[७] वे धर्म-मार्ग पर चलते थे, सदाचरण करते थे एवं पवित्र रहते थे।[८] वे धर्मज्ञ, कृतज्ञ, राजधर्म-विशारद, परमार्थ तत्त्व के ज्ञाता, विनीत एवं लोकाचार तथा शास्त्र विचार में कुशल थे।[९] राक्षसों में संस्कार हुआ करते थे। वे यज्ञोपवीत संस्कार के विषय में ज्ञान रखते थे। उनके विवाह एवं मृत्यु संस्कार भी वेदोक्तरीति से होते

---

१. वा० रा० ५।११।१५, १६
२. वही ५।११।२०
३. वही ५ सर्ग ४ एवं ११
४. वही ५।३।२१; ५।६।२६
५. वही ५।७।८ आदि, ५ सर्ग ८
६. रामायण कालीन आर्य संस्कृति, निबन्ध माला, प्रथम भाग, पृ ७
७. वा० रा० ७ सर्ग १०
८. वही ७।१०।५, ६
९. वही ५।५२।७, १२, १६, १७, २४

थे।[1] वे वेदविद्या के ज्ञाता होते थे। वे स्वकर्म में अनुरक्त रहते थे।[2] वे मन्त्रोच्चारण करते हुये जप किया करते थे तथा स्वाध्याय में निरत रहते थे।[3] राक्षस यज्ञ किया करते थे। वे नित्य प्रति पूजा पाठ करते थे एवं अग्नि में आहुतियाँ दिया करते थे।[4]

राक्षसों की संस्कृति मूलतः आर्यों की ही संस्कृति थी। पूर्व में उनके आचार, विचार एवं व्यवहार आदि आर्यों के ही समान थे। वे तपश्चर्यानुसार एवं नियमानुसार आचरण भी करते थे।[5]

तपश्चर्या से वरदानों एवं सिद्धियों को प्राप्त करने के पश्चात् राक्षसगण अभिमानी एवं क्रूरकर्मा हो गये थे।[6] क्रूरता के कारण ही वे राक्षसत्व को प्राप्त हुये थे[7] एवं धर्म का उल्लङ्घन करने वाले बन गये थे।[8] परस्त्रीगमन, परस्त्रियों का अपहरण एवं उनके साथ बलात्कार आदि दुष्कर्मों को करना वे अपना धर्म समझने लगे थे।[9] इस प्रकार राक्षसों ने अधर्म पक्ष अपना लिया था[10] और वे आर्य संस्कृति के विपरीत आचरण करने लगे थे। उनकी "संस्कृति" उनकी शिक्षा एवं तद्वत् आचरण से हीन हो गई थी। वे मायावी बन गये थे तथा विलास में लिप्त रहने लगे थे।[11] इस प्रकार राक्षस

---

१. वा० रा० ६।८१।३२; ७।१२।१६; ६।११४।१०५
२. वही ६।९३।६३
३. वही ५।४।१२, १३
४. वही ५।६।१२
५. वही ७।११।११
६. वही ७।११।४०; ७।१३।८, ९, १०
७. वही १।२५।११
८. वही ३।३२।१२
९. वही ५।२०।५
१०. वही ६।३५।१३
११. वही ६।८६।५

गण मर्यादा, धर्म एवं नैतिकता के विरुद्ध आचरण करने वाले बन गये थे। उनकी मूल संस्कृति नष्ट हो गई थी एवं उनके आचार विचार घृणित हो गये थे।

रामायणकालीन समाज की विशेषतायें—

(१) रामायण कालीन समाज में स्त्रियों को उचित स्थान था। वे समाज में सम्मान की दृष्टि से देखी जाती थी एवं उन्हें अनेक सामाजिक तथा राजनीतिक अधिकार प्राप्त थे। तत्कालीन समाज में स्त्रियाँ शिक्षित होती थीं। तारा राजनीति की ज्ञाता थी। राजनीति के विषय में राजाओं को भी तारा के विचारों को ग्रहण करना एवं उसके निर्णय को मानना अपेक्षित था।[१] शिक्षिता केकयी युद्ध विद्या में विशारद अतएव युद्ध में भाग लेती थी। देवासुर संग्राम में केकयी ने युद्धस्थल में राजा दशरथ की सहायता की थी।[२]

इस प्रकार रामायण कालीन समाज में स्त्रियाँ मनुष्यों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चलती थीं एवं समाज के विकास एवं उसे सम्पन्न बनाने में सक्रिय सहयोग प्रदान करती थीं।

(२) रामायण काल में शिक्षा का सर्वाङ्गीण विकास था। तत्कालीन समाज में कोई भी व्यक्ति अशिक्षित नहीं था।[३] पर्वतों को यज्ञोपवीत धारण कर अध्ययन करने वाला कहा जाने[४] का अभिप्राय यही है कि रामायण काल में शिक्षा प्राप्ति के लिये सभी तत्पर थे।

रामायण काल में शिक्षा यज्ञोपवीत संस्कार के पश्चात् प्रारम्भ होती थी।[५] रामायणकाल में वेदवेदाङ्ग, पुराण, व्याकरण, सङ्गीत,

१. वा० रा० ४।२२।१२, १३
२. वही २।६।११, १६
३. वही १।६।१४
४ वही ४।२८।१०
५. वा० रा० ४।२८।१०

सामुद्रिकविद्या, ज्योतिष, चित्रकला, नृत्यकला, वास्तुकला, शास्त्र, नीति, वेदान्त, साहित्य, अश्वगजारोहणविद्या, धर्नुविद्या, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र आदि समस्त विद्याओं का अध्ययन-अध्यापन होता था।[1] औषधिविज्ञान में भी तत्कालीन समाज अत्यन्त उन्नति कर चुका था। शल्य चिकित्सा उस समय बड़ी सफलता से की जाती थी।[2]

रामायणकालीन समाज में शिक्षा प्राप्ति का सभी वर्णों को अधिकार था।[3] रामायणकाल में विभिन्न शास्त्रों की शिक्षा 'संस्कृतभाषा' के माध्यम से ही दी जाती होगी, क्योंकि तत्कालीन समाज में लोगों की बोलचाल की भाषा 'वैदिक-संस्कृत' एवं लौकिक संस्कृत दोनों ही थी। द्विजातियों की बोलचाल की भाषा वैदिक संस्कृत थी।[4] जब कि सामान्य लोगों की बोलचाल की भाषा लौकिक संस्कृत थी।[5] आर्य, वानर एवं राक्षस सभी संस्कृतभाषा में बातचीत करते थे। हनुमान् ने राम और लक्ष्मण से संस्कृत भाषा में ही बातचीत की थी।[6] इसी प्रकार हनुमान् ने सीता से भी लौकिक संस्कृत में वाग्व्यवहार किया था।[7]

रामायण कालीन शिक्षा की विशिष्टता यह थी कि शिक्षित व्यक्ति तदनुसार जीवन में आचरण करता था और अपने 'आदर्श' समाज के समक्ष उपस्थित करता था।[8] तत्कालीन समाज

---

१. वा० रा० १।६।१, १५; १।१८।२८; २।१।२७, २६; २।२।३१, ३५; २।८३।१४; २।१००।१५; ५।३५।१३; ६।६३।६३ आदि; ७।६४।५ से १०

२. वही १।४६।६; ५।२८।६

३. वही १।१।६७

४. वही ५।२०।१८

५. वही ५।३०।१७

६. वही ४।३।३० आदि

७. वही ५।३०।१७

८. वही २।१।११ आदि; २।२।२६ आदि

में व्यक्ति विद्याविनीत होते थे।[1] शिक्षा प्राप्त करके तदनुसार आचरण न करने वाले व्यक्ति का शास्त्रों का अध्ययन व्यर्थ समझा जाता था।[2] इस प्रकार विभिन्न शास्त्रों का अध्ययन करके व्यक्ति सदाचरण करते हुये समाज को सभ्य और संस्कृत बनाते थे।[3] वस्तुतः रामायण कालीन समाज ने शिक्षा को जीवन में उतारा था। जैसा कि डा० नानूराम व्यास ने लिखा है कि "प्राचीन भारत में शिक्षा का उद्देश्य समाज को साक्षर ही नहीं, अपितु सुसंस्कृत बनाना भी था। छात्र को स्वच्छता, शिष्टाचार, विनम्रता और सुशीलता की भावनाओं से प्रेरित कर उसे एक सुयोग्य नागरिक बनाना उसका यथार्थ लक्ष्य था। सच्ची शिक्षा विद्यार्थी को सभ्य, शिष्ट, सम्वेदनशील, दूसरों के दृष्टिकोण को समझने वाला, हठधर्मिता से दूर रहने वाला एवं तर्कसङ्गत बात को तुरन्त स्वीकार करने वाला बनाती थी। जब राम चित्रकूट पर भरत से प्रश्न करते हैं कि "कश्चित् ते सफलं श्रुतं !" 'क्या तुम्हारा अध्ययन या शास्त्रज्ञान सफल है?' तब उनका अभिप्राय यही था कि क्या तुम विद्या के शील और वृत्त (सुशीलता और विनम्रता) गुणों का अभ्यास करते हो एवं उनको तुमने आत्मसात कर लिया है?[4]

डा० नानूराम व्यास रामायणकालीन शिक्षा के सम्बन्ध में ये भी लिखते हैं कि रामायणयुग की शिक्षा में एक तारतम्य था। उसमें आदर्शों का समान और संतुलित विभाजन था। विद्यार्थी के व्यक्तित्व का सर्वाङ्गीण विकास करना, उसके शारीरिक और मानसिक, बौद्धिक और अध्यात्मिक, धार्मिक और व्यावहारिक, व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन को समुन्नत करना उसका मूलभूत आदर्श था। उस समय के आदर्श राजा, सुसंस्कृत प्रजा,

---

१. वा० रा० १।७।५
२. वही ५।५२।८
३. वही १।६।६ आदि
४. रामायण कालीन संस्कृति, पृ० १५४

कर्तव्यनिष्ठ अधिकारीगण और संघर्ष रहित समाज इसी साँस्कृतिक शिक्षा की देन थे।[1] वस्तुतः सुशिक्षा ही तत्कालीन समाज की उन्नत सभ्यता, श्रेष्ठ संस्कृति और सर्वाङ्गीण सम्पन्नता का आधार थी।

रामायणकालीन समाज में सभी वर्ण शिक्षित थे।[2] ये शिक्षित होकर अपने अपने कर्तव्यों का पालन करते थे।[3] राजा एवं शासक वर्ग वर्णानुसार तथा शिक्षा एवं योग्यतानुसार प्रजाजनों को कार्यों में नियुक्त करता था।[4] रामायणकालीन शिक्षा प्रणाली में सदाचरण की शिक्षा का विशेष महत्त्व था।[5]

रामायण कालीन शिक्षा प्रणाली की दो प्रमुख विशेषतायें थीं (१) सदाचरण की शिक्षा। (२) व्यक्ति की बुद्धि के अनुसार ही ज्ञान का वितरण।[6] उक्त विशेषतायें ही व्यक्ति को अनुशासन-हीनता से रोकने के लिये एवं स्वतः कार्यकर्म में प्रवृत्ति बनाये रखने के लिये प्रबल प्रेरणाश्रोत थीं।[7] (३) रामायण कालीन समाज में नैतिक शिक्षा का महत्त्वपूर्ण स्थान था। आर्य एवं वानर समाज नैतिक गुणों को आत्मसात कर लेने के कारण ही स्थायित्व, शान्ति, सुख और समृद्धि को प्राप्त था। नर और वानरों के आचार एवं व्यवहार विनम्रता, सच्चरित्रता, नैतिकता और धर्म से युक्त थे। निर्लोभभाव, सत्यवादिता, आस्तिकता, आचरण की पवित्रता, निश्छलता, भोगों के प्रति उदासीनता, धर्मशीलता, जितेन्द्रिय-भाव, कर्मनिष्ठा, दानशीलता, स्वाध्याय, अतिथिसत्कार,

---

१. रामायण कालीन संस्कृति पृ० १५८
२. वा० रा० १।६।१४
३. वही १।६।१९
४. वही १।१।९३; २।१००।२६, २७
५. वही १।६।६, ८, ९, १३, १४
६. वही १।६।१५
७. वही ६।१३१।१००, १०१

कृतज्ञता, अद्वेषभाव, संयम, शील, अहिंसा, परोपकार आदि नैतिक गुण तत्कालीन समाज की विशेषतायें थी।[1]

रामायणानुसार तत्कालीन समाज में सत्य से युक्त धर्म ही लोगों के श्रेय का साधन था। कृति में सत्य से युक्त धर्म लौकिक और परलौकिक सुख एवं कल्याण का मूल साधन कहा गया है।[2] रामायण में धर्म, अर्थ और काम त्रिवर्ग में सत्ययुक्त धर्म का स्थान सर्वोपरि निर्धारित है।[3] इस प्रकार धर्म तत्कालीन समाज में लोगों को दुष्कर्मों से निवारण के लिये अंकुश का कार्य करता था[4] एवं नैतिक भावों की उत्पत्ति का प्रेरणा श्रोत था।

रामायणकालीन समाज एक आदर्श समाज था। समाज में लोग परस्पर उदारता का व्यवहार करते थे। उनमें परिजनों या सेवकों के प्रति भी उदारता और दाक्षिण्य का भाव अपेक्षित था।[5] देवता, माता एवं पिता की सेवा शुश्रूषा आवश्यक समझी जाती थी।[6] सत्कर्म ही श्रेयस्कर मान्य था।[7] समस्त साधनों (धर्म, अर्थ, काम) का उत्पादक कर्म ही मान्य था।[8]

शुभाशुभ कर्मानुसार ही फल की प्राप्ति की भावना तत्कालीन समाज में व्याप्त हो चुकी थी।[9] अतः समाज में सभी मनुष्य अपने अपने कर्मों में ही संलग्न रहते थे।[10] तत्कालीन समाज में सत्कर्मों

१. वा० रा० १।६।६, ८, ६, ११, १३, १४, १७; ६।१३१।६६
२. वही २।१०६।१७
३. वही २।१०६।१६
४. वही ४।१७।४२
५. वही २।७५।३३
६. वा० रा० २।७५।४५
७. वही २।७५।४६; २।१०६।२८
८. वही ६।६४।७
९. वही २।६३।६
१०. वही १।६।१३, १६

का ही महत्त्व था।[१] राजा भी अपने अनैतिक कर्मों या अशुभकर्मों के बुरे फल को भोगने वाला कहा गया है।[२] तत्कालीन समाज में नीति और सत्य ही लोक और परलोक के लिये हितकर माना जाता था।[३] इस प्रकार रामायणकाल में व्यक्ति अपने को धर्म-बन्धन से आबद्ध मानकर ही[४] नीति के अनुसार आचरण करता था। रामायण में लोगों को सत्कर्म करने के लिये विशेष प्रेरणा दी गई।[५] कृति में नैतिकता के विरुद्ध आचरण, अपकार, कृतघ्नता, झूठ, सुरापान, चोरी एवं परनिन्दा और अनैतिक कर्म धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि के लिये बाधक कहे गये हैं।[६] इसी प्रकार पर स्त्री गमन भी धर्म का विनाशक कहा गया है।[७]

रामायण कालीन समाज में नैतिक गुणों के कारण आर्य लोगों में कामुकता, कायरता, नृशंसता, मूढ़ता, नास्तिकता, क्षुद्रता, चौर्यकर्म, परनिन्दा, झूठ आदि दुर्गुण नहीं थे।[८] रामायण में मर्यादारहित, पापाचरण से युक्त एवं चरित्रहीन व्यक्ति असम्मान के योग्य कहा गया है।[९] तत्कालीन समाज में नैतिक शक्तियों और धार्मिक प्रवृत्तियों को विकसित करके ही लोगों का चरित्रनिर्माण हुआ था। रामायण में स्पष्ट उल्लेख है कि चरित्र ही अकुलीन को कुलीन, भीरु को वीर और अपावन को पावन करने वाला कहा गया है।[१०] इस प्रकार तत्कालीन समाज में सच्चरित्रता और

१. वा० रा० २।१२।८०
२. वही २।१२।८०; २।१०६।२८
३. वही २।११।३०
४. वही २।१४।२४
५. वही ४।२१।५
६. वही २।७५।३१; ४।३३।४५, ४६; ४।३४।६, १०, १२
७. वही ३।६।४
८. वही १।६।८, १२, १४
९. वही २।१०९।३
१०. वही २।१०९।४

नैतिकता ही समाज के आधार थे। अतएव तत्कालीन समाज श्रेष्ठता को प्राप्त था। तत्कालीन समाज के आदर्श आज अनुकरणीय हैं।

रामायणकालीन समाज एवं समालोचनात्मक दृष्टि'—

रामायण से स्पष्ट है कि नर, वानर एवं राक्षसों की सामाजिक तथा राजनीतिक संस्थायें लगभग समान थीं। तत्कालीन नगरीय योजना एवं सामाजिक सम्पन्नता से स्पष्ट है कि रामायणकालीन सभ्यता नागरिक सभ्यता थी।

रामायणकालीन समाज व्यवस्थित एवं सम्पन्न था। भव्य भवनों का वैभव,[1] विचित्र, चमकीले एवं मूल्यवान् वस्त्राभूषणों का प्रयोग,[2] खाद्य, भोज्य, चोष्य, लेह्य आदि षड्रसों से सम्पन्न सुगन्धित विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थों का उपभोग,[3] अनेक अस्त्रशस्त्रों, यन्त्रों एवं तोपों का आविष्कार,[4] भव्य, आरामदायक तीव्रवेगवाले विमानों का निर्माण,[5] शिक्षा का सर्वाङ्गीण विकास एवं शल्य चिकित्सा का आविष्कार,[6] मनोरञ्जनों के विविध साधनों — क्रीड़ा, गीत, वाद्य, कुश्ती, मृगया, गोष्ठी, उत्सव आदि का प्रचलन,[7] उद्यानों का विकास,[8] कृषि के लिये सिंचाई के साधनों की व्यवस्था[9] जलयानों का निर्माण[10] आदि साधनों की उपलब्धि

---

१. वा० रा० १ सर्ग ५; ४ सर्ग १४; ५ सर्ग ३, ४
२. वही २।४।२१, २२, ३२ से ३४
३. वही १।५२।२३; १।५०।१६; २।६१।२०; ५।६।२०; ५।११।१५
४. वही १।५।१०, ११; ५।२।२१
५. वही ५।७।११ आदि; ५।६।१५ आदि; ६।१२४।११ आदि; ७।२३।१०
६. वही १।४६।६; ५।७८।६
७. वही २।६७।१५; ५।४।१०; ६।४०।१३
८. वही १।५।१४
९. वही २।१००।४६
१०. वही २।८४।८; ४।१६।२४; ५।१७।३

तत्कालीन समुन्नत एवं विकसित सभ्यता के प्रतीक हैं। इस प्रकार रामायणकालीन समाज में लोग अधिक साधन सम्पन्न थे। यह उस समय की श्रेष्ठ सभ्यता का द्योतक है।

आचार विचारों में धर्म और नैतिकता की मान्यता तत्कालीन संस्कृति की उत्कृष्टता का परिचायक है। सदाचरण एवं सत्कर्म में प्रवृत्ति तत्कालीन समाज की उल्लेखनीय विशेषता है।[१]

रामायणकालीन समाज आस्तिक था। समाज में लोगों को वैदिक धर्म में श्रद्धा थी।[२] धार्मिकभावना से रामायणकालीन समाज में विविधयज्ञ भी किये जाते थे। प्रजाजन नित्यप्रति आहुतियाँ देते थे[३] एवं अग्निहोत्र यज्ञ किया करते थे। वे जप भी किया करते थे।[४] राजाओं द्वारा भी प्रजा में धार्मिक वृत्ति उत्पन्न करने के लिये एवं इष्ट की सिद्धि के लिये विभिन्न यज्ञों-अग्निष्टोम, राजसूय, अश्वमेघ, वाजपेय आदि का विधान किया जाता था।[५]

रामायण में विभिन्न देवताओं की भी पूजा होती थी। ब्रह्मा, अग्नि, वायु, इन्द्र, वरुण, चन्द्र, सूर्य, मरुत, रुद्र, विष्णु, नारायण आदि देवताओं का रामायण में उल्लेख है।[६] राम ने युद्ध में विजयार्थ आदित्य की अर्चना की थी।[७] इस प्रकार रामायण काल में समाज में आध्यात्मिक भावना थी। सत्कर्म, धर्मानुसार आचरण एवं लोगों की पारस्परिक परोपकार की भावना से तत्कालीन समाज

---

१. वा० रा० ४।२१।५; २।१०६।४
२. वही २।१०६।१
३. वही १।६।१२; ५।६।१२
४. वही ५।४।१२
५. वही २।१००।६, ४।४।७; ४।५।५; ७।६६।६, १०
६. वही १।१५।१८; १।१८।१०; २।१०६।२८; ३।३।३६; ३।४०।१२; ५।१३।६५, ६६
७. वही ६।१०७।२६

की विशेषकर आर्य समाज या उत्तरभारतीय समाज की संस्कृति की उत्कृष्टता स्पष्ट होती है।

रामायणकालीन समाज की सुव्यवस्था श्रेष्ठ सभ्यता एवं उत्कृष्ट संस्कृति के निम्नाङ्कित कारण उल्लेखनीय हैं—

(क) तत्कालीन समाज में सम्यक् एवं सुचारु वर्णाश्रम व्यवस्था थी।[१] सभी लोगों को समानाधिकार प्राप्त थे।[२]

(२) समाज में समृद्धि एवं सम्पन्नता का प्रमुख आधार कृषि एवं व्यापार की उन्नति थी।[३]

(३) तत्कालीन समाज में लोगों में राष्ट्रीयता की भावना कूट कूट कर भरी हुई थी।[४]

(४) उस समय सचरित्रता, सदाचार एवं सत्कर्म करना लोगों का परम धर्म था।[५]

(५) राजा एवं शासक वर्ग तथा प्रजाजन सभी अपने कर्तव्यों का पालन करने के प्रति जागरूक थे।[६] शासक वर्ग विशेष रूप से प्रजा की रक्षा, समृद्धि एवं अनुरञ्जन के लिये उत्तरदायी था।[७]

उपर्युक्त कारणों से ही रामायणकालीन समाज समृद्धि एवं श्रेष्ठता को प्राप्त था। तत्कालीन समाज को उत्कृष्टता प्रदान करने वाले उपर्युक्त आदर्श आधुनिक समाज द्वारा अपने उत्कर्ष के लिये अनुकरणीय हैं।

---

१. वा० रा० २।१०६।२१, २२
२. वही १।१।८८, ८९, ९०, ९१; ६।१३१।९६
३. वही १।५।१४; २।६७।१९; २।१००।४५, ४६, ४८
४. वही १।६।१६
५. वही १।६।६, ८, ९, १४, १९; २।१०९।४; ४।२१।५; ६।१३१।९६
६. वही २।१००।४९; ६।१३१।१००, १०१
७. वही १।६।४; १।७।१०, १९

रामायणकालीन समाज के दोष—

रामायणकालीन समाज में व्यवस्था थी एवं सभ्यता तथा संस्कृति विकसित एवं उत्कृष्ट थी, तथापि तत्कालीन समाज में कतिपय कुरीतियाँ भी व्याप्त थीं। रामायण कालीन समाज के प्रमुख दोष निम्नाङ्कित रूप से उल्लेखनीय है—

(१) रामायण कालीन समाज में यद्यपि सभी वर्णों के व्यक्तियों को समान स्वतन्त्रता थी, तथापि उत्तरकाण्ड में वर्णित जातीय पक्षपात के कारण शूद्रों की स्थिति शोचनीय हो चुकी थी। वह वर्णों में हीन माना जाने लगा था।[1] इससे आगे चलकर समाज में विषमता हुई एवं विकृति उत्पन्न हुई। वर्णों के भेद भाव की स्थिति राष्ट्रीय एकता में बाधक बनी, जो कि राष्ट्र के हित के लिये घातक सिद्ध हुई।

(२) रामायणकालीन समाज में मांस एवं मदिरा के प्रयोग का आधिक्य था।[2] न केवल राक्षस या वानर ही मांस मदिरा में आसक्त रहते थे, अपितु उत्तराखण्ड के आर्य भी मांस और मदिरा का अधिकता से प्रयोग करते थे। ब्राह्मण भी मांस खाने से मुक्त न थे।[3] राक्षस तो पशु-पक्षियों के मांस-भक्षण के अतिरिक्त[4] नर मांस के भी भक्षक थे।[5] तथापि तत्कालीन समाज में मांस और मदिरा की बिक्री करना पाप समझा जाता था।[6] काल में मद्यपान तथा भोग आदि में आसक्ति भी असम्मानप्रद एवं धर्म अर्थ तथा काम के लिये बाधक कही गई है।[7] रामायण में आमिष भोजन भी मलवत् कहा गया है।[8]

---

१. वा० रा० ७।७४।२६
२. वही ४।३३।४३; ५।११।११ आदि; ७।४२।१८, १९
३. वही ४।१७।३७
४. वही ५।११।११ आदि
५. वही ५।२४।४१ ४७; ७।१३।४१; ७।१३।३२
६. वा० रा० २।७५।३
७. वही २।७५।४०; ४।३३।४५
८. वही ७।७४।१७

(३) रामायण कालीन समाज में मनुष्यों के विक्रय का प्रचलन उस समाज के लिये अभिशाप था। ऋचीक ने अपने पुत्र शुनः शेप को एक लाख गायों से विक्रय कर दिया था।[१] यद्यपि ऐसे स्थल रामायण में नगण्य हैं।

(४) रामायण कालीन समाज का एक महान् अभिशाप यज्ञों में 'बलि' देना था। यज्ञों में 'बलि' देना न केवल राक्षसों में ही प्रचलित था,[२] अपितु आर्य भी यज्ञों में इच्छानुसार 'बलि' देते थे।[३] यज्ञों में पशुबलि ही नहीं, अपितु 'नर' 'बलि' भी दी जाती थी।[४] रामायण में नरबलि का सङ्केत मात्र है।

उपर्युक्त दोष होने पर भी रामायण कालीन समाज सुव्यवस्थित एवं समुन्नत था। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, नैतिक आदि सभी क्षेत्रों में उस समय समुन्नति थी। वैभवपूर्ण जीवन को व्यतीत करने के लिये समस्त उपकरण एवं साधनों की सम्पन्नता, शिक्षा का सर्वाङ्गीण विकास, शल्य चिकित्सा का आविष्कार, विविध-आयुधों, यन्त्रों, तोपों, वायुयानों एवं जलयानों का निर्माण तत्कालीन सभ्यता की प्रगति के उल्लेखनीय प्रमाण हैं। इस प्रकार विभिन्न सुखसुविधाओं के साधनों का आविष्कार एवं विकास तत्कालीन सभ्यता की उन्नति का समर्थन करते हैं।

रामायण कालीन समाज में धर्म, अर्थ और काम का समान उपयोग करना उस समाज की संस्कृति की श्रेष्ठता का परिचायक है। आर्य, वानर एवं राक्षस सभी धर्म, अर्थ और काम को समान रूप से प्राप्त करने के लिए सचेष्ट रहते थे[५] एवं धर्माचरण को ही

१. वा० रा० १।६१।२०, २१
२. वही ६।७३।२०, २१; ६।८०।८, ६
३. वही १।१४।२८, ३०, ३१, ३६
४. वही १।६१।८
५. वही १।६।५; २।१००।६३; ४।३३।४५; ६।६३।६

श्रेष्ठ मानते थे।[1] इसीलिये तत्कालीन समाज में लोगों का जीवन सरल एवं स्वतन्त्र था।

रामायणकालीन समाज में व्याप्त सम्पन्नता, समृद्धि एवं आर्थिक स्वतन्त्रता तथा नैतिकता के कारण ही उस समय लोगों को राजनीतिक स्वतन्त्रता सम्प्राप्त थी।

रामायण कालीन धर्म

धर्म की परिभाषा—

धर्म अनेक गुणों के समुच्चय का नाम है। धर्म का क्षेत्र व्यापक है। धर्म की परिभाषा कुछ प्रमुख विचारकों द्वारा निम्नाङ्कित है—

(१) वेदव्यास के अनुसार सृष्टि को धारण करने के कारण धर्म कहा गया है। धर्म प्रजा को धारण करता है। जो धारण के साथ रहे, वह धर्म है।[2]

(२) मनु के अनुसार प्रजा पर शासन करने के कारण, रक्षा करने के कारण एवं सुप्त को जाग्रत करने के कारण दण्ड ही धर्म है।[3] मनु ने धर्म के दश लक्षण बताये हैं—धैर्य, क्षमा, दम, अस्तेय, पवित्रता, इन्द्रियनिग्रह, बुद्धि, विद्या, सत्य और अक्रोध।[4]

(३) आचार्य समन्तभद्र के अनुसार धर्म वह है जो जीवों को संसार के दुःख से दूर कर उत्तमसुख में धारण करता है।[5]

(४) कणाद के अनुसार जिससे लौकिक अभ्युदय और परम-कल्याण (मोक्ष) की प्राप्ति हो, वह धर्म है।[6]

---

१. वही ६।६३।१०
२. महाभारत, कर्णपर्व ६९।५७
३. मनुस्मृति ८।१४
४. वही ६।९२
५. रत्नकाण्डवकाचार
६. वैशेषिकदर्शनम् १।१।२

(५) शङ्कराचार्य के अनुसार जगत् की स्थिति का कारण तथा प्राणियों की उन्नति और मोक्ष का साक्षात् हेतु एवं कल्याण का भी हेतु धर्म है।[1]

(६) 'कल्याण' में धर्म की परिभाषा इस प्रकार उल्लिखित है कि 'धर्म' न तो मजहब है, न रिलीजन; 'भारतीय धर्म' अहिंसा, अस्तेय, सत्य, ब्रह्मचर्य, संयम, सदाचार जैसे सद्गुणों के समुच्चय का नाम है।[2]

(७) वाल्मीकि रामायण के अनुसार 'दया ही धर्म है',[3] 'सत्य ही धर्म है।'[4] धर्म से ही धन की एवं धर्म से ही सुख की प्राप्ति होती है। धर्म द्वारा ही सब कुछ प्राप्य है तथा धर्म ही संसार में सार है।[5]

वस्तुतः नैतिक गुणों का समुच्चय, सदाचरण एवं सत्कर्म ही धर्म है, जिससे जीवन में, समाज में और राज्य में सुख, शान्ति एवं स्थायित्व होता है।

रामायणानुसार धर्म किसी विशेष संस्था से सम्बन्धित न था, अपितु वह सर्वश्रेष्ठ गुणों का समुच्चय था। धैर्य, क्षमा, दम, अस्तेय, पवित्रता, इन्द्रियनिग्रह, बुद्धि, विद्या, सत्य, सत्कर्म, अक्रोध, आस्तिकता आदि गुण ही धर्म के रूप को स्पष्ट करते हैं।[6] रामायणानुसार धर्म में सत्य की स्थिति प्रधान थी।[7] धर्मवान् को

---

१. श्रीमद्भगवद्गीताशांकरभाष्य, पृ० १।
२. कल्याण, भाग ४४, अंक १२ पृ० १३२०
३. वा० रा० १।३३।६
४. वही २।१४।३
५. वही ३।६।३०
६. वही १।६।६, ६, १३, १४, १८, १६; २।२।४३
७. वही २।१४।३, ७; ७ सर्ग ५६ के पश्चात् अधिक पाठ सर्ग ३, श्लोक ३।

सत्याचरण आवश्यक था ।[१] रामायणानुसार तत्कालीन धर्म सम्पूर्ण समाज में व्याप्त था एवं उसका समाज पर प्रभुत्व था। समाज में लोगों के लिये धर्म का बन्धन ही उन्हें असत्कार्यों से रोकने के लिये पर्याप्त था।[२] कृति में उल्लेख है कि सत्ययुक्त धर्म में स्थित प्राणियों को मृत्युकृत भय नहीं होता है।[३] इस प्रकार रामायणानुसार धर्म ही श्रेष्ठगति का प्रदायक था।[४] रामायणकाल में धर्म ही समाज का धारण करने वाला एवं समाज की सुस्थिति तथा उत्कर्ष का कारण था। इस प्रकार रामायणकाल में धर्म की स्थिति महत्त्वपूर्ण थी।

रामायण में धर्म के प्रकार—

रामायण में राजा एवं शासकवर्ग से लेकर समस्त प्रजा के धर्मों का उल्लेख है। इस प्रकार कृति में विभिन्न प्रकार के धर्म उल्लिखित हैं, जो निम्माङ्कित हैं—

(१) राजधर्म,[५] (२) अमात्यधर्म,[६] (३) सैनिक धर्म,[७] (४) क्षात्रधर्म,[८] (५) वर्णधर्म,[९] (६) प्रजाधर्म,[१०] (७) स्त्रीधर्म,[११] (८) भ्रातृधर्म,[१२] (९) पुत्रधर्म,[१३] (१०) कुलधर्म,[१४] (११) भृत्यधर्म,[१५]

---

१. वा० रा० २।१४।८
२. वही १।२१।७; २।१४।२४
३. वही ६।४६।३५
४. वही ७।३।१०
५. वही १।१।१३; २।१००।४९; ३।६।१४
६. वही १।७।१; १।७।१०, १९
७. वही २।७५।२६
८. वही २।१०९।२०; ३।९।२७; ३।१०।३
९. वही १।६।१९; ६।१३१।१००
१०. वही ६।१३१।९६, १०१
११. वही २।२४।२१ आदि
१२. वही ४।२४।९, १०
१३. वही २।३४।५२; २।१०५।४१, ४२
१४. वही २।११।३०; २।७३।२३; २।११०।३४
१५. वही ६।१।७

(१२) मित्रधर्म,[1] (१३) गृहस्थधर्म[2] आदि।

रामायण में धर्म ही मानवजीवन के संचालक के रूप में वर्णित है। धर्म तत्कालीन समाज का प्रशास्ता था।

रामायणानुसार धर्म और राजनीति—

रामायणानुसार तत्कालीन समाज में धर्म का उच्च स्थान था। धर्म की सत्ता न केवल समाज के कार्यों के सम्पादन में ही सर्वोपरि थी, अपितु प्रशासनिक कार्यों का धर्म ही संचालक था।[3] इस प्रकार रामायणकालीन राजनीति धर्म से पूर्णतः सम्बन्धित एवं धर्म पर ही आधारित थी।

वस्तुतः धर्म से रहित राजनीति अस्तित्वहीन होती है। जैसा कि महात्मागाँधी का कथन है कि, 'जो लोग यह कहते हैं कि राजनीति का धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं, वे नहीं जानते कि धर्म का अर्थ क्या है……मेरे लिये धर्म से रहित राजनीति की कोई सत्ता नहीं। राजनीति धर्म का साधनमात्र है। धर्मरहित राजनीति मृत्यु का जाल है क्योंकि उससे आत्मा का हनन होता है।[4] महात्मा गाँधी ने धर्मरहित राजसत्ता को राक्षसी कहा है।[5] स्पष्ट है कि धर्म, जो नैतिकगुणों का समुच्चय है, राजनीति एवं शासन के लिये अपरिहार्य है। नैतिक नियम, जोकि धर्म में समाविष्ट होते हैं, राजनीति का आधार होते हैं। अतः धर्म ही राजनीति का मूल आधार होता है।

रामायणानुसार तत्कालीन राजनीति का मूल आधार धर्म था। धर्म की प्रधानता और महत्त्व के कारण ही रामायण में

---

१. वा० रा० ४।१८।३१
२. वही २।१०६।२८
३. वही ·।१००।४६; ३।६।११, १२, १४; ४।१८।२१; ५।५२।६
४. भारतीय राजनीति और शासन, पृ० ४१६
५. सूक्ति सागर, पृ० २४६

राजनीति के लिये राजधर्म का प्रयोग हुआ है।[१] रामायण काल में राजा की सफलता धर्मपूर्वक शासन करने में थी[२] एवं शासन की सफलता भी इस में ही थी।[३] शासन की सफलता के लिये राजा को राजधर्म विशारद होना आवश्यक था।[४] रामायण में राजागण धर्मज्ञ, सत्यसन्ध, धर्म की रक्षा करने वाले एवं धर्माचरण करने वाले कहे गये हैं।[५] इस प्रकार वे धर्मानुसार ही प्रजा की रक्षा करने के लिये तत्पर रहते थे।[६] रामायणानुसार तत्कालीन राजागण धर्मानुसार ही प्रजा की रक्षा करने के लिये बाध्य भी थे।[७] तत्कालीन राजागण केवल धर्म में ही आस्था रखने वाले होते थे।[८]

रामायणानुसार न केवल राजा अपितु सम्पूर्ण शासकवर्ग राजधर्मानुसार ही प्रजा की रक्षा करने के लिये बाध्य था[९] एवं प्रजा का धर्मपूर्वक अनुरञ्जन करने के लिये तत्पर रहता था।[१०] शासन के संचालन के कार्यों में प्रमाद से बचाने के लिये राजा पर धर्म का अंकुश रहता था।[११] इस प्रकार शासकवर्ग अधर्म का त्याग करके ही प्रजा का पालन करता था।[१२]

राजा की न्याय सभा में धर्मात्मा एवं धर्मज्ञ सभासद ही न्यायधीश के रूप में प्रतिष्ठित होकर न्याय कार्य करते थे।[१३] इस

---

१. वा रा० ५।५२।६
२. वही २।२।२५
३. वही २।२।२५
४. वही ५।५२।७
५. वही १।१।१३; १।६।२; २।२।३१; ५।५२।७
६. वही ४।४।६
७. वही २।१००।४६
८. वही २।१६।२०
९. वही १।७।१०
१०. वही १।७।१६
११. वही ४।१७।४२
१२. वही १।७।१६
१३. वा० रा० ७ सर्ग ५६ के पश्चात् अधिक पाठ, सर्ग ३ श्लोक ३४

प्रकार रामायणकालीन राज्यों में राज्य-कार्यों का संचालन धर्म-पारग एवं नीतिज्ञ लोगों के द्वारा ही होता था।[1] तत्कालीन शासन व्यवस्था में धर्म के विरुद्ध किसी व्यक्ति को दण्ड देने का भी विधान नहीं था। धर्मानुसार ही तद्विषयक व्यवस्था थी।[2] राज्य के कार्यों के सम्पादन के लिये धर्मानुसार ही आदेश दिये जाते थे।[3] इस प्रकार शासक वर्ग के लिये नीति, विनय, अनुग्रह, विग्रह आदि अनुष्ठेय होने पर भी उपर्युक्त नीतियों के अनुष्ठान में वह स्वेच्छाचारी नहीं हो सकता था।[4] राजा इन कार्यों को करने के लिये धर्मानुसार ही बाध्य थे।

इस प्रकार रामायण काल में राजनीति का मूल आधार और शासन के संचालन का आधार धर्म ही था। निष्कर्षतः रामायणानुसार तत्कालीन राजनीति का धर्म से घनिष्ट सम्बन्ध था।

———

१. वा० रा० ७ सर्ग ५९ के पश्चात् अधिक पाठ सर्ग १ श्लोक ३
२. वही ४।१८।३७
३. वही ४।१८।९
४. वही ४।१७।३०

उपसंहार

आधुनिक सन्दर्भों में रामायणकालीन राजनीति—

रामायण में केवल राजतन्त्रीय शासन प्रणाली का ही वर्णन है, तथापि उसमें राजपद वंशानुक्रमिक होने पर[1] भी शासन में जनतन्त्रीय भावना का सर्वत्र आदर किया गया है।[2] इस प्रकार तत्कालीन राजतन्त्र पूर्ण मर्यादित राजतन्त्र थे। उस समय जनतन्त्रीय भावना प्रबल थी। राजा का पद आनुवंशिक होने पर भी पौरजानपद (पुर और जनपद की जनता की प्रतिनिधि संस्था) द्वारा उसका निर्वाचन होता था।[3] शासन के कार्यों में जनता का हाथ था।

रामायणकालीन शासन का संचालन धर्म एवं नैतिक नियमों द्वारा होता था।[4] उस समय राजनीति का आधार ही धर्म था। चारों वर्णों का धर्म एवं नीति के अनुसार पालन करना राजा एवं शासक वर्ग का परम कर्तव्य था।[5] राजा प्रजा के पालन में धर्म की दुहाई देता था।[6] इस प्रकार रामायण कालीन राजनीति में धर्म अर्थात् नैतिकगुणों का महत्त्वपूर्ण स्थान था।

---

१. वा० रा० २।११०।३३; ४।६।२, ३
२. वही २ सर्ग २
३. वही २।२।१६, २०
४. वही ३।६।११, १२, १४; २।१००।४६; ४।१८।२१; ५।५२।६
५. वही १।७।१६; ४।४।६
६. वही २।१।२५

रामायण कालीन राजनीति संवैधानिक राजतन्त्र की संचालक थी। रामायण कालीन राजनीति में राजा की स्वच्छन्दता को व्यवहार एवं सिद्धान्त दोनों ही रूपों में मान्यता न थी।[१] राज्य या समाज को धारण करने से ही तत्कालीन राजनीति राजधर्म कहलाती थी।[२] रामायण कालीन राजनीति में विधि की प्रधानता, उचित न्याय, आर्थिक प्रगति एवं नैतिक उत्थान तथा लोक हिताय नैतिक नियम प्रधान रूप से सन्निहित थे। इसीलिये तत्कालीन राजनीति सजीव थी एवं समाज को अराजकता से बचाने में पूर्ण सक्षम थी।

वस्तुतः नैतिक गुणों से रहित राजनीति जीवन रहित हो जाती है एवं राजनीति के जीवन रहित हो जाने से समस्त धर्म (सभ्यता तथा संस्कृति के आधार) नष्ट हो जाते हैं।[३] इस प्रकार राज्य में अराजकता उत्पन्न होती है एवं राज्य का अपकर्ष होता है। अतः राजनीति को सजीव बनाने के लिये धर्म (नैतिक गुणों) को राजनीति का आधार बनाना आवश्यक है। वस्तुतः समस्त लोक राजधर्म में केन्द्रित रहते हैं।[४] यदि राजनीति 'धर्म' या नैतिक गुणों से रहित हो जाती है तो राज्य एवं समाज का विनाश प्रारम्भ हो जाता है।

रामायणानुसार तत्कालीन राजनीति नैतिक गुणों या धर्म पर आधारित थी। रामायण कालीन-राजनीति के उद्देश्य अनीति का दमन, नीति का उन्नयन, पशुता का विरोध और मानवता का प्रवर्धन था। इसीलिये तत्कालीन राजनीति राज्य के स्थायित्व एवं उत्कर्ष का आधार थी।

---

१. वा० रा० ४।१७।३०

२. वही ५।५२।६

३. महाभारत, शान्ति पर्व ६३।२८

४. वही ६३।२९

वर्तमान में देश में सुव्यवस्था एवं शान्ति की स्थापना के लिये, उसके स्थायित्व एवं उत्कर्ष के लिये, लोगों की भौतिक एवं नैतिक उन्नति के लिये तथा सर्वाङ्गीण विकास के लिये सत्य, सदाचरण, कर्तव्यनिष्ठा, अनुशासन, संयम, समता, सौहार्द्र आदि नैतिक धर्मों से युक्त रामायणकालीन राजनीति का आश्रय लेना एवं उसकी नीतियों के अनुसार ही शासक एवं प्रजा वर्ग द्वारा आचरण किया जाना ही श्रेयस्कर है।

निष्कर्षतः अधुना रामराज्य की स्थापना के लिये रामायण कालीन राजनीति के स्वरूप का आश्रय लेना अनिवार्य है।

——०——

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

१. ऋग्वेद संहिता
२. अथर्ववेद संहिता
३. यजुर्वेद संहिता
४. तैत्तिरीय ब्राह्मण
५. ऐतरेय ब्राह्मण
६. शतपथ ब्राह्मण
७. शिव संहिता
८. वशिष्ठ संहिता
९. वाल्मीकि रामायण
१०. महाभारत
११. कौटिलीय अर्थशास्त्र
१२. मनुस्मृति
१३. शुक्रनीति
१४. कामन्दकीय नीतिसार
१५. पञ्चतन्त्रम्—विष्णु शर्मा
१६. नीतिवाक्यामृतम्—सोमदेवसूरि
१७. नीतिशतकम्—भर्तृहरि
१८. अग्निपुराण
१९. गरुड़ पुराण
२०. मत्स्य पुराण
२१. मार्कण्डेय पुराण
२२. रघुवंशम्—कालिदास

२३. अध्यात्म रामायण
२४. आनन्द रामायण
२५. कृत्तिकावासीय रामायण
२६. ध्वन्यालोक—आनन्दवर्धन
२७. उत्तररामचरितम्—भवभूति
२८. किरातार्जुनीयम्—भारवी
२९. श्रीमदभगवद् गीता—शाङ्कर भाष्य
३०. दीघ निकाय
३१. रामकथा, उत्पत्ति और विकास—डा० कामल बुल्के
३२. रामायणकालीन संस्कृति—डा० नानूराम व्यास
३३. रामायणकालीन समाज—डा० नानूराम व्यास
३४. इण्डिया इन द रामायण एज—डा० नानूराम व्यास
३५. द पोएट्री ऑफ वाल्मीकि—मस्तो, एम० वेंकटेश आयङ्गर
३६. ए न्यू एप्रोच टू द रामायण—एन० आर नावलेकर
३७. स्टडीज इन रामायण—रामस्वामी शास्त्री
३८. रिडिल ऑफ द रामायण—सी० वी० वैद्य
३९. द कन्सेप्ट ऑफ धर्म इन वाल्मीकि रामायण—वी० खान
४०. लेक्चर्स ऑन द रामायण—श्रीनिवास शास्त्री
४१. ए सोश्यो-पॉलिटिकल स्टडी आफ द वाल्मीकि रामायण—डा० आर० शर्मा
४२. वाल्मीकि रामायण एवं रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन—डा० विद्या मिश्रा
४३. ऑन द रामायण—डा० वेबर
४४. रामायणकालीन आर्य संस्कृति निबन्ध-माला, प्रथम भाग —विष्णु दामोदर शास्त्री, अनुवादक—बालकृष्ण दामोदर शास्त्री

४५. कालिदास का भारत, भाग १—डा० भगवत शरण उपाध्याय
४६. पतञ्जलि कालीन भारत—डा० पी० डी० अग्निहोत्री
४७. मनु का राजधर्म—डा० श्यामलाल पाण्डेय
४८. भीष्म का राजधर्म—डा० श्यामलाल पाण्डेय
४९. शुक्र की राजनीति—डा० श्यामलाल पाण्डेय
५०. भारतीय राजनीति और शासन—कृपाराम बम्बाल
५१. प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास—विमलचन्द्र पाण्डेय
५२. भारतीय संस्कृति का उत्थान—डा० रामजी उपाध्याय
५३. संस्कृति के चार अध्याय—रामधारी सिंह दिनकर
५४. प्राचीन भारतीय शासन पद्धति—ए० एस० अलतेकर
५५. स्टेट एण्ड गवर्नमेन्ट इन एन्शिएंट इंडिया—ए० एस० अलतेकर
५६. प्राचीन भारत में राज्य और न्यायपालिका—हरिहर नाथ त्रिपाठी
५७. सम आस्पेक्ट ऑफ एन्शिएन्ट हिन्दू पॉलिटी—डा० डी० आर० भण्डारकर
५८. द स्टेट इन एन्शिएण्ट इंडिया—बेनी प्रसाद
५९. गवर्नमेन्ट इन एन्शिएण्ट इंडिया—बेनी प्रसाद
६०. आस्पेक्ट ऑफ पॉलिटिकल आइडियाज एण्ड इन्स्टीट्यूशन्स इन एन्शिएंट इंडिया—आर० एस० शर्मा
६१. हिन्दू पॉलिटी—के० पी० जायसवाल
६२. पॉलिटी इन अग्निपुराण—डा० बी० बी० मिश्र
६३. पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ इंडिया—राय चौधरी
६४. इंटरनेशनल लॉ एण्ड कस्टम्स इन एन्शिएंट इंडिया—आर० डी० बनर्जी

६५. इंटरनेशनल लॉ एन्ड इन्टर स्टेट रिलेशन्स इन एन्शिएंट इण्डिया—एच० एल० चटर्जी
६६. वाल्मीकि रामायण कोश—डा० रामकुमार राय
६७. संस्कृत हिन्दी कोश—वामन शिवराम आप्टे
६८. हिन्दी साहित्यकोश भाग १
६९. सूक्तिसागर—रमाकान्त गुप्त
७०. द हिन्दुस्तान टाइम्स—१९.१.७३
७१. कल्याण, भाग ४४ अंक १२
७२. ऍन्साइक्लोपोडिया (विश्वकोश)

—०—

NEW RELEASES FOR E.B.L.

1. ENCYCLOPAEDIA OF VEDĀNTA – Prof. Ram Murti Sharma (1993) 450.00
2. BUDDHIST PHENOMENOLOGY : A THERAVĀDA PERSPECTIVE—Chandra B. Varma (1993) 200.00
3. THERAVĀDA BUDDHISM (Based on Pāli Sources) —RONALD, S. Copleston, Ed. by Harcharn Singh Sobti (1993) 250.00
4. ESSAYS ON BUDDHISM AND PĀLI LITERATURE —Angraj Chaudhary (1994) 250.00
5. VIJÑAPTIMĀTRATĀSIDDHI (VIṀŚATIKĀ) with Introduction, Translation and Commentry)— T. R. Sharma (1993) 150.00
6. THE GANDHAVAṀŚA (A History of Pāli Literature) —Bimalendra Kumar (1992) 90.00
7. SATYA-SUDHĀ (A Critical Evoluation of Dr. Satya Vrat Shastri Creative Works)—Ed. Satya Vrat Varma (1993) 700.00
8. WORD INDEX TO THE VĀKYAPADĪYA OF BHARTṚHARI—Prof. Saroja Bhate & Yashodhara Kar (1992) 450.00
9. GLORY THAT WAS BUNDELKHAND (श्री महेन्द्रकुमार मानव अभिनन्दन ग्रन्थ) —Ed. Prof. K.D. Bajpai (1993) 800.00
10. ŚAKTIVĀDA : Theory of Expressive Power of Words —Dr. V. P. Bhatt (1994) 300.00
11. BHĀVNĀVIVEKA OF MAṆḌAN MIŚARA (English Translation with Notes)— Dr. V. P. Bhatt (1994) 300.00
12. A CONCISE ENCYCLOPAEDIA OF EARLY BUDDHIST PHILOSOPHY—Chandra B. Varma (1992) 300.00
13. DURGĀ : THEME IN VARANASI WALL PAINTINGS—Prem Shankar Dwivedi (1993) 300.00
14. ...Y CREATIVITY AND AESTHETIC ...ENCE—Dr. Natwar Lal Joshi (1994) 300.00

...rder to : Ph. : 2520287

...rn Book Linkers

...L PUBLISHERS & BOOKSELLERS)

...awal, Jawahar Nagar, DELHI-110007